बोलै शेख़ फ़रीद

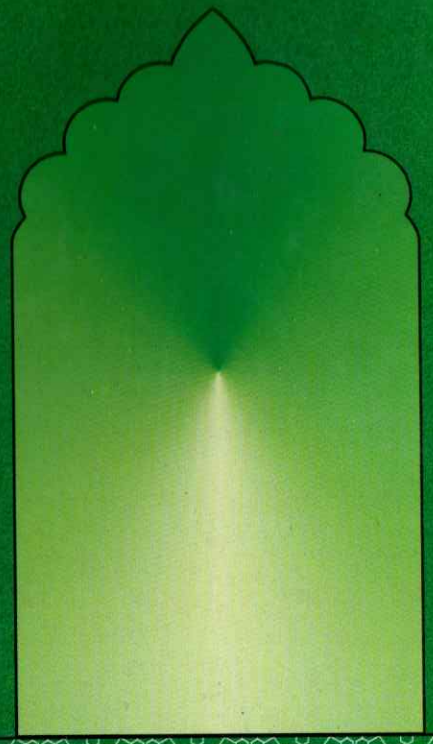

ॐ अन्नपूर्णा®
Charitable Trust
WZ-5A/1, Ram Nagar,
Choukhandi Chowk,
New Delhi-110018

विषय-सूची

प्रकाशक की ओर से 9
पाठकों से निवेदन 11
भूमिका 13
जीवन 17-66
उपदेश 67-260
1. 'बोलै सेख फरीदु' 69
2. 'इहु तनु होसी खाक' 83
3. 'सचे तेरी आस' 95
4. 'काली कोइल तू कित गुन काली' 103
5. 'तूं आंहो केर्हे कंमि' 118
6. 'वसी रबु हिआलीऐ' 132
7. 'दर दरवेसी गाखड़ी' 146
8. 'अमल जि कीतिआ दुनी विचि' 161
9. 'जो गुरु दसै वाट' 173
10. 'विसरिआ जिन्ह नामु' 195
11. नमाज़े-माअकूस 216
12. 'बेड़ा बंधि न सकिओ' 222
13. 'जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए' 231
14. सूफ़ीमत और गुरुमत या सन्तमत 243
15. सार 257

कलाम	261–343
काव्य-कला	345
हवाले	367
सन्दर्भ-ग्रन्थ	381
अनुक्रमणिका	387
हमारे प्रकाशन	391

जीवन

प्रसिद्ध सूफ़ी-सन्त मौलाना जामी* का कथन है:

बंदा-ए-इश्क़ शुदी तर्के-नस्ब कुन जामी।
क अंदर ईं राह फ़ुलां इबने फ़ुलां चीज़े-नीस्त।

ऐ जामी, तू प्रभु के प्रेम का ग़ुलाम हो जा और पारिवारिक रिश्ते छोड़ दे, क्योंकि इस रास्ते में यह नहीं देखा जाता कि कौन किसका पुत्र है।

बाबा फ़रीद ख़ुदा के इश्क़ द्वारा ख़ुदा का रूप हो चुके कामिल दरवेश थे। द्वैत से अद्वैत में पहुँच चुके ऐसे दरवेशों के बारे में हर किस्म की सामाजिक, पारिवारिक और धार्मिक सीमाएँ अर्थहीन हो जाती हैं। वे सारे संसार के हो जाते हैं और सारा संसार उनका हो जाता है। वे किसी ख़ास स्थान, माता-पिता के घर और ख़ास हालात में जन्म अवश्य लेते हैं और जीवन के विशेष हालात का सामना भी करते हैं, पर परमात्मा से मिलाप कर लेने के बाद उनके माता-पिता, रिश्तेदारों, जाति, धर्म और देश आदि के विवरण इतने महत्त्वपूर्ण नहीं होते, जितना महत्त्वपूर्ण उनका उपदेश होता है। उनकी असल बड़ाई उन उसूलों और उस जीवन-ढंग में होती है, जिसका वे प्रचार करते हैं। उनकी असल पूँजी उनके वे श्रद्धालु या सेवक होते हैं, जो उनके उपदेश के अनुसार अपना जीवन ढालने का यत्न करते हैं। ख़ुशी की बात यह है कि बाबा फ़रीद के जीवन के सम्बन्ध में काफ़ी सामग्री मिलती है और आपका कलाम भी अपने असल रूप में मौजूद है, जिससे आपके जीवन और उपदेश को समझने में बहुत सहायता मिलती है।

---

* जामी (1414-1492 ई.)- आपका पूरा नाम मौलाना नुरुद्दीन अबद था। आप फ़ारसी के महान विद्वान एवं सन्त-कवि हुए हैं। आपको ईरान का अन्तिम महान सूफ़ी कवि माना जाता है। आपके द्वारा किये गए क़ुरान शरीफ़ और सूफ़ी सिद्धान्तों के विवेचन को उच्च कोटि के आलोचनात्मक साहित्य में गिना जाता है।

जीवनीकारों ने बाबा फ़रीद के शज्रा नस्ब (वंशावली) को कई पीढ़ियाँ पीछे ले जाते हुए इसे क़ाबुल के बादशाह फ़रुख़शाह और सुलतान इब्राहिम-बिन-अहमद से और उनके द्वारा दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर फ़ारूक से जोड़ा है। फ़रीद के पूर्वज क़ाबुल के निवासी थे। ग़ज़नवियों और ग़ौरियों की आये दिन की आपसी लड़ाइयों के कारण अफ़ग़ानिस्तान में ऐसी अशान्ति फैली रहती थी कि अमन-पसन्द लोगों के लिये जीवन व्यतीत करना मुश्किल हो गया था। ग़ुज़ कबीले के 1157 ई. के आक्रमण के समय फ़रीद के दादा हज़रत शेख़ शईब अपने परिवार सहित क़ाबुल से लाहौर आ गए। कुछ समय लाहौर में बिताने के बाद वे पहले कसूर और फिर मुलतान चले गए। वहाँ वे खोतवाल के काज़ी नियुक्त हो गए और परिवार सहित वहीं जा बसे। खोतवाल को कोठीवाल भी कहा जाता है।* आजकल इस गाँव का नाम 'चावली मशाइख़' हो गया है।[2]

काज़ी शईब के तीन बेटों में से दूसरा जमालुद्दीन सुलेमान था, जिसका विवाह शेख़ वजीहुद्दीन की बेटी करसूम से हुआ था। उनके घर में सन् 1173 ई. में† बेटे का जन्म हुआ जिसका नाम फ़रीदुद्दीन मसऊद रखा गया, जो बाद में बाबा फ़रीद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फ़रीद के दो भाई थे। एक भाई उससे बड़ा था और दूसरा छोटा। उनकी एक बहन भी थी।

माता

छोटी उम्र में ही पिता का साया सिर से उठ जाने के कारण फ़रीद का पालन-पोषण उसकी माता की देख-रेख में हुआ। फ़रीद की माता करसूम बीबी, जिसे मरियम भी कहा जाता था, नेकी और पाकीज़गी (निर्मलता) की मूर्ति थी। वह सारी-सारी रात ख़ुदा की इबादत में तल्लीन रहती थी। उसकी नेकी और मन की निर्मलता के सम्बन्ध में कई साखियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक रात कुछ चोर घर में घुस आये। उन्हें माता करसूम के चेहरे के चारों ओर रूहानी नूर का एक अनोखा चक्र दिखाई दिया और उसके चेहरे से शान्ति

* मोहम्मद आसिफ़ खां ने 31 लेखकों द्वारा गाँव का नाम अलग-अलग दिये जाने का विवरण दिया है और गाँव का सही नाम कोठीवाल माना है।[1]

† मोहम्मद आसिफ़ खां ने आपका जन्म 1188 ई. में हुआ माना है।[3]

की अद्भुत किरणें निकलती प्रतीत हुईं। चोरों के मन पर इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे सदा के लिये चोरी करना छोड़कर नेक इनसान बन गये।[4] कुछ विद्वानों ने माता करसूम के नूर से एक चोर के अन्धा हो जाने और बाद में माता की दुआ से उसे दोबारा दृष्टि प्राप्त हो जाने की बात भी लिखी है।[5]

माता करसूम का जीवन रूहानियत के साँचे में ढला हुआ था। वह उन साधारण माताओं में से नहीं थी जो अपने बेटे के लिये सांसारिक मान-बड़ाई के सपने देखती हैं। वह तो अपने पुत्र को ख़ुदा का सच्चा आशिक़ बनाना चाहती थी। माता के दिल में न केवल फ़रीद को कामिल फ़क़ीर बनाने की इच्छा थी, बल्कि उसे पूर्ण विश्वास भी था कि समय पाकर उसकी यह इच्छा ज़रूर पूरी होगी। फ़रीद अभी छोटा बालक ही था कि एक दिन कुछ दूरी पर ढोल बजता सुनकर उसने अपनी माता से पूछा कि ढोल क्यों बज रहा है? माता ने बताया कि तुम्हारे भाई, मुराद ने तीन कोस की दूरी पर एक नई जगह आबाद की है, इसलिये उसका ढोल बज रहा है। फ़रीद ने भोलेपन से कहा, "अम्मी जान, मुझे भी ढोल ले दो, मैं भी ढोल बजाऊँगा।" माता कहने लगी, "बेटा, तेरा ढोल कसाया जा रहा है, जब यह बजेगा तो तीन कोस में ही नहीं, तीनों लोकों में सुनाई देगा।"[6]

इस दृढ़ विश्वास के सहारे माता ने बचपन से ही बेटे को धर्म के ऊँचे आदर्श और मूल्य सिखाने और ख़ुदा की इबादत में लगाने की कोशिश शुरू कर दी। उसने पुत्र को छोटी उम्र से ही नमाज़ पढ़नी सिखा दी। कहा जाता है कि अपने बेटे के दिल में नमाज़ पढ़ने का शौक़ पैदा करने के लिये माता ने उसे समझाया कि नमाज़ पढ़ने से ख़ुदा शक्कर भेजता है। माता ख़ुद फ़रीद के नमाज़ पढ़ने के मुसल्ले के नीचे शक्कर की पुड़िया रख देती। जब बेटा नमाज़ पढ़ कर उठता तो उसे मुसल्ले के नीचे से शक्कर की पुड़िया मिल जाती। कहा जाता है कि एक दिन माता पुड़िया रखना भूल गई पर कुल मालिक की रहमत से फ़रीद को हर रोज़ की तरह मुसल्ले के नीचे से शक्कर की पुड़िया मिल गई। इस तरह माता ने हर तरह से बेटे के अन्दर नेक और धार्मिक संस्कार पैदा करने का प्रयत्न किया। कुछ विद्वानों का विचार है कि ख़ुदा की रहमत से फ़रीद के मुसल्ले के नीचे से शक्कर की पुड़िया निकलने के कारण

फ़रीद का नाम 'शक्करगंज'– शक्कर का ख़ज़ाना पड़ गया। आपका नाम 'शक्करगंज' कैसे पड़ गया, इस विषय में विद्वानों ने कई कहानियाँ और कारण बयान किये हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

1. एक बार एक व्यापारी शक्कर की बोरियाँ ले जा रहा था। फ़रीद ने उससे पूछा कि तुम क्या लेकर जा रहे हो? व्यापारी ने जवाब दिया, "नमक ले जा रहा हूँ।" इस पर शक्कर की बोरियाँ नमक में बदल गईं। व्यापारी बहुत पछताया। उसने बाबा फ़रीद से माफ़ी माँगी। बाबा फ़रीद के हुक्म से नमक फिर से शक्कर बन गया।
2. एक बार फ़रीद हफ़्ते भर के रोज़े (व्रत) के बाद अपने मुर्शिद के दीदार के लिये जा रहे थे कि रास्ते में ठोकर खाकर गिर पड़े और मिट्टी की एक डली आपके मुँह में चली गई। ख़ुदा की रहमत से इसका ज़ायका शक्कर जैसा मीठा हो गया। आपने अपने मुर्शिद को यह बात बताई तो मुर्शिद ने फ़रमाया कि अगर तेरे मुँह में पड़ी मिट्टी मीठी हो गई है तो सचमुच तेरी ज़बान में शक्कर घुल जायेगी और सब लोगों को तेरे मीठे वचनों से फ़ायदा पहुँचेगा।
3. आपने कई दिनों का रोज़ा (व्रत) कंकड़ों से खोला तो कंकड़ शक्कर बन गये।
4. आपने जंगल में रखा चालीस दिन का रोज़ा मिट्टी की डली से खोला तो मिट्टी शक्कर बन गई। इस पर बशारत (आकाशवाणी) हुई, "हमने तुम्हें मधुर वचन बोलने वाले दरवेशों में शामिल कर लिया है और तुझे गंज-शक्कर (शक्कर का ख़ज़ाना) बना दिया है।"*

सोचने की बात है कि मुर्शिद द्वारा भी और आकाशवाणी द्वारा भी, बाबा फ़रीद की मीठी ज़बान की ओर इशारा किया गया है और इसमें ही उन्हें शक्करगंज कहे जाने का असल भेद छिपा हुआ है। इसमें शक नहीं कि बाबा फ़रीद नम्रताभरी मिठास का अथाह स्रोत थे और आपकी वाणी में भी शक्कर जैसी मिठास घुली हुई है।

* विस्तार के लिये देखें: निज़ामी, 'दि लाईफ़ एण्ड टाईमज़ ऑफ़ शेख़ फ़रीदुद्दीन गंजे-शक्कर', पृ. 116–117.

शिक्षा

समय के रिवाज के मुताबिक़ फ़रीद को पाँच-छः साल की उम्र में एक मसजिद में पढ़ने भेजा गया। उन दिनों मुसलमान परिवारों के बच्चों के लिये क़ुरान शरीफ़ का पढ़ना विद्या-प्राप्ति का ज़रूरी अंग था। फ़रीद ने प्रारम्भिक शिक्षा पूरी होने के साथ ही क़ुरान शरीफ़ की तलावत (पाठ) शुरू कर दी और कुछ अन्य पुस्तकें भी पढ़ लीं। साथ ही उसके अन्दर इबादत करने की लगन भी बढ़ती गई। वह ख़ुदा की बन्दगी में इतना मस्त रहने लगा कि उसकी बन्दगी लोगों में चर्चा का विषय बन गई।

उन्हीं दिनों एक सूफ़ी दरवेश जलालुद्दीन तमरीज़ी दिल्ली जाते हुए खोतवाल में से गुज़रे। उन्होंने लोगों से पूछा कि यहाँ कोई सूफ़ी दरवेश भी रहता है कि नहीं। लोगों ने बताया कि दरवेश तो कोई नहीं, पर काज़ी का छोटी उम्र का बेटा फ़रीद है, जो हमेशा ख़ुदा की इबादत में खोया रहता है और लोग उसे 'काज़ी-बच्चा दीवाना' कहकर चिढ़ाते हैं। शेख़ साहिब ख़ास तौर पर फ़रीद को देखने गए। रास्ते में किसी ने उन्हें एक अनार भेंट किया। उस अनार को वह अपने साथ ले गए। उन्होंने अनार तोड़कर फ़रीद को दिया। फ़रीद ने रोज़ा (व्रत) रखा हुआ था, इसलिये उसने अनार न लिया। शेख़ जलालुद्दीन ने ख़ुश होकर उस पर रहमत की नज़र डाली। शेख़ साहिब के चले जाने के बाद फ़रीद को अनार का एक दाना ज़मीन पर पड़ा दिखाई दिया। उसने यह सोचकर कि यह दाना एक फ़क़ीर के हाथ से गिरा है, उसे उठाकर अपने रूमाल में बाँध लिया और बाद में उससे रोज़ा खोला।*

शेख़ जलालुद्दीन ने सिर्फ़ अनार के दाने और अपनी दृष्टि के द्वारा ही फ़रीद पर दया नहीं की, आप उसे फ़क़ीरी का एक बहुत ज़रूरी नुक्ता भी समझा गए और उसके भविष्य के बारे में एक सूक्ष्म संकेत भी दे गए। आपने देखा कि बातें करते समय फ़रीद बार-बार अपनी सलवार में जगह-जगह पड़े छिद्रों को छिपाने की कोशिश कर रहा था। आपने उसकी चिन्ता देखते हुए फ़रमाया, "बुखारा में एक दरवेश था। उसे सात साल तक पहनने को सलवार नसीब न

* विस्तार के लिये देखें: 'श्रेष्ट गोष्टां', (अनु.) प्रीतम सिंह।

हुई। उसने सात साल कमर पर अंगोछा बाँधकर गुज़ार दिए। तू फ़िक्र मत कर और देखता जा कि आगे क्या होता है।''[8]

खोतवाल की मसजिद में तालीम पूरी करके फ़रीद मुलतान चला गया। वहाँ वह मौलाना मिनहाज़दीन तिरमीदी के मदरसे (स्कूल) में दाख़िल हो गया और सारा क़ुरान शरीफ़ ज़बानी याद कर लिया। वह शुद्ध रीति से चौबीस घण्टे में क़ुरान का पूरा पाठ कर लेता था।[9]

मुर्शिद से मिलाप

फ़रीद की उम्र लगभग 18 वर्ष की थी और वह बड़ी लगन से विद्या-प्राप्ति, क़ुरान शरीफ़ की तलावत, ख़ुदा की इबादत और रोज़े रखने के अपने नियम में व्यस्त रहता था। उन दिनों हज़रत बख़्तियार काकी मुलतान आये हुए थे। आप उसी मसजिद में ठहरे, जहाँ फ़रीद पढ़ता था। हज़रत बख़्तियार काकी का दीदार करते ही फ़रीद एकदम उनकी ओर आकर्षित हो गया। उसे महसूस हुआ कि वे ज़रूर कोई पहुँचे हुए दरवेश हैं।

एक दिन जब हज़रत बख़्तियार काकी इबादत में लीन थे, उस समय फ़रीद इस्लामी शरीअत की एक पुस्तक 'नाफ़ा' पढ़ रहा था। हज़रत काकी ने साधना के बाद आँखें खोलीं तो आपकी नज़र फ़रीद पर पड़ी। आपने प्यार से पूछा, ''मौलाना, क्या पढ़ रहे हो?'' फ़रीद ने जवाब दिया, ''हज़रत, मैं 'नाफ़ा' पढ़ रहा हूँ, नफ़े वाली चीज़।'' हज़रत काकी ने पूछा, ''क्या तुझे नाफ़ा पढ़ने से नफ़ा होगा?'' फ़रीद के मुँह से स्वाभाविक ही ये शब्द निकले, ''मुझे हुज़ूर की दया-मेहर से नफ़ा होगा।''[10] यह कहते हुए फ़रीद ने अपना सिर मुर्शिद के क़दमों में रख दिया और कहा:

'जिसे तूने क़बूल कर लिया, वह हमेशा के लिये क़बूल हो गया। तेरी रहमत से कभी कोई ख़ाली नहीं रहा। जिस ज़र्रे पर तेरी ज़रा-सी भी नज़र पड़ गई, वह हज़ारों सूर्यों से ज़्यादा रोशन हो गया।'[11]

इससे पता चलता है कि फ़रीद अन्दर से कामिल मुर्शिद के मिलाप के लिये तैयार हो चुका था। उसके संस्कार निर्मल थे, झुकाव कुल मालिक की बन्दगी की ओर था और मन में कामिल मुर्शिद से मिलाप की क़द्र और तड़प थी।

कामिल मुर्शिद जानी-जान (अन्तर्यामी) होता है। हज़रत बख़्तियार काकी फ़रीद से बहुत ख़ुश हुए और उन्होंने अपनी रहमत का हाथ उसके सिर पर रख दिया। जब आप दिल्ली जाने लगे तो फ़रीद भी आपके साथ दिल्ली गया। वहाँ पहुँचकर हज़रत बख़्तियार काकी ने उसे बक़ायदा तौर से बैअत* किया। अमीर ख़ुर्द ने लिखा है कि जब मुर्शिद ने फ़रीद को बैअत किया तो उस वक़्त काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी, मौलाना अलाउद्दीन किमानी, सईद नूरदीन मुबारक ग़ज़नवी, मौलाना शम्सुद्दीन तुर्क आदि महापुरुष वहाँ मौजूद थे।[12]

सियरुल-आरफ़ीन के लेखक जमाली का विचार है कि हज़रत बख़्तियार काकी ने मुलतान में ही फ़रीद को नामदान दिया। फ़रीद ने सफ़र के तीन पड़ाव हज़रत काकी के साथ तय किये, पर बाद में आपने फ़रीद को पढ़ाई पूरी करने के लिये मुलतान वापस भेज दिया। जमाली के अनुसार फ़रीद वापस आकर न केवल कुछ समय मुलतान में ही रहा, बल्कि वह उच्च शिक्षा के लिये कंधार भी गया और काफ़ी समय बाद मुर्शिद की हुज़ूरी में दिल्ली पहुँचा।[13]

कई जीवनीकारों ने बाबा फ़रीद की कंधार, ग़ज़नवी, ख़ुरासान, बग़दाद, बुख़ारा, बदख़्शां, किरमान आदि की यात्राओं और अनेक पीरों-फ़क़ीरों और दरवेशों से हुई मुलाकातों के विस्तृत विवरण दिये हैं। डॉ. निज़ामी ने इन विवरणों पर विश्वास नहीं किया। वह कहता है कि 'फ़वाइदुल-फ़ुवाद', 'ख़ैरुल-मजालिस' और 'सियरुल-औलिया' जैसी प्रामाणिक पुस्तकों में फ़रीद की बाहरी देशों की यात्राओं के बारे में एक शब्द भी नहीं मिलता। इसके सिवाय जिन दिनों में फ़रीद द्वारा बाहरी देशों के दौरे किये जाने के विवरण दिये गए हैं, उन दिनों उन देशों में भारी अशान्ति फैली हुई थी। फिर जब बाबा फ़रीद का मुर्शिद हिन्दुस्तान में था, तो फ़रीद को अशान्ति के समय बाहरी देशों में भटकने की क्या ज़रूरत थी? निज़ामी के विचार में फ़रीद अपनी शिक्षा पूरी करने के लिये ज़्यादा से ज़्यादा कंधार गये होंगे।[14] लेखकों ने बाबा फ़रीद द्वारा भारत के विभिन्न भागों कशमीर, अजमेर, मालवा आदि अनेक स्थानों के भ्रमण का भी वर्णन किया है। बाबा फ़रीद द्वारा पंजाब के शहर फ़रीदकोट की यात्रा किये जाने के वृत्तान्त भी मिलते हैं।

---

* बैअत अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है दीक्षा या नामदान।

पंजाब के शहर फ़रीदकोट का पहला नाम मोकल नगर था। यह नगर राजा मोकल देव ने बारहवीं सदी विक्रमी के अन्त में बसाया था। नगर में राजा द्वारा बनवाये गए किले का नाम मोकलहार था। कहा जाता है कि बाबा फ़रीद के इस नगर में आने से राजा पर आपका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उसने अपना नाम हटाकर नगर का नाम इस कामिल दरवेश के नाम पर 'फ़रीदकोट' रख दिया। फ़रीदकोट में बाबा फ़रीद के नाम के साथ जुड़े कई स्मारक आज भी मौजूद हैं।[15]

मुर्शिद के क़दमों में

फ़रीद के मुर्शिद हज़रत क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी (मृत्यु 1235 ई.) अपने समय के प्रसिद्ध कामिल दरवेश थे। आप ऊश (ईरान) के रहनेवाले थे, जो उस समय सूफ़ियों का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। ऊश में अपनी शिक्षा पूरी करके आप बग़दाद चले गए, जो उस समय इस्लामी संस्कृति का केन्द्र था। वहाँ आपको क़ादरी सिलसिले के प्रमुख महान सूफ़ी दरवेश शेख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी (1077-1166 ई.), सोहरावर्दी सिलसिले के महान सूफ़ी शहाबुद्दीन सोहरावर्दी (1145-1234 ई.) और भारत में चिश्ती सिलसिले को शुरू करनेवाले ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (1139-1236 ई.) जैसे महान दरवेशों की संगति का लाभ प्राप्त हुआ। आप हज़रत मुईनुद्दीन चिश्ती की रूहानी बड़ाई से इतने प्रभावित हुए कि उनके मुरीद बन गए और उनके साथ ही भारत आ गए। यहाँ आकर आप कुछ समय मुलतान में रहे और फिर दिल्ली आ गए।

उन दिनों दिल्ली विद्वानों, फ़क़ीरों और दरवेशों का केन्द्र बना हुआ था। उस समय का बादशाह इल्तुतमिश भी विद्वता और रूहानियत का क़द्रदान था। हज़रत बख़्तियार काकी के दिल्ली पहुँचने पर सुलतान ने स्वयं उनका स्वागत किया और उनसे शाही महलों में रहने की विनती की। आपने यह विनती स्वीकार नहीं की। नतीजा यह हुआ कि बादशाह हफ़्ते में दो बार ख़ुद आपके दीदार के लिये जाता था। बादशाह का यह प्रेम देखकर एक बार हज़रत काकी ने उन्हें उपदेश दिया , "ऐ दिल्ली के बादशाह, तू ग़रीबों, फ़क़ीरों, दरवेशों और बेसहारा लोगों के साथ अच्छा बर्ताव किया कर। तू सबके साथ नेकी और

रहम से पेश आया कर और लोगों की भलाई के लिये ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश किया कर। जो बादशाह अपनी प्रजा का ख़याल रखता है, कुल मालिक उसका ख़याल रखता है और दुश्मन भी उसके दोस्त बन जाते हैं।"[16]

इल्तुतमिश, हज़रत बख़्तियार काकी का बहुत आदर करता था। उसने आपको 'शेख़ुल-इसलाम' की उपाधि देनी चाही, पर आपने यह उपाधि लेने से इनकार कर दिया। इल्तुतमिश ने यह उपाधि नजमुद्दीन सुखरा को दे दी।[17] उन्हीं दिनों ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती दिल्ली आये हुए थे। आपको शेख़ नजमुद्दीन सुखरा का हज़रत काकी के प्रति बर्ताव अच्छा न लगा और आपने अपने मुरीद को अपने साथ अजमेर चलने का हुक्म दे दिया। जब ख़्वाजा साहिब और हज़रत काकी अजमेर के लिये रवाना हुए तो दिल्ली के लोग मीलों तक उनके पीछे-पीछे गए। बादशाह इल्तुतमिश भी प्रजा के साथ दरवेशों के पीछे गया। राजा और प्रजा के प्यार को देखकर ख़्वाजा साहिब का दिल पसीज गया और आपने हज़रत काकी को दिल्ली वापस जाने की आज्ञा दे दी। इल्तुतमिश ने धन्यवाद के तौर पर ख़्वाजा की क़दम-बोसी की।[18] ख़्वाजा साहिब के दिल्ली वापस आने से फ़रीद को दिल्ली में अधिक समय के लिये अपने मुर्शिद के क़दमों में रहने का मौक़ा मिल गया।

हज़रत बख़्तियार काकी जैसा कामिल मुर्शिद और फ़रीद जैसा सच्चा शिष्य, यह वास्तव में एक महान संयोग ही था। मुर्शिद ने फ़रीद को ख़ानगाह में एक छोटी-सी कोठरी दे दी। फ़रीद मुर्शिद की रहनुमाई में तन-मन से दिन-रात अभ्यास में जुटा रहता। जैसे-जैसे अन्तर में तरक़्क़ी होती गई, फ़रीद का चाव बढ़ता गया। वह अपनी कोठरी से बहुत कम बाहर निकलता। दूसरे शिष्य बार-बार मुर्शिद के दीदार के लिये जाते, पर फ़रीद महीने में सिर्फ़ दो बार मुर्शिद के दीदार के लिये जाता।

कुछ समय बाद ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर से फिर दिल्ली लौटे। आप फ़रीद को देखकर बहुत ख़ुश हुए और अपने शिष्य से बोले, "बख़्तियार, तूने ऐसा शाहबाज़ पकड़ा है, जो सातवें आसमान से नीचे अपना घोंसला नहीं बनायेगा। फ़रीद ऐसा चिराग़ है, जो दरवेशों के सारे सिलसिले को रोशन करेगा।"[19] यह कहकर ख़्वाजा साहिब ने ख़ुद भी फ़रीद को आशीष दी और अपने शिष्य को भी फ़रीद पर ख़ास रहमत करने का हुक्म दिया, जिससे

फ़रीद को पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था प्राप्त हो गई और उसकी आत्मा अन्तर में ख़ुदा के कलमे (शब्द) को पकड़कर ऊपरी रूहानी मण्डलों में चढ़ गई।*

फ़रीद जैसा कोई विरला ही भाग्यशाली साधक होता है, जिसे न केवल अपने मुर्शिद की, बल्कि मुर्शिद के मुर्शिद की भी रहमत नसीब होती है। इतिहासकारों ने लिखा है कि चिश्ती सिलसिले (चिश्ती सम्प्रदाय) के लम्बे इतिहास में ऐसा संयोग पहले कभी नहीं हुआ तथा रूहानियत के पूरे इतिहास में भी ऐसे अवसर शायद ही कभी आये हों। अमीर ख़ुर्द ने 'सियरुल-औलिया' में इस महान वरदान की प्राप्ति पर फ़रीद की बड़ाई करते हुए लिखा है:

"दो दरवेशों ने दोनों जहान तुझे सौंप दिये हैं। वक़्त के इन शाहों ने तुझे शाह बना दिया है। यह दुनिया भी और वह दुनिया भी तेरे अधीन कर दी है, पूरी कायनात तेरे हवाले कर दी गई है।"[20]

एक दिन बाबा फ़रीद ने अपने मुर्शिद से चिल्हा (चालीस दिन का तप) करने की आज्ञा माँगी। मुर्शिद ने जवाब दिया, "चिल्हा करने की कोई ज़रूरत नहीं। इस तरह की चीज़ों से मशहूरी होती है। चिश्ती सिलसिले के दरवेश कभी इस तरह के कामों में नहीं पड़े।" फ़रीद ने कहा, "आप तो सबकुछ जानते हैं। मेरी इच्छा प्रसिद्धि की प्राप्ति नहीं और आपके होते हुए मुझे अपनी प्रसिद्धि की क्या ज़रूरत है?" 'फ़वाइदुल-फ़ुवाद' के अनुसार हज़रत काकी यह बात सुनकर चुप हो गये और आपको चिल्हा कमाने की इजाज़त न दी। सियरुल-औलिया और दूसरे कुछ मलफ़ूज़ात† के अनुसार मुर्शिद ने आपको चिल्हाए-माअकूस‡ कमाने की इजाज़त दे दी। पर चिश्ती सिलसिले की ज़्यादातर किताबों में यही दर्ज है कि मुर्शिद ने फ़रीद को चिल्हा कमाने की आज्ञा नहीं दी, बल्कि फ़रीद को सारी उम्र इस बात का अफ़सोस रहा कि जब मुर्शिद ने एक बार मना कर दिया था तो उसने मुर्शिद के सामने दलील देने की

* विस्तार के लिए देखें इस पुस्तक का अध्याय 'विसरिआ जिन्ह नामु'।

† दरवेशों के जीवन की घटनाओं और वचनों पर आधारित लेख।

‡ नमाज़े-माअकूस और चिल्हाए-माअकूस के लिये देखें पुस्तक का अध्याय 'नमाज़े माअकूस'।

गुस्ताख़ी क्यों की। इस प्रसंग में बाबा फ़रीद के मुर्शिद की इस बात को आँखों से ओझल नहीं करना चाहिये कि वह स्वयं और चिश्ती सिलसिले के अन्य महान दरवेश इस प्रकार के हठ-कर्मों को रूहानी तरक़्क़ी के लिये ज़रूरी नहीं समझते थे।[21] यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है कि अगर बाबा फ़रीद हठ-मार्गी होते तो गुरु साहिब किसी हालत में उनकी वाणी गुरु ग्रन्थ साहिब में शामिल न करते। हज़रत बख़्तियार काकी की शरण में आने से पहले फ़रीद ने हठ-कर्मों की साधना भले ही की हो, पर बख़्तियार काकी जैसे कामिल दरवेश की शरण प्राप्त हो जाने के बाद फ़रीद द्वारा इस प्रकार के हठ-कर्मों में लगना किसी प्रकार भी स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता।* डॉ. निज़ामी, डॉ. काला सिंह बेदी[23] आदि लेखकों ने इस प्रकार के वर्णनों की सच्चाई के बारे में गहरे सन्देह व्यक्त किये हैं।

सभी जीवनीकारों ने लिखा है कि बाबा फ़रीद गृहस्थ दरवेश थे। उनका विवाह हुआ था।† उनके बेटे-बेटियाँ थे। उनके बच्चों के विवाह हुए थे। इससे पता चलता है कि आप न तो त्याग-मार्गी थे और न हठ-मार्गी। आपके जीवन का मूल आधार प्रेम का हठ था, हठ का प्रेम नहीं।

हांसी की ओर प्रस्थान

इतिहास से इस बारे में पूरे विवरण नहीं मिलते कि बाबा फ़रीद कितनी बार दिल्ली आये और कितना समय मुर्शिद के पास ठहरे। जवाहरुल-कलाम[24] में संकेत मिलता है कि दिल्ली आने से पहले आपके मन का बर्तन पूरी तरह तैयार हो चुका था और आपको पूर्णता की प्राप्ति में अधिक समय नहीं लगा। मुर्शिद की रहमत, अपनी लगन और मेहनत से फ़रीद जल्दी ही उच्च रूहानी मण्डलों का राही और वासी बन गया।

एक दिन मुर्शिद ने फ़रीद को हांसी जाने का हुक्म दिया। फ़रीद ने कहा, "हुज़ूर, मैं आपका ग़ुलाम हूँ, आप जो हुक्म देंगे, वैसा ही करूँगा।" मुर्शिद ने फ़रमाया, "कुल मालिक की यही रज़ा है।" यह कहते हुए मुर्शिद ने अपना मुसल्ला और असा (डण्डा) फ़रीद को सौंप दिया और फ़रमाया, "मुझे चिश्ती

* देखें: हज़रत अमीर उल्ला संजरी का उर्दू तरजमा, 'फ़वाईदुल-फ़ुवाद'।[22]

† कुछ जीवनीकारों ने आपकी तीन और कुछ ने चार शादियाँ बताई हैं।

पीरों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिली चीज़ें—ख़िरका (चोला), सज्जादा (आसन), पगड़ी और खड़ाऊँ तेरी अमानत हैं। यह चीज़ें मैं काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी को दे जाऊँगा। तू मेरी मृत्यु के पाँचवें दिन दिल्ली पहुँचेगा, तो तेरी यह अमानत तुझे मिल जायेगी।''[25] यह कहते हुए हज़रत बख़्तियार काकी ने फ़रीद को छोटे बच्चे की तरह अपनी गोद में बिठाकर प्यार किया और फ़रमाया कि यह हमारी आख़िरी मुलाकात है। न मैं अपने मुर्शिद के अन्त समय उनके पास था और न ही तू मेरे अन्त समय मेरे पास होगा।[26] इस प्रकार एक महान पीर और उसका, उसके जैसा ही महान शिष्य, शारीरिक तौर पर सदा के लिये एक-दूसरे से अलग हो गए।

हांसी में

फ़रीद ने दिल्ली छोड़ दी और हांसी (ज़िला हिसार) में जाकर ठिकाना बनाया। उन दिनों हांसी एक छावनी थी। आपने सोचा कि यहाँ गुप्त रहते हुए इबादत जारी रखना ज़्यादा आसान होगा।

कस्तूरी को चाहे जितना भी छिपाकर रखा जाये उसकी सुगन्धि बाहर निकल ही जाती है। ख़ुदा की मौज कि एक दिन एक दरवेश मौलाना नूर तुर्क हांसी आये। उनके प्रवचन बहुत ऊँचे दर्जे के थे। वे प्रवचन कर रहे थे कि फ़रीद भी, फटी पुरानी गुदड़ी पहने वहाँ पहुँच गया और चुपचाप उस सभा में पीछे बैठ गया। मौलाना नूर तुर्क फ़रीद को पहले कभी नहीं मिले थे, पर फ़रीद के चेहरे से उसकी आन्तरिक अवस्था भाँपकर वे एक दम बोल पड़े, ''भाइयो, रमज़ों का भेदी, सच्चा जौहरी आ गया है। इस गुदड़ी में छिपे लाल का दीदार करो।''[27] सभी की नज़रें एकदम फ़रीद पर टिक गईं। बुढ़ापे की उम्र में पहुँचकर बाबा फ़रीद अपने शिष्यों से कहा करते थे कि जो लफ़्ज़ उस दरवेश ने मेरी तारीफ़ में कहे थे, शायद ऐसे लफ़्ज़ कभी उसने किसी शहंशाह की तारीफ़ में भी न कहे हों। आप कहा करते थे कि यह उस दरवेश की बड़ाई थी वरना मैं तो ख़ुदा का नाचीज़ ग़ुलाम हूँ।

इस घटना से फ़रीद की प्रसिद्धि हांसी में हर तरफ़ फैल गई और रूहानियत के जिज्ञासु बड़ी संख्या में उनके दर्शनों के लिये आने लगे। हांसी में निवास के दौरान ही बाबा फ़रीद का प्रसिद्ध शिष्य शेख़ जमालुद्दीन उनकी शरण में

आया। बाद में आपने उसे अपना ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) भी नियुक्त किया। कुछ इतिहासकारों के अनुसार आप बारह साल तथा कुछ अन्य के अनुसार 19-20 साल तक हांसी में रहे। आपने अपने मुर्शिद हज़रत बख़्तियार काकी के शरीर त्यागने के बाद ही हांसी से विदा ली।

हज़रत काकी के जानशीन

पीर और मुरीद के निर्मल प्रेम के बेमिसाल रिश्ते को शब्दों में बयान कर सकना नामुमकिन है। न मुरीद मुर्शिद से दूर जाना चाहता है, न मुर्शिद ही मुरीद को अपने से दूर करना चाहता है। पर जिस मुरीद को आगे चलकर मुर्शिद का स्थान लेना होता है, मुर्शिद उसे शुरू से ही इस कार्य के लिये तैयार करना शुरू कर देता है। हज़रत बख़्तियार काकी ने अपनी गद्दी फ़रीद को सौंपने का फ़ैसला कई साल पहले ही सुना दिया था। गद्दी के चाहवानों को निराशा ज़रूर हुई, पर पीर का हुक्म अटल था। इस हुक्म में ख़ुदा की रज़ा, मुर्शिद की मौज, फ़रीद की बेमिसाल कमाई और मुर्शिद-परस्ती (गुरु-भक्ति) शामिल थी।

कहा जाता है कि जिस रात मुर्शिद क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी दुनिया से कूच करनेवाले थे, फ़रीद को आकाशवाणी हुई कि मुर्शिद उसे बुला रहे हैं। फ़रीद सुबह होते ही दिल्ली के लिये निकल पड़ा। फ़रीद को मुर्शिद के शरीर त्यागने की ख़बर देने के लिये भेजा गया क़ासिद, उसे रास्ते में मिला। फ़रीद पाँचवें दिन दिल्ली पहुँचा।* मुर्शिद के हुक्म के अनुसार काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी ने मुर्शिद द्वारा दी गईं वस्तुएँ फ़रीद को सौंप दीं। फ़रीद ने बड़े प्यार और आदर के साथ मुर्शिद का ख़िरका (चोला) अपने सिर पर रख लिया और मुर्शिद के हुक्म के अनुसार चिश्ती सिलसिले के प्रमुख का कार्य सँभाल लिया।

दिल्ली में जीवन की चाल-ढाल हांसी से बिलकुल अलग किस्म की थी। राजधानी की चहल-पहल में हांसी जैसी शान्ति कहाँ! यहाँ बाबा फ़रीद को कभी एक जलसे में जाना पड़ता तो कभी दूसरे में। उन्हें तेज़ रफ़्तार और अफरा-तफरी से भरा यह जीवन पसन्द नहीं था। हालत यहाँ तक जा पहुँची कि हांसी से सरहंगा नामक मस्ताना श्रद्धालु आपसे मिलने के लिये आया तो

---

* अधिक विस्तार के लिये देखें: निज़ामी, पृ.34.

सेवक ने कई दिन उसे बाहर ही रोके रखा। एक दिन आप अचानक बाहर निकले तो मस्ताने ने आपके क़दमों पर गिर कर विनती की, 'हज़रत, हांसी में आपसे मिलना बहुत आसान था, पर यहाँ बहुत मुश्किल है।' बाबा फ़रीद ने फ़ौरन दिल्ली छोड़कर हांसी वापस जाने का फ़ैसला सुना दिया। श्रद्धालुओं ने विनती की कि आपके मुर्शिद ने आपको अपनी गद्दी बख़्शी है। वह दिल्ली में रहते थे, आपको भी दिल्ली में ही रहना चाहिये। बाबा फ़रीद ने कहा कि मैं शहर में रहूँ या वीरान में, मेरे मुर्शिद की रहमत हमेशा मेरे साथ है।[28]

असल में बाबा फ़रीद दिल्ली के राजनीतिक माहौल से दूर रहना चाहते थे। हज़रत बख़्तियार काकी के शरीर त्यागने के कुछ महीनों बाद ही बादशाह इल्तुतमिश का भी देहान्त हो गया था। वह विद्वानों और दरवेशों का क़द्रदान और श्रद्धालु था। उसके बाद दिल्ली दरबार साज़िशों का अखाड़ा बन गया। बाबा फ़रीद दिल्ली में चिश्ती सिलसिले का काम-काज अपने गुरु-भाई बदरुद्दीन ग़ज़नवी को सौंपकर ख़ुद दिल्ली से चल पड़े।

एक अहलकार ने बदरुद्दीन के लिये एक सुन्दर ख़ानगाह बनवा दी जो बाद में राजनीतिक चालों का अखाड़ा और बदरुद्दीन की बर्बादी का कारण बन गई। इससे पता चलता है कि बाबा फ़रीद का दिल्ली के राजनीतिक माहौल से दूर रहने का निर्णय, उनकी दूरअन्देशी (दूरदर्शिता) का सूचक था।[29]

अजोधन

यदि बाबा फ़रीद दिल्ली नहीं रहना चाहते थे, तो आप हांसी में भी नहीं ठहरना चाहते थे, क्योंकि वहाँ भी आपकी ख़्याति काफ़ी फैल चुकी थी। आप हांसी से जल्दी ही अपने गाँव खोतवाल वापस आ गये। जब यहाँ भी श्रद्धालुओं का तांता लग गया, तो आप अजोधन चले गए और अपने आख़िरी समय तक वहीं रहे।

उन दिनों अजोधन यातायात का एक प्रमुख केन्द्र था। डेरा ग़ाज़ी ख़ां और डेरा इस्माइल ख़ां से आनेवाली दो बड़ी पश्चिमी सड़कें यहाँ मिलती थीं। इनके द्वारा भारत मध्य एशिया, ईरान और तुर्किस्तान से जुड़ा हुआ था। यहाँ से कई सड़कें देश के अलग-अलग भागों की ओर भी जाती थीं। हमलावर फ़ौजें, व्यापारियों के क़ाफ़िले और यात्री सभी यहाँ से निकलकर जाते थे।

अजोधन को आजकल पाकपटन कहा जाता है। पटन, पत्तण से बना है। पत्तण का अर्थ है, किश्तियों द्वारा दरिया से पार जाने का स्थान। पाक का अर्थ है, पवित्र। सिन्धु नदी के किनारे बसा यह पत्तण बाबा फ़रीद के नाम पर पाकपत्तण यानी नेक लोगों के पार जाने का पत्तण, नाम से प्रसिद्ध हो गया।

उन दिनों यहाँ ऐसे अनपढ़ और गँवार क़बीले रहते थे, जो कई प्रकार के वहमों, भ्रमों का शिकार थे। बाबा फ़रीद जैसे एकान्त-पसन्द दरवेश के लिये इससे अच्छा स्थान और कौन-सा हो सकता था! बाबा फ़रीद ने यहाँ भी इबादत का सिलसिला पूरे ज़ोर-शोर से जारी रखा। धीरे-धीरे यहाँ भी आपकी पवित्रता और बड़प्पन की सुगन्धि बाहर फैलनी शुरू हो गई और रूहानियत के जिज्ञासु भारी गिनती में आपके पास आने शुरू हो गये। वास्तव में हर कामिल दरवेश के गुप्त रहने और प्रकट होने का समय कुल मालिक की ओर से तय किया होता है। जब वक़्त आया तो बाबा फ़रीद ने लोगों को खुले आम दर्शन देने और कुल मालिक की इबादत के सच्चे रास्ते का भेद समझाने का कार्य शुरू कर दिया।[30] नतीजा यह हुआ कि बाबा फ़रीद की महानता की ख़ुशबू सारे देश में ही नहीं, बल्कि दूसरे देशों में भी फैलनी शुरू हो गई। इससे जहाँ एक ओर सच्चे जिज्ञासु ख़ुशी-ख़ुशी आपके पास आकर अपनी रूहानी प्यास बुझाने लगे, वहीं दूसरी ओर किताबी ज्ञान के क़ैदी (उलमा-ऐ-ज़ाहरी), फ़रीद की दिन-ब-दिन बढ़ रही ख़्याति से ईर्ष्या करने लगे।[31]

बाबा फ़रीद ने कस्बे से बाहर डेढ़ सौ फुट ऊँचे टीले पर अपना जमातख़ाना बनाया। यह एक बड़े आकार का कच्चा कोठा था जो शिष्यों और मुसाफ़िरों के लिये, जो यहाँ बड़ी गिनती में आते रहते थे, बनाया गया था। सारे पंजाब और हिन्दुस्तान के अलग-अलग भागों से और तुर्किस्तान, ईरान आदि से आनेवाले लोग भी कुछ समय के लिये इस जमातख़ाने में ठहर जाते थे।

बाबा फ़रीद की लगातार बढ़ रही ख़्याति को देखकर अजोधन का काज़ी ईर्ष्या से जल-भुन गया। उसके पीछे लगकर, इलाके के जागीरदारों और अहलकारों ने बाबा फ़रीद और उसके परिवार को तंग करना शुरू कर दिया। कामिल सूफ़ी दरवेशों के नक़्शे-क़दम पर चलते हुए बाबा फ़रीद ने हर तरह के विरोध को बहुत धैर्य से सहन किया।

बाबा फ़रीद की सहनशीलता समुद्र से भी गहरी थी। वह कभी किसी वाद-विवाद और झगड़े में न उलझते। काज़ी ने मुलतान के विद्वानों से बाबा फ़रीद के विरुद्ध फ़तवा (हुक्मनामा) लेने की कोशिश की, पर उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया कि फ़रीद जैसे अल्लाह के सच्चे दरवेश के विरुद्ध अँगुली उठा सकना मुमकिन नहीं है।[32]

काज़ी को चैन न आया। वह अन्दर ही अन्दर ज़हर घोलने लगा। आख़िर उसने किराये के एक क़ातिल द्वारा बाबा फ़रीद की हत्या करवाने की कोशिश की। जब वह व्यक्ति क़त्ल के इरादे से वहाँ गया तो बाबा फ़रीद ध्यान में मग्न बैठे थे। बाबा फ़रीद ने बिना आँख खोले पास खड़े अपने प्रिय शिष्य, निज़ामुद्दीन औलिया को आनेवाले का हुलिया बताते हुए फ़रमाया कि इस भले-मानस से कहो कि अपनी इज़्ज़त सलामत लेकर यहाँ से चला जाये। क़त्ल के इरादे से आये उस व्यक्ति का रंग फीका पड़ गया और वह शर्मिन्दा होकर मुँह छिपाता हुआ वहाँ से चला गया।[33]

इसके बावजूद काज़ी ने बाबा फ़रीद के परिवार के प्रति दुश्मनी जारी रखी। जब परिवार के सदस्यों ने बाबा फ़रीद से शिकायत की कि आपकी दरवेशी का हमें केवल यही फ़ायदा हुआ है कि लोग हमें बुरी तरह तंग कर रहे हैं।[34] तो बाबा फ़रीद ने उन्हें धैर्य रखने के लिये कहा। आपने समझाया कि अर्क निकालने के लिये और कुश्ता तैयार करने के लिये आग की गर्मी ज़रूरी होती है। आपका भाव था कि दुश्मनों की ईर्ष्या की आग दरवेशों के सब्र, शुक्र और रज़ा के गुणों को बाहर लाने का साधन है। धीरे-धीरे विरोधी बिखरने लगे और कई कट्टर दुश्मन भी बाबा फ़रीद के श्रद्धालु और शिष्य बन गये।[35]

बाबा फ़रीद की ख़्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। अनेक श्रद्धालु आपका उपदेश सुनने और अपनी शँकाओं को दूर करने के लिये आपके पास आते। कई अन्य लोग तरह-तरह की कामनाएँ लेकर आते। एक बार सुलतान नासिरुद्दीन की फ़ौज बाबा फ़रीद के दर्शनों के लिये उमड़ पड़ी। इतनी बड़ी भीड़ देखकर बाबा फ़रीद ने अपना कुर्ता बाहर लटका दिया। श्रद्धालुओं ने मिनटों में ही उसका टुकड़ा-टुकड़ा सँभाल लिया। बाबा फ़रीद के मुरीदों ने आपको घेरे में ले लिया ताकि आप भीड़ से बचे रहें। एक फ़र्राश (सफ़ाई करनेवाला) शिष्यों

का घेरा चीर कर बाबा फ़रीद के क़दमों पर गिर पड़ा। उसने विनती की और आपके क़दम चूमते हुए बोला, "हे दरवेश, लोग तेरे दीदार के प्यासे हैं इन्हें अपने दीदार से महरूम न रख।" बाबा फ़रीद दयापूर्वक श्रद्धालुओं को दर्शन देने के लिये उनके बीच जा खड़े हुए।[36]

सिर्फ़ साधारण लोग ही नहीं, बल्कि कई सूफ़ी, क़लन्दर और योगी भी आपसे मिलने आते रहते थे। हज़रत निज़ामुद्दीन ने कई मौक़ों पर अनेक योगियों के बाबा फ़रीद के पास आने और उनके साथ अलग-अलग विषयों पर हुई चर्चा के बारे में लिखा है।[37]

बाबा फ़रीद अरबी और फ़ारसी के विद्वान थे। आपको क़ुरान शरीफ़ और सूफ़ी साहित्य का गहरा ज्ञान था। आप 'क़ुरान शरीफ़', 'अवारिफ़ुल-मुआरिफ़' और काज़ी हमीदुद्दीन नागौरी की प्रसिद्ध रचना 'लवाह' की बहुत सुन्दर व्याख्या किया करते थे। आप विद्वानों का सम्मान करते थे, पर आन्तरिक भेदों के जानकार फ़क़ीरों को विद्वानों से ऊँचा दर्जा देते थे। बाबा फ़रीद की नज़र में विद्वान तारों की तरह थे और अभ्यासी फ़क़ीर तारों के झुण्ड में चमकते चन्द्रमा के समान।[38]

बाबा फ़रीद आपसी प्रेम-प्यार पर बहुत ज़ोर देते थे। एक बार किसी ने आपको कैंची पेश की तो आपने फ़रमाया कि मुझे कैंची नहीं, सूई चाहिये, क्योंकि कैंची काटती है और सूई जोड़ती है।

केवल श्रद्धालु ही नहीं, कई झगड़ालू और बहस करनेवाले लोग भी बाबा फ़रीद के जमातख़ाने में आ जाते थे। एक बार बाबा फ़रीद इबादत में लीन थे कि एक क़लन्दर ने उनसे मिलने की ज़िद्द की। बाबा फ़रीद का मुसल्ला दरवाज़े के बाहर पड़ा था। क़लन्दर उस पर बैठ गया। बाबा फ़रीद का प्रेमी शिष्य मौलाना बदरुद्दीन जमातख़ाने का प्रबन्धक था। उसने आग्रहपूर्वक क़लन्दर को खाना खिलाया। बाबा फ़रीद की इन्तिज़ार में क़लन्दर ने अपने प्याले में भाँग घोलनी शुरू कर दी, जिसके छींटे बाबा फ़रीद के मुसल्ले पर भी गिर पड़े। बदरुद्दीन बहुत नाराज़ हुआ और वह क़लन्दर पर बिगड़ा। क़लन्दर आग-बबूला हो गया और बदरुद्दीन को मारने के लिये लपका। उसने हाथ

उठाया ही था कि बाबा फ़रीद अपने हुजरे (कोठरी) से बाहर आ गये। आपने अपने शिष्य द्वारा हुई गुस्ताख़ी के लिये माफ़ी माँगी, पर क़लन्दर ने हाथ नीचे न किया। उसने कहा कि क़लन्दर पहले तो हाथ उठाते नहीं, अगर उठा लें तो ख़ाली वापस नहीं मोड़ते। बाबा फ़रीद ने कहा कि अगर गुस्सा निकालना ही है तो दीवार पर निकाल ले। क़लन्दर ने इतने ज़ोर से दीवार को धक्का दिया कि दीवार गिर गई।[39] बाबा फ़रीद शान्त रहे। आपने क़लन्दर को कुछ नहीं कहा। आप बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया करते थे कि दुश्मन को भी प्यार से जीतने की कोशिश करो और किसी भी ज़्यादती के जवाब में ख़ुद गुस्से में न आओ।[40]

एक बार एक बुज़ुर्ग अपने बेटे को साथ लेकर बाबा फ़रीद से मिलने आया। उसने आपको अपने बारे में बताते हुए कहा कि मैं आपसे हज़रत बख़्तियार काकी की ख़ानगाह में मिला था। उस बज़ुर्ग का लड़का बड़ा मुँह-ज़ोर था। उसने बाबा फ़रीद के साथ ऊँची आवाज़ में बहस करनी शुरू कर दी और उनकी शान के ख़िलाफ़ कुछ अपशब्द भी बोले। बाबा फ़रीद का बेटा शहाबुद्दीन और आपका शिष्य निज़ामुद्दीन जमातख़ाने के बाहर खड़े थे। शहाबुद्दीन तेज़ी से अन्दर गया और उसने उस लड़के को चपत दे मारी। जब उस लड़के ने शहाबुद्दीन पर हाथ उठाया तो निज़ामुद्दीन ने उसका हाथ पकड़ लिया। बाबा फ़रीद अपने बेटे से बहुत नाराज़ हुए कि तूने नौजवान को चपत क्यों मारी। आपने उसे हुक्म दिया कि तूने जिस तरह इस वृद्ध और इसके बेटे को नाराज़ किया है, उसी तरह उन्हें ख़ुश कर। शहाबुद्दीन द्वारा उन दोनों को फिर से ख़ुश कर लेने पर ही बाबा फ़रीद ने उसे माफ़ किया।

विरोध और झगड़े के इरादे से आए लोग भी बाबा फ़रीद की नम्रता, प्रेम, क्षमा और सहनशीलता के प्रभाव से शान्त हो जाते। एक बार एक क़लन्दर ने बाबा फ़रीद की शान में गुस्ताख़ी भरे स्वर में कहा कि तू मूर्ति की तरह अपनी पूजा करवा रहा है।[41] बाबा फ़रीद ने कहा कि मैं ख़ुद कुछ नहीं बना, जो ख़ुदा ने मुझे बनाया है, मैं बन गया हूँ। क़लन्दर ने कहा, नहीं, तू ख़ुद मूर्ति बना बैठा है। बाबा फ़रीद ने कहा जो कुछ होता है, ख़ुदा के हुक्म से होता है।[42] बाबा फ़रीद ने अपनी बात कुछ इस ढंग से कही कि इसका क़लन्दर के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह चुपचाप वहाँ से चल दिया।

एक बार पाँच क़लन्दर आपके साथ बहस करने लगे। वे कहने लगे कि हमने सारी दुनिया देख ली है, पर हमें कोई सच्चा दरवेश नज़र नहीं आया। बाबा फ़रीद ने कहा कि आप बैठ जाइये, मैं आपको सच्चे दरवेश के बारे में कुछ बताता हूँ। वे क़लन्दर न माने और जाने लगे। बाबा फ़रीद ने उन्हें बहुत समझाया कि आप रेगिस्तान की ओर न जाओ और यहीं रुको। क़लन्दरों ने आपकी एक न सुनी। उन्हें रेगिस्तान की ओर जाता देखकर बाबा फ़रीद की आँखों में आँसू आ गये। पास खड़े शिष्य कुछ समझ न सके कि इसमें क्या भेद है। दूसरे दिन पता चला कि चार क़लन्दर रेगिस्तान में प्यासे मर गये और पाँचवें को जब पानी मिला तो उसने इतना अधिक पी लिया कि पेट में अफ़ारा हो जाने से उसकी मौत हो गई।[43] क़लन्दरों ने बाबा फ़रीद का विरोध किया था, लेकिन बाबा फ़रीद का हृदय उनके लिये भी प्रेम से भरपूर था।

सुबह नहाने के बाद बाबा फ़रीद इबादत में जुट जाते। उस समय आपकी कोठरी का दरवाज़ा अन्दर से बन्द होता और किसी को भी अन्दर जाने की इजाज़त न होती। ज्यों ही आप कोठरी से बाहर आते, श्रद्धालुओं का आना-जाना शुरू हो जाता। प्रत्येक श्रद्धालु बारी-बारी आपके पास जाता और आप ध्यानपूर्वक उसकी व्यथा सुनते। आपके द्वार पर आये किसी श्रद्धालु को कभी यह शिकायत नहीं हुई कि उसकी ओर पूरा ध्यान नहीं दिया गया। आप अकसर कहा करते थे, "जब तक दरवाज़े पर एक भी ज़रूरतमन्द सवाली खड़ा हो, इबादत में रस नहीं आ सकता।"[44] स्पष्ट है कि आपके लिये लोगों की सेवा, ख़ुदा की बन्दगी का ही एक भाग था।

जमातख़ाना

बाबा फ़रीद के जमातख़ाने का रंग सारी दुनिया से अनोखा था। यह दुनियावी झगड़ों-झमेलों में उलझे हुए दुनियादारों के लिये एक शान्त और घनी छाया वाले नख़लिस्तान* के समान था। वज़ीर, अधिकारी, व्यापारी, विद्वान, रागी, सूफ़ी ही नहीं, कई योगी भी यहाँ आकर ठहरते थे। 'हम दिली अज़ हम ज़बानी बेहतर अस्त' अर्थात् दिली दोस्ती ज़बानी दोस्ती से बेहतर है। इस

* हरी-भरी जगह।

जमातख़ाने में अलग-अलग जगह से आनेवाले और अलग-अलग भाषाएँ बोलने वाले लोग यहाँ सेवा, क्षमा, नम्रता और प्रेम की साँझी बोली बोलते थे।[45] इस जमातख़ाने का माहौल इस बात का अमली सबूत था कि क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों की अनेकता के बावजूद ख़ुदा और उसकी ख़लकत का प्रेम सारी दुनिया को रूहानी एकता के एक सुन्दर सूत्र में पिरो सकता है।

निज़ामुद्दीन

हज़रत निज़ामुद्दीन बाबा फ़रीद के जमातख़ाने के गुलदस्ते का बहुत ख़ूबसूरत फूल था। वह दिल्ली का मशहूर विद्वान था, जो उम्र में छोटा होने पर भी अत्यन्त ज्ञानवान था। वह बाबा फ़रीद के दर्शन के लिये आया, तो सदा के लिये उन्हीं का होकर रह गया। उसके अजोधन पहुँचने की कहानी काफ़ी दिलचस्प है।

निज़ामुद्दीन अभी बारह वर्ष का ही था, जब उसने पहली बार शेख़ फ़रीद का नाम सुना। एक दिन जब वह अपने उस्ताद के पास पढ़ रहा था, तो उस्ताद से मिलने आये एक रागी अबूबकर ख़र्राह ने बाबा फ़रीद के बारे में बात की। रागी मुलतान से लौटा था। उसने पहले शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया की ख़ानगाह के पवित्र रूहानी माहौल की भरपूर बड़ाई की और बाद में बाबा फ़रीद के जमातख़ाने के बारे में भी कुछ बताया। रागी ने ज़्यादा बड़ाई तो शेख़ बहाउद्दीन की ख़ानगाह के बारे की थी, पर निज़ामुद्दीन का दिल खिंचा चला गया बाबा फ़रीद की ओर। बाबा फ़रीद को देखे बिना ही, उसके मन में उनके प्रति गहरा प्रेम और सम्मान उमड़ आया। इस तरह उसके अन्दर उनके प्रेम की चिनगारी सुलग उठी, जिसने आगे चल कर एक शोले का रूप धारण कर लिया। हालत यहाँ तक पहुँच गई कि निज़ामुद्दीन नमाज़ के बाद कई-कई बार बाबा फ़रीद के नाम का भी ज़िक्र करता जिससे उसे एक विचित्र रूहानी सरूर हासिल होता। कई बार उसके मुँह से अचानक 'शेख़ फ़रीद' का नाम निकल पड़ता। उसके सहपाठियों को बाबा फ़रीद के प्रति उसकी गहरी श्रद्धा का पता लग चुका था। जब कभी उन्होंने उससे कोई बात पक्की करवानी होती तो वे कहते कि खाओ कसम बाबा फ़रीद की।[46]

निज़ामुद्दीन के हृदय में अंकुरित बाबा फ़रीद के इश्क़ का पौधा धीरे-धीरे बढ़ता रहा। एक बार वह अपने किसी रिश्तेदार के साथ बदायूँ से दिल्ली आ रहा था। उसके रिश्तेदार को जब भी रास्ते में किसी चोर, लुटेरे या जंगली जानवर से ख़तरा महसूस होता, वह दोनों हाथ उठाकर दुआ करता कि ऐ पीरो-मुर्शिद, हमें इस आफ़त से बचा। निज़ामुद्दीन ने उससे उसके मुर्शिद का नाम पूछा तो उसने बताया कि मेरा मुर्शिद शेख़ फ़रीद अजोधनी है। इससे निज़ामुद्दीन के मन पर लगी बाबा फ़रीद की महानता की छाप और भी गहरी हो गई[47] और उसने भी मन ही मन बाबा फ़रीद के आगे दुआएँ करनी शुरू कर दीं। रास्ते में एक जगह मस्ती की हालत में उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे काले चोले वाले एक बुज़ुर्ग ने उसे कस कर अपनी छाती के साथ लगा लिया और उसकी छाती को सूँघते हुए कहा, "इसमें से मुझे एक सच्चे मोमिन की ख़ुशबू आ रही है।"

कुल मालिक की मौज कि दिल्ली में जहाँ निज़ामुद्दीन ठहरा, वहीं पड़ोस में बाबा फ़रीद के छोटे भाई शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल का निवास था। नजीबुद्दीन निर्मल हृदय वाला सीधा-सादा दरवेश था। इस साधु-स्वभाव वाले भक्त की लम्बी सोहबत का निज़ामुद्दीन पर गहरा प्रभाव पड़ा। एक बार निज़ामुद्दीन ने उनसे अर्ज़ की, "आप अल्ला-तआला से दुआ करें कि मैं काज़ी बन जाऊँ।" शेख़ साहिब ने जवाब दिया, "तू काज़ी क्यों बनता है, कुछ और बन।"[48] हज़रत निज़ामुद्दीन कहा करते थे कि उन्हें बहुत देर बाद शेख़ साहिब की दूरदर्शिता का ज्ञान हुआ। जो कुछ उसे आगे जाकर बनना था, उस दरवेश को उसकी पहले से ही ख़बर थी, पर उसने इस पर पर्दा डाला हुआ था।

लगभग बीस वर्ष की उम्र में निज़ामुद्दीन अजोधन पहुँचा। उसे देखते ही बाबा फ़रीद ने फ़रमाया:

ऐ आतशे फ़िराक़त दिल रा कबाब करदा।
सैलाबे-इश्तियाक़त जां रा ख़राब करदा।

यानी तेरी जुदाई की आग ने दिल को कबाब कर दिया और तेरी मुलाकात की चाह ने जान को तबाह कर दिया।

निज़ामुद्दीन ने उत्तर दिया, 'ईशतयाको जबोस अज़ीम ग़लब बूदा असत।'[49] अर्थात् मेरे अन्दर तुम्हारी क़दमबोसी की ज़बरदस्त चाह थी।

इससे पता चलता है कि न केवल कामिल मुरीद को ही कामिल मुर्शिद के दीदार की तड़प होती है, बल्कि कामिल मुर्शिद भी बड़ी बेताबी से कामिल मुरीद का इन्तिज़ार करता है। बाबा फ़रीद ने उसी दिन निज़ामुद्दीन को बैअत कर दिया अर्थात् नामदान दे दिया।

बाबा फ़रीद की उम्र 90 वर्ष से ऊपर हो चुकी थी और आप इसके बाद केवल तीन वर्ष तक ही इस संसार में रहे। निज़ामुद्दीन हर वर्ष आपके दीदार के लिये आता था। गुरु के चोला छोड़ने से पहले वह तीन बार दिल्ली से अजोधन आकर कुछ समय के लिये आपके पास ठहरता रहा। जब निज़ामुद्दीन ने तीसरी बार मुर्शिद से विदा ली तो बाबा फ़रीद ने उसे ख़िलाफ़तनामा (प्रतिनिधित्व करने का आदेश) भी बख़्श दिया और अपने बाद अपना जानशीन बनाये जाने का इशारा भी कर दिया।

बाबा फ़रीद ने आशीर्वाद दिया, ''अल्ला-तआला की मेहर से तू ऐसा पेड़ बने, जिसकी घनी छाया में अनगिनत लोगों को शान्ति नसीब हो।''[50] कई कमाई वाले प्रेमी और बड़ी उम्र वाले मुरीद मौजूद थे, पर बाबा फ़रीद ने उनकी बजाय 23 वर्ष की उम्र के नौजवान को अपनी गद्दी सौंप दी, क्योंकि रूहानियत का आधार उम्र नहीं, बल्कि ख़ुदा की रज़ा, मुर्शिद की मेहर और मुरीद की अन्दरूनी रसाई है।

फ़क़ीरी और तंगदस्ती

इस बात पर हैरानी होती है कि बाबा फ़रीद जैसे दरवेश को, जिसके श्रद्धालुओं में अमीर, वज़ीर और अहलकार ही नहीं, नवाब और बादशाह भी थे, अत्यन्त तंगी का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। आपके शिष्य आपके लिये कुछ भी करने को तैयार थे और आप चाहते तो लाखों रुपये इकट्ठे कर लेते, पर आपकी असल दौलत फ़क़ीरी थी। भूखे रहना आपके जीवन का स्वाभाविक अंग बन चुका था।

फ़रीद का परिवार काफ़ी बड़ा था। आपके पाँच बेटे और तीन बेटियाँ थी। आर्थिक तंगी के कारण आपके परिवार के किसी न किसी सदस्य को भूखा रहना पड़ता था। जब बाबा फ़रीद को इस बारे में बताया जाता तो वे सुनकर भी अनसुना कर देते। एक दिन आपकी बीवी ने शिकायत की कि आपका

एक बेटा फ़ाक़े के कारण मौत के क़रीब पहुँच गया है। बाबा फ़रीद ने जवाब दिया कि अगर कुल मालिक की यही रज़ा है, तो ग़रीब फ़रीद क्या कर सकता है? मालिक की दया से आपका एक बेटा निज़ामुद्दीन फ़ौज में भर्ती हो गया और बाक़ी के लड़के खेती-बाड़ी से अपना गुज़ारा करते रहे।

बाबा फ़रीद ने सारा जीवन फटे-पुराने कपड़ों में बिता दिया। आप एक श्लोक में लिखते हैं, 'फरीदा खिंथड़ि मेखा अगलीआ'[51] अर्थात् मेरी गुदड़ी में जगह-जगह पैबन्द लगे हुए हैं। जब कोई श्रद्धालु आपको नये कपड़े भेंट करता, तो आप फ़ौरन वे कपड़े किसी ज़रूरतमन्द को दे देते। आपके पास एक कम्बल था, जिसे आप दिन में आसन के तौर पर इस्तेमाल करते और उसी को रात में चारपाई पर बिछा लेते। कम्बल इतना लम्बा नहीं था कि पूरी चारपाई पर आ सकता। पैर की तरफ़ से चारपाई नंगी रह जाती। आप तकिये की जगह अपने सिर के नीचे सदा अपने मुर्शिद का असा (डण्डा) रखते थे।

एक बार हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया अपनी पगड़ी गिरवी रखकर दुकानदार से नमक उधार ले आये कि पीरो-मुर्शिद को फीकी सब्ज़ी न खानी पड़े। जब खाना परोसा गया और बाबा फ़रीद ने सब्ज़ी में ग्रास डाला तो हाथ ऊपर न उठा। आपने एकदम हाथ पीछे खींचकर कहा, 'अज़ ईं बूए अशराफ़ मी आइद।'[52] अर्थात् इसमें से फ़ज़ूल-ख़र्ची की बू आ रही है। हज़रत निज़ामुद्दीन लिखते हैं कि मैं थर-थर काँपने लगा कि मुर्शिद की ख़ुशी की बजाय नाराज़गी हासिल हो रही है। आपने फ़ौरन अपनी ग़लती मानते हुए कहा, ''हुज़ूर, बाक़ी सभी चीज़ें तो हम लोग ख़ुद जंगल में से लाये थे, पर नमक उधार लाये हैं।'' बाबा फ़रीद ने कहा, ''इस हालत में हममें से कोई भी यह खाना नहीं खा सकता। उधार माँगकर खाना दरवेशों के उसूल के ख़िलाफ़ है।'' जो कुछ भी पकाया गया था, सब ग़रीबों में बाँट दिया गया।

फ़तूह*

बाबा फ़रीद अपना और अपने परिवार का गुज़ारा अपनी हक़-हलाल की कमाई पर करते थे। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के अनुसार आप कई घण्टे

* जो सेवा-भेंट, श्रद्धालु पीर के माँगे बिना अपनी इच्छा से लाते थे, उसे 'फ़तूह' कहा जाता था।

ज़ंबील (खजूर के पत्तों) के थैले बुनते रहते थे। ज़ंबील की आमदनी से आपके लिये दो रोटियाँ बनाई जातीं। आप एक रोटी के बहुत-से टुकड़े करके उस समय मौजूद लोगों में बाँट देते और एक रोटी स्वयं खा लेते। कई बार तो इस एक रोटी का भी कुछ भाग लोगों में बाँट देते।[53]

बाबा फ़रीद ने अपने एक श्लोक में लिखा है, 'फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि॥ जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि॥'[54] आप कुल मालिक से प्रार्थना करते हैं कि मुझे कभी किसी का मुहताज न होना पड़े; किसी के आगे हाथ न फैलाने पड़ें। इससे तो बेहतर है कि मेरी रूह जिस्म से अलग हो जाये। आपने मालिक के सच्चे भक्तों के लिये बहुत ऊँची मिसाल क़ायम की है। आप माँगने से मर जाना कहीं बेहतर बताते हैं।

यहाँ यह ज़िक्र करना ज़रूरी है कि बाबा फ़रीद की ख़्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी। आपके दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिये आनेवालों का हमेशा तांता लगा रहता था। इसलिये रूहानियत की भूख लेकर आये श्रद्धालुओं, साधकों और दरवेशों की खाने-पीने की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये आपको लोगों से सेवा-भेंट स्वीकार करनी पड़ती थी। इस सेवा-भेंट को उपयोग करने का एक कड़ा नियम यह था कि जो कुछ भी 'फ़तूह' के तौर पर जब भी आये, उसे उसी दिन, उसी वक़्त ख़र्च कर दिया जाये, किसी हालत में कुछ भी बचा कर न रखा जाये। अगर शाम के समय कुछ सेवा-भेंट के तौर पर आ जाता तो वह शाम के समय ही ज़रूरतमन्दों में बाँट दिया जाता, कुछ भी अगले दिन के लिये बचा कर न रखा जाता।

बादशाह नसीरुद्दीन अहमद आपका श्रद्धालु था। एक बार उसने बहुत-सा धन और चार गाँवों का पट्टा अपने एक वज़ीर द्वारा आपकी सेवा में भेजा। बाबा फ़रीद ने नक़द धन स्वीकार करके, उसी समय लोगों में बाँट दिया, पर चार गाँवों का पट्टा यह कहकर वापस कर दिया कि दरवेश जागीर क़बूल नहीं करते। एक बार अजोधन के शासक ने भी आपको दो गाँव जागीर में देने चाहे, पर आपने यह कहकर इनकार कर दिया कि अगर मैं जागीर लेता हूँ तो मैं फ़क़ीर नहीं, दुनियादार गिना जाऊँगा और किसी फ़क़ीर को मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहूँगा।

इसी तरह एक बार बादशाह बलबन ने आपको टकों (सिक्कों) से भरी एक बड़ी तश्तरी भेंट की। सूर्य डूब चुका था और अँधेरा हो चुका था। पर दरवेश सुबह होने का इन्तिज़ार नहीं कर सकता था। आपके हुक्म से आपके शिष्य बदरुद्दीन ने उसी समय सारी रकम ज़रूरतमन्दों में बाँट दी। बाद में दीपक की रोशनी में उसे एक टका नीचे गिरा नज़र आया, जिसे उठाकर बदरुद्दीन ने अपनी टोपी में सँभालकर रख लिया कि सुबह होते ही किसी ग़रीब को दे दूँगा। जब बाबा फ़रीद शाम की इबादत में बैठे तो आपको मन पर बोझ महसूस हुआ और इबादत में मन न लगा। आपने बदरुद्दीन से पूछा कि सारी रकम लोगों में बाँट दी थी कि नहीं। बदरुद्दीन ने बचे हुए एक टके के बारे में बताया तो आपने उससे वह टका लेकर दूर फैंक दिया और शान्त-चित्त होकर बन्दगी में लीन हो गये।[55]

बाबा फ़रीद को लाखों रुपये सेवा-भेंट में मिले, पर उन्होंने उसकी पाई-पाई गरीबों और ज़रूरतमन्दों पर ख़र्च कर दी। विधवाएँ और अनाथ, बाबा फ़रीद की दया के विशेष पात्र थे। वे उन्हें कुछ देते समय बहुत ख़ुशी महसूस करते थे। बाबा फ़रीद ने नज़राने में आई सेवा-भेंट में से एक पैसा भी अपने परिवार के लिये ख़र्च नहीं किया। हालत यह थी कि आपकी मौत के समय कफ़न के लिये सफ़ेद चादर एक बुज़ुर्ग औरत ने दी और आपकी क़ब्र पर कच्ची ईंटें ही चिनी गई थीं।

काठ की रोटी

बाबा फ़रीद का एक श्लोक है, 'फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख॥ जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख॥'[56] इस श्लोक को आधार बना कर कुछ जीवनी लेखकों ने यहाँ तक लिख दिया है कि बाबा फ़रीद अपने पेट पर काठ की रोटी बाँध कर रखते थे। जब आपको भूख लगती तो आप इस रोटी को दाँतों से काट लेते। इससे उनकी भूख मिट जाती और वे फिर मालिक की भक्ति में लग जाते।

यह ठीक है कि बाबा फ़रीद थोड़ा खाते थे और आपने अपनी साधना के शुरू के दिनों में लम्बे रोज़े भी रखे। कम खाना, कम सोना, कम बोलना और एकान्त का प्रेम आपके जीवन और उपदेश के मुख्य अंग थे, पर आपकी वाणी

में किसी तरह भी हठ-कर्मों की वकालत नहीं की गई थी। इसी बात को गुरु नानक साहिब के प्रसंग में देखते हैं। आपके बारे में भाई गुरदास कहते हैं:

रेत अक आहार कर रोड़ां की गुर कीअ विछाई॥
भारी करी तपस्या वडे भाग हर स्यों बण आई॥[57]

'रोटी मेरी काठ की' और 'रेत अक आहार कर' काव्यात्मक और आलंकारिक वर्णन हैं। इनका सीधा-सादा अर्थ यह है कि दरवेश, स्वादिष्ट भोजन नहीं, बल्कि रूखा-सूखा सादा भोजन खाते थे। गुरु नानक साहिब ने परमात्मा के भक्तों के लिये 'अंनु पाणी थोड़ा खाइआ .'[58] का आदर्श रखा है। सन्तों-महात्माओं ने 'अलप आहार सुलप सी निदरा' अर्थात् कम खाने और कम सोने का उपदेश दिया है। यही 'रोटी मेरी काठ की' और 'रेत अक आहार कर' का असल भाव है।

बाबा फ़रीद का असल उपदेश इस श्लोक की दूसरी पंक्ति में है, 'जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख॥' यहाँ 'चोपड़ी' से मतलब ऐशो-इशरत का भोजन है। 'घणे सहनिगे दुख' का अर्थ है कि इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों में लिप्त करनेवाले स्वादिष्ट भोजन मनुष्य को ऐसे पापों का भागी बना देते हैं जिनका फल भोगने के लिये उसे अनेक दुःख सहने पड़ते हैं।

इस प्रसंग में बाबा फ़रीद का एक और श्लोक है, 'फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखीआ जंगलि जिन्हा वासु॥ ककरु चुगनि थलि वसनि रब न छोडनि पासु॥'[59] वे पक्षी धन्य हैं, जो जंगल में रहते हैं, कंकर चुगते हैं, पर परमात्मा का साथ नहीं छोड़ते। आपके कहने का असल भाव यह है कि परमात्मा के सच्चे भक्त रूखा-सूखा खाकर सब्र-सन्तोष का जीवन व्यतीत करते हैं। हर प्रकार की कठिनाई के बावजूद वे कभी भी ख़ुदा की बन्दगी और भरोसे का दामन नहीं छोड़ते।

बाबा फ़रीद अपने एक अन्य श्लोक में कहते हैं, 'रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ॥ फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ॥'[60] आपका भाव है कि सच्चा दरवेश सब्र, शुक्र और रज़ा की मूर्ति होता है। कुल मालिक की मौज से उसे अपनी हक़-हलाल की कमाई द्वारा जो भी रूखा-सूखा खाने को मिलता है, उसके लिये वह ही सबसे श्रेष्ठ और स्वादिष्ट भोजन होता है। वह

मालिक के प्यार में इतना मस्त होता है कि वह दूसरों की ऐशो-इशरत की ज़िन्दगी की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखता।

करामातें

अन्य कामिल दरवेशों की तरह ही बाबा फ़रीद के साथ भी कई करामातें जोड़ी गई हैं। 'कशफ़ल-महजूब' के रचयिता दाता गंजबख़्श के मुताबिक़ करामात या मुअज्ज़ा, वली (सन्त) और पैग़म्बर के लिये क़ुदरती बात है। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के अनुसार वली अल्लाह (सन्त) को यह करामात हासिल होती है कि उसे बिना किसी के सिखाये ही हरएक इल्म हासिल हो जाता है; जो चीज़ें लोग सपने में देखते हैं, वह जागते हुए देख सकता है और सिर्फ़ ख़याल, तवज्जुह या नज़र से लोगों के मन को जिधर चाहे उधर मोड़ सकता है।[61] बाबा फ़रीद ने एक बार यह साखी सुनाई:

एक बादशाह किसी दरवेश के पास गया। दरवेश के सामने थाली में एक सेब पड़ा था। बादशाह ने सोचा कि अगर दरवेश अन्तर्यामी है तो यह सेब मुझे देगा। बादशाह को देखकर दरवेश ने उसे यह कहानी सुनाई कि एक गधे के मालिक ने अपने गधे को इतना माहिर कर लिया कि वह बन्द आँखों से किसी को भी सूँघकर बता देता था कि उसके पास सोने की अँगूठी है या नहीं। दरवेश ने कहा कि अब अगर हम करामात दिखायें तो अँगूठी सूँघने वाले उस गधे के समान हुए , पर अगर तुम्हारे दिल की बात न बतायें तो आप लोग कहते हो कि दरवेश मन की बात नहीं बूझ सकता। यह कहते हुए दरवेश ने सेब बादशाह को दे दिया।[62]

कामिल दरवेश रूहानी अभ्यास और रूहानियत की प्राप्ति में लगे अपने मुरीदों की अनेक प्रकार से सहायता करते रहते हैं। उनसे सहज-भाव में बहुत कुछ ऐसा होता रहता है, जिस पर इनसानी अक़्ल दंग रह जाती है, पर इसका मुख्य उद्देश्य अपने शिष्यों की सहायता करना होता है, ताक़त या करामात का दिखावा करना नहीं। इस बारे में बाबा फ़रीद के साथ जुड़ी दो घटनाएँ बताने योग्य हैं।

एक बार कोई प्रेमी शिष्य बाबा फ़रीद के दर्शन के लिये आ रहा था। रास्ते में एक बदचलन औरत ने उसे अपने जाल में फँसा लिया। वह रास्ते में ही था

कि अचानक एक आदमी ने ज़ोर से उसके मुँह पर चाँटा मारा और कहा, "तुझे शर्म नहीं आई? आया तो तू मुर्शिद के दीदार के लिये है और करतूत ऐसी कर रहा है।" यह सुनकर उसकी आँखें खुल गईं। वह दौड़कर मुर्शिद के पास जा पहुँचा और सिर उनके चरणों में रख दिया। बाबा फ़रीद ने कहा, "तुझे ख़ुदा ने गुनाह से बचा लिया है, तू उसका शुक्र कर; शुक्राना ही उसके दर का नज़राना है।"

इसी तरह एक बार बाबा फ़रीद के इलाके पर किसी हाकिम ने हमला कर दिया और गाँव का बहुत-सा सामान लूटकर ले गया। इसी शोरगुल में एक तेली की ख़ूबसूरत बीवी भी उठा ली गई। तेली रोता-रोता बाबा फ़रीद के पास अपनी फ़रियाद लेकर आया। आपने हमदर्दी से उसे खाना खिलाया और कहा, "तू धीरज रख, तेरी बीवी तुझे दिला देंगे।" तेली जैसे-तैसे ठहर तो गया, पर उसका दिल नहीं टिक रहा था। तीसरे दिन हाकिम का मुंशी शेख़ फ़रीद के पास आकर मिन्नतें करते हुए बोला, "हाकिम ने मुझे हिसाब-किताब की पड़ताल के लिये बुलाया है, मेरा छुटकारा कराओ।" बाबा फ़रीद को पता था कि वह शख़्स नेक दिल और निर्दोष है। आपने कहा, "तू फ़िक्र मत कर, तुझे सज़ा नहीं, बल्कि ईनाम मिलेगा, पर ईनाम में से एक चीज़ हमें देनी होगी।" मुंशी ने कहा, "हुज़ूर, सबकुछ आपका ही है, आप कृपा करो।" बाबा फ़रीद ने तेली को उसके साथ भेज दिया। मुंशी के मासूम चेहरे को देखते ही हाकिम ने कहा, "इसे सिरोपाव देकर छोड़ दो और एक दासी भी साथ में दे दो।" हुक्म के अनुसार मुंशी को सिरोपाव दिया गया और साथ ही एक दासी को भी भेजा गया। वह दासी तेली की पत्नी ही थी। अपनी पत्नी के मिल जाने पर वह तेली बहुत ख़ुश हुआ। बाबा फ़रीद का गुणगान करते हुए पति-पत्नी अपने घर लौट गये।*

सन्तों-महात्माओं द्वारा की गई ऐसी मानवीय और रूहानी सहायता की स्वाभाविक घटनाओं के स्थान पर लोग उनके साथ अनेक प्रकार की अस्वाभाविक करामातें भी जोड़ देते हैं। कहावत है कि पीर नहीं उड़ते, मुरीद

* विस्तार के लिये देखें: 'श्रेष्ट गोष्टां', (अनु.) प्रीतम सिंह, पृ. 58-61.

उन्हें उड़ाते हैं अर्थात् पीर करामातें नहीं करते, उनके मुरीद उनके साथ कई प्रकार की करामातें जोड़ देते हैं।

सन्तों और दरवेशों के शिष्यों को यह डर लगा रहता है कि हमारा गुरु या पीर, किसी दूसरे गुरु-पीर से छोटा न रह जाये। इसलिये जिस प्रकार की करामातें दूसरे दरवेशों के साथ जुड़ी होती हैं, वे अपने गुरु के साथ वैसी ही या उनसे भी बड़ी करामातें जोड़ने का यत्न करते हैं। एक दरवेश के बारे में कहा गया है कि वह जब भी काअबा जाने की इच्छा प्रकट करता, फ़रिश्ते काअबा उठा कर उसके सामने लाकर रख देते। एक अन्य दरवेश के बारे में लिखा गया है कि उसे बहुत जल्दी कहीं पहुँचना था, वह दीवार पर बैठा था। उसने दीवार को थपथपाया और कहा कि चल, चलें। हुक्म की देर थी कि दीवार दरवेश को अपनी पीठ पर बिठाकर घोड़े की तरह दौड़ पड़ी। समझदार लोग ख़ुद अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि इस किस्म की करामातों का रूहानी महत्त्व क्या है? इस प्रकार की करामातों का ताना-बाना बुनने वाले श्रद्धालु इस बात की भी परवाह नहीं करते कि हम श्रद्धावश होकर और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर जो कुछ कह रहे हैं, वह कहीं उस दरवेश की बुनियादी तालीम के ख़िलाफ़ तो नहीं है। मिर्ज़ा फ़रीदुद्दीन ने बाबा फ़रीद से जुड़ी लगभग तीस करामातों का वर्णन किया है, पर साथ ही यह चेतावनी भी दी है कि करामात दिखाना किसी तरह भी इस्लाम और सूफ़ी दरवेशों की तालीम के अनुकूल नहीं है।[63]

मौलाना अलहाज वाहिद बख़्श सियाल चिश्ती साबरी के अनुसार बाबा फ़रीद और दूसरे ऊँचे दर्जे के दरवेशों ने करामातें नहीं दिखाईं क्योंकि करामातें निचले दर्जे की चीज़ें हैं। करामातें दिखाने से रूहानी रुतबे में कमी आती है। जैसे-जैसे साधक ज़ाते-हक़ (प्रभु) की ओर तरक़्क़ी करता है, वह ख़ुद-ब-ख़ुद ही करामात से ऊपर उठता जाता है। ज़ाते-अल्लाह से अभेद हो चुका दरवेश, ख़ुदा की रज़ा में राज़ी रहना पसन्द करता है, करामातें दिखाना नहीं।[64]

बाबा फ़रीद के मुर्शिद हज़रत बख़्तियार काकी ने फ़रमाया है कि अलग-अलग सूफ़ी दरवेशों ने रूहानी तरक़्क़ी के पड़ावों की गिनती अलग-अलग ढंग से की है। कोई दरवेश रूहानी तरक़्क़ी के रास्ते को 100 पड़ावों में बाँटता है,

कोई 80 पड़ावों में और कोई 55 पड़ावों में। चिश्ती सिलसिले के दरवेशों ने रूहानी तरक़्क़ी के 15 पड़ाव माने हैं। जो दरवेश रूहानी सफ़र को 100 पड़ावों में बाँटते हैं, उनके अनुसार 80वें पड़ाव पर पहुँचकर करामात की शक्ति मिलती है। चिश्ती दरवेशों के अनुसार 10वें पड़ाव पर पहुँचकर करामात की शक्ति मिल जाती है। जो साधक इस मुक़ाम पर पहुँचकर अपने आपको करामात द्वारा ज़ाहिर कर देता है, उसकी अगले पड़ावों की तरक़्क़ी बन्द हो जाती है। कामिल दरवेश वही है जो आख़िरी मुक़ाम पर पहुँचकर भी करामात में न पड़े।[65]

सरकार, राज्य और राजनीति के प्रति दृष्टिकोण

मध्य काल के सूफ़ी दरवेश आम तौर पर और चिश्ती सिलसिले के दरवेश ख़ास तौर पर, उस समय की सरकार से दूर ही रहते थे। बड़े-बड़े सरकारी अहलकार, वज़ीर, शहज़ादे और बादशाह उनके दरबार में आते रहते थे, परन्तु वे दरवेश न तो ख़ुद उनकी नज़दीकी हासिल करने या उनसे कोई लाभ प्राप्त करने की कोशिश करते और न ही समय की राजनीति में कोई दख़ल देते। उनका सारा ज़ोर लोगों के अन्दर नैतिक और रूहानी गुणों का निर्माण करने पर होता था। बाबा फ़रीद तो अपने मुरीदों को बड़े साफ़ लफ़्ज़ों में उपदेश दिया करते थे कि रूहानी तौर पर ऊँचा उठना चाहते हो तो शहज़ादों की सोहबत से परहेज़ करो।[66]

बाबा फ़रीद ने ख़ुद जीवन भर तन-मन से इस उसूल का पालन किया। न तो भूखे रहने के कारण और न ही राज-दरबार में मिलने वाली शानो-शौकत के कारण बाबा फ़रीद ने कभी अपने उसूलों के साथ समझौता किया। अनेक विद्वान, मौलवी और काज़ी राजनीति के गन्दे पानी में उतर गये, पर बाबा फ़रीद ने इससे पूरा परहेज़ किया। उनके एक शिष्य सैयद मौलाना ने अजोधन से दिल्ली जाने की इजाज़त माँगी तो बाबा फ़रीद ने उसे साफ़ लफ़्ज़ों में सावधान किया कि अगर दिल्ली जाना ही चाहते हो तो मेरी यह नसीहत हमेशा याद रखना कि शाहों और उनके अहलकारों की संगति से बच कर रहना।[67]

सैयद मौलाना ने दिल्ली जाकर अपने पीर के उपदेश के विरुद्ध शाही अहलकारों की सहायता से एक ख़ानगाह बनवा ली और उन अहलकारों के

साथ ख़ूब मेल-मिलाप कर लिया। वह ख़ानगाह राजनीतिक चालों का अखाड़ा बन गई। फलस्वरूप उसके शरीर में कीलें चुभोई गईं, उसके शरीर को उस्तरे से छीला गया और उस पर मस्त हाथी छोड़कर उसकी जान ले ली गई।[68]

बादशाह इल्तुतमिश ने ख़्वाजा बख़्तियार काकी को 'शेख़ुल-इसलाम' बनाने की पेशकश की, पर आपने यह पद स्वीकार नहीं किया। हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को कई बार जागीरें पेश की गईं। आपने मुस्करा कर फ़रमाया, 'चिश्ती दरवेशों ने कभी जागीरें क़बूल नहीं कीं।'[69] बाबा फ़रीद भी सूफ़ी साधकों को चेतावनी देते रहते थे कि न तो शाही दरबार से इज़्ज़त हासिल करने की इच्छा रखो और न ही किसी भी हालत में रूहानियत को दुनियादारी पर क़ुर्बान करो।

हज़रत बख़्तियार काकी के एक शार्गिद और बाबा फ़रीद के गुरु-भाई बदरुद्दीन ग़ज़नवी ने एक शाही अहलकार मलक-निज़ामुद्दीन की मदद से एक ख़ानगाह बनवा ली। कुछ देर बाद वह अहलकार ग़बन के मामले में पकड़ा गया तो बदरुद्दीन ने बाबा फ़रीद को एक पत्र भेजा कि आप अहलकार के हक़ में दुआ करें। बाबा फ़रीद ने बदरुद्दीन को जवाब में लिखा:

''मुझे मेरे भाई का ख़त मिला है और ख़ुशी हुई है। जो कोई भी अपने बुज़ुर्गों के क़ायम किये हुए दस्तूर के ख़िलाफ़ काम करेगा, उसे दुःख और तकलीफ़ में से ज़रूर गुज़रना पड़ेगा। हमारे सिलसिले के किसी भी बुज़ुर्ग ने कभी अपने रहने के लिये या प्रचार के लिये किसी से ख़ानगाह नहीं बनवाई, न हमारे पीर हज़रत बख़्तियार काकी का यह दस्तूर था और न ही उनके पीर ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का। उन्होंने अपने किसी मुरीद से कोई ख़ानगाह नहीं बनवाई, जिसे वे दुनियादारों की तरह सजा कर रखते। वे एकान्त-पसन्द थे और लोगों की नज़रों से दूर रहते थे। आपके लिये भी ज़रूरी है कि इस तरह के बड़े लोगों की सोहबत से बच कर रहें।''[70] कहा जाता है कि बाबा फ़रीद की शादी बादशाह बलबन की बेटी के साथ हुई थी, किन्तु डॉ. निज़ामी ने इस बात को इतिहास के विरुद्ध बताया है।[71]

दिल्ली का बादशाह बलबन बाबा फ़रीद का बहुत आदर करता था। एक बार किसी ज़रूरतमन्द ने फ़रीद साहिब के आगे बार-बार विनती करके उनसे

अपने हक़ में बलबन के नाम एक पत्र लिखवा लिया। बाबा फ़रीद ने अरबी भाषा के इस पत्र में लिखा, "मैंने इसका सवाल पहले अल्लाह-तआला के आगे रखा है और अब तेरे सामने रखता हूँ। अगर तू इसे कुछ देगा तो असल दाता अल्लाह-तआला होगा, पर इसकी बड़ाई तुझे मिलेगी। अगर तू इसे कुछ नहीं देगा, तो देने से रोकने वाला अल्लाह-तआला होगा।"[72] आप अपने लिये या अपने मुरीदों के लिये किसी शाह या अहलकार की चापलूसी नहीं करते थे। आप असल दाता और कर्ता उस कुल मालिक को ही मानते थे।

डॉ. निज़ामी के अनुसार मुलतान का गवर्नर, बलबन का चचेरा भाई शेर खां, बाबा फ़रीद की निन्दा किया करता था। बाबा फ़रीद अकसर यह कहा करते थे, अफ़सोस कि तुझे असलियत का पता नहीं है। जब तुझे इसका पता चलेगा तो फिर अफ़सोस करने का भी कोई फ़ायदा नहीं होगा।[73] हुआ भी इसी तरह। कुछ समय बाद शेर खां को काफ़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ा और उसे बाबा फ़रीद के साथ किये अपने बर्ताव पर शर्मिन्दा होना पड़ा। बाबा फ़रीद ने आम लोगों को अनेक नसीहतें दी हैं, पर शहंशाहों और राजनीतिज्ञों को सिर्फ़ एक ही नसीहत दी है, 'मुल्क बवज़ीरे ख़ुदा तरस ज़ब्त कुन।'[74] यानी देश की बागडोर ख़ुदा से डरने वाले किसी वज़ीर के हाथ में दो।

चिश्ती सिलसिला और बाबा फ़रीद

भारत में सूफ़ियों के चिश्ती सिलसिले की नींव ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने रखी और हज़रत बख़्तियार काकी के समय में भी इसका प्रसार हुआ। पर चिश्तियों के नैतिक और रूहानी उपदेश को मज़बूती के साथ खड़ा करके, उसे आम लोगों तक पहुँचाने में बाबा फ़रीद ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

बाबा फ़रीद के मुरीदों में मुख्य रूप से दो किस्म के लोग शामिल थे- एक वे जिन्होंने केवल रूहानियत को अपने जीवन का एकमात्र मक़सद बना लिया था और दूसरे वे जो दुनिया के फ़र्ज़ पूरे करते हुए बाबा फ़रीद के उपदेश से लाभ उठाकर रूहानी तरक़्क़ी के लिये कोशिश कर रहे थे। दूसरी किस्म के लोगों के लिये यह ज़रूरी था कि वे मुर्शिद के हुक्म के मुताबिक़

रोज़ाना इबादत को भी समय दें और ज़कातेे-शरीअत या ज़कातेे-तरीक़त भी अदा करें। पहली तरह के शिष्यों के लिये ज़कातेे-हक़ीक़त* की शर्त थी।[75] इसके अलावा उनके लिये यह उपदेश था:

> रूहानी तरक़्क़ी के लिये सिर्फ़ शरीअत का पालन करना और मशीन की तरह सिमरन करते रहना ही काफ़ी नहीं। साधक के रोम-रोम से रूहानियत की ख़ुशबू आनी चाहिये। उसे चाहिये कि हृदय की निर्मलता की ओर पूरा ध्यान दे क्योंकि आत्मिक संयम और मन की निर्मलता के बिना रूहानी तरक़्क़ी सम्भव नहीं। मार्फ़त (रूहानियत) के चाहवान को चाहिये कि मन में से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, नफ़रत आदि की जड़ें उखाड़ फेंके और किसी से झगड़ा न करे, बल्कि दुश्मनों को भी दोस्त बनाने की कोशिश करे।[76] अहले-मार्फ़त (ज्ञानियों) को शहंशाहों से दूर रहना चाहिये। दौलत, शौहरत और चमक-दमक सदाचार को कमज़ोर बना देती है और आत्मा के पाँव में बेड़ियों का काम करती है।[77] मार्फ़त के राही को दुनियावी ज़िम्मेदारियाँ पूरी करनी चाहियें और फ़र्ज़ निभाने चाहियें पर उसका दिल हमेशा उस सच्चे दोस्त की ओर रहना चाहिये।[78]

बाबा फ़रीद मज़हबी किताबों के पाठ और रूहानी मसलों के ज्ञान के हक़ में थे, पर साथ ही इस बात पर ज़ोर देते थे कि बिना प्रेम और भरोसे के बुद्धि का कोई मूल्य नहीं है।[79] बाबा फ़रीद अपने मुरीदों को वाचक-ज्ञानी नहीं बनाना चाहते थे। वे उनके अन्दर निर्मल नैतिक और रूहानी गुण पैदा करना चाहते थे। वे अपने शागिर्दों को आलिम ही नहीं, आमिल (अभ्यासी) भी बनाना चाहते थे। जिन शागिर्दों को बाबा फ़रीद चिश्ती सिलसिले के रूहानी उपदेश के प्रचार के लिये ख़लीफ़ा नियुक्त करते थे, उनसे ऊँचे सदाचार और ऊँची रसाई की माँग करते थे। निज़ामुद्दीन को अपना ख़लीफ़ा नियुक्त करते समय बाबा फ़रीद ने फ़रमाया, 'ख़ुदा ने तुम्हें इल्म भी दिया है, अक़्ल भी दी

---

* आय का आठवाँ हिस्सा दान में देना ज़कातेे-शरीअत है; सात हिस्से दान में देना ज़कातेे-तरीक़त है और अपना सबकुछ ही परमार्थ में लगा देना ज़कातेे-हक़ीक़त माना जाता है। विस्तार के लिये देखें: राहतुल-क़ुलूब, पृ. 9.

है और इश्क़ भी बख़्शा है; किसी भी मुरीद में मुर्शिद का ख़लीफ़ा बनने के लिये ये तीनों गुण होने ज़रूरी हैं।'[80]

बाबा फ़रीद ने अपने जीवन-काल में अपने कई ख़लीफ़ा नियुक्त किये, जो मुर्शिद के हुक्म से और मुर्शिद की रहनुमाई में चिश्ती सिलसिले के प्रसार का कार्य करते थे। इन ख़लीफ़ाओं में शेख़ नजीबुद्दीन मुतवक्किल, मौलाना बदरुद्दीन इसहाक़, शेख़ जमालुद्दीन हांसवी, शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, शेख़ आरिफ़, शेख़ अली साबिर और मौलाना फ़ख़रुद्दीन सफ़हानी मशहूर हैं।[81] केवल उसे ख़लीफ़ा नियुक्त किया जाता था जिसे मुर्शिद क़ाबिल समझता था। बाबा फ़रीद कच्चे और अधूरे ख़लीफ़ाओं के सख़्त ख़िलाफ़ थे। आप कहते थे कि सबसे उत्तम बात तो यह है कि पीर अन्तर में प्राप्त हुए इलाही हुक्म के आधार पर ख़िलाफ़त बख़्शे। कम-से-कम मुरीद की क़ाबलियत को मुख्य रखना और मुर्शिद की रहमत का शामिल होना तो बहुत ज़रूरी है।[82]

बिलग्राम का मौलाना फ़ख़रुद्दीन सफ़हानी अपने इलाके में बहुत मशहूर था। उसने एक सूफ़ी शेख़ दाऊद द्वारा सिफ़ारिश करवाई कि बाबा फ़रीद फ़खरुद्दीन को ख़िलाफ़तनामा दे दें। शेख़ दाऊद ने आगे हज़रत निज़ामुद्दीन और मौलाना शहाबुद्दीन से भी सिफ़ारिश करवाई। बाबा फ़रीद ने फ़रमाया:

> ईं कारे हक्क़ अस्त बा आरज़ू नीस्त।
> हर कि क़ाबिल बाशद नाख़्वास्ता बयाबद।[83]

अर्थ: यह ख़ुदा का कार्य है। किसी के माँगने से ख़िलाफ़त नहीं दी जा सकती। जो क़ाबिल है उसे माँगे बिना ही मिल जाती है।

बाबा फ़रीद इस बात पर ज़ोर देते थे कि मुर्शिद और मुरीद का आपस में जीवित रिश्ता होता है। कोई शख़्स किसी गुज़रे हुए मुर्शिद का मुरीद नहीं बन सकता। जब तक मुर्शिद ख़ुद मुरीद को बैअत* न करे, मुर्शिद और मुरीद का रूहानी रिश्ता क़ायम नहीं होता। बैअत करना कोई दिखावा या रस्म नहीं है। यह मुर्शिद और मुरीद के दरमियान एक इक़रारनामा है, मुरीद अपने मुर्शिद की तालीम पर अमल करने का इक़रार करता है और मुर्शिद उसे सही राह पर चलाने की ज़िम्मेदारी लेता है। बाबा फ़रीद के एक बेटे ने हज़रत बख़्तियार

* बैअत अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है दीक्षा या नामदान।

काकी के मज़ार पर सिर मुँडवा कर ऐलान कर दिया कि मैं हज़रत काकी से बैअत हो गया हूँ। जब बाबा फ़रीद को इसके बारे में पता चला तो आपने फ़रमाया, 'शैख़ क़ुतबुदीन ख़्वाजा व मख़दूमे मा अस्त, अमा ईं बैअत दुरुस्त ना बाशद। अहादत व बैअत आस्त कि दस्ते शैख़ी गीरंद।'[84] अर्थात् शेख़ बख़्तियार काकी मेरे मोहतरम (आदरणीय) मुर्शिद हैं, पर बैअत होने का यह ढंग ठीक नहीं है। बैअत होने और मुरीद बनने का यह तरीक़ा है कि मुरीद ज़िन्दा मुर्शिद का हाथ पकड़े।

बाबा फ़रीद अपने शागिर्दों की नैतिक और रूहानी तालीम की ओर पूरा ध्यान देते थे। वे अपने सहज ज्ञान के कारण अपने हर शागिर्द की अन्दरूनी हालत से वाक़िफ़ होते थे। वे प्रेम, हमदर्दी, सूझ-बूझ और ज़रूरत पड़ने पर पूरी सख़्ती से, उनकी हर तरह की कमी को दूर करके उनके अन्दर सच्ची रूहानियत की नींव को मज़बूत करते थे।[85] एक बार मौलाना बदरुद्दीन इसहाक़ मुर्शिद के हुक्म के ख़िलाफ़ क़ुरान शरीफ़ की तलावत (पाठ) में लगा रहा। बाबा फ़रीद ने उसे समझाया कि मुर्शिद के हुक्म को मानने से बड़ी तलावत और रियाज़त (भक्ति) कोई नहीं है और मुर्शिद का हुक्म न मानने पर रूहानी कमाई में भारी बाधा पड़ जाती है।[86] निज़ामुद्दीन औलिया कहते हैं:

> कामिल मुर्शिद वह है, जो ख़ुद रूहानी सफ़र तय कर चुका है और अपने मुरीद को भी यह सफ़र तय करने में मदद देता है। कामिल मुर्शिद वह है, जो मुरीद की दौलत पर नज़र रखे बिना, मुरीद को रूहानी तालीम दे; जिसे अल्लाह के नाम पर एक बार मुरीद मान ले, फिर किसी भी हालत में उसे रद्द न करे; जिन कामों से उसके मुर्शिद ने उसे मना किया हो, अपने मुरीदों को भी उन कामों से रोके और अगर मुरीद इशारे, नसीहत और नर्मी से सही रास्ते पर न आये, तो उसकी बेहतरी के लिये सख़्ती करने से भी परहेज़ न करे, क्योंकि मुर्शिद दाई के समान होता है और मुरीद बच्चे के समान।[87]

एक बार बाबा फ़रीद अवारिफ़ुल-मुआरिफ़ नामक पुस्तक की व्याख्या कर रहे थे, तो आपके प्रिय शिष्य निज़ामुद्दीन ने बीच में अपनी दलील देने की कोशिश की। मुर्शिद को यह बात पसन्द न आई और वह उससे नाराज़ हो

गये। निज़ामुद्दीन को अपनी भूल का अहसास हुआ और उसने बहुत पश्चाताप भी किया। मुर्शिद ने उसकी भूल माफ़ कर दी और बाद में उसे अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त कर दिया।[88] इससे पता चलता है कि मुरीद की रूहानी तालीम कितना पेचीदा मामला है। असल में रूहानियत का सारा राज़ मुर्शिद में छिपा होता है। किसी ज़िन्दा कामिल मुर्शिद की रहमत के बिना, रूहानी तरक़्क़ी कर पाना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है। बाबा फ़रीद का कलाम है:

बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ॥
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥[89]

आप समझाते हैं कि शिष्य को चाहिये कि मनमर्ज़ी का मार्ग त्यागकर सतगुरु के बताये हुए मार्ग पर चले क्योंकि यही सच्चाई और धर्म का असल मार्ग है।

अपने शिष्यों की रूहानी तरक़्क़ी के लिये बाबा फ़रीद और दूसरे चिश्ती दरवेशों ने सबसे ज़्यादा ज़ोर नफ़्स (मन) को वश में करने पर दिया है। नफ़्स को वश में करने के लिये साधक को चाहिये:

1. नम्रता धारण करे और दूसरों को अपने से अच्छा और बड़ा समझे।
2. दोस्तों से तो सभी अच्छा बर्ताव करते हैं, ख़ुदा के बन्दे को चाहिये कि दुश्मनों के साथ भी नेकी और नर्मी से व्यवहार करे।
3. अपने आपको सदा ख़ुदा की हज़ूरी में समझे। वह हर कर्म करते समय यह समझे कि वह कुल मालिक को देख कर काम कर रहा है। वह कम से कम यह ज़रूर समझे कि कुल मालिक उसके हर कर्म को देख रहा है।
4. वह पूरी तरह मुर्शिद के हुक्म में आ जाये क्योंकि मुर्शिद की पनाह, रहमत और हुक्म के पालन के बिना नफ़्स को वश में कर पाना नामुमकिन है।[90]

इस्लाम की तरह चिश्ती सिलसिले के दरवेशों में शराब आदि नशीली चीज़ों की सख़्त मनाही थी। नशीले पदार्थों का सेवन करना तो एक ओर रहा,

वे इन्हें छूते भी न थे। ऊपर पढ़ आये हैं कि बाबा फ़रीद से मिलने आया एक क़लन्दर अपने बर्तन में भाँग घोल रहा था कि भाँग के कुछ छींटे बाबा फ़रीद के मुसल्ले पर पड़ गए। आपके सेवकों ने इसका बहुत बुरा मनाया कि इससे मुर्शिद का मुसल्ला नापाक हो गया है।

बाबा फ़रीद के दरबार में औरतों की मर्दों से भी ज़्यादा इज़्ज़त होती थी।[91] बाबा फ़रीद कहा करते थे कि औरतों में ख़ुदा-परस्ती का जज़्बा मर्दों से कहीं ज़्यादा होता है। आप अक़सर अपनी माता की बड़ाई किया करते थे और इस बात पर ज़ोर देते थे कि नेक-दिल माताएँ अपने बच्चों में नेकी के जज़्बात पैदा कर सकती हैं। चिश्ती दरवेश अक़सर कहा करते थे कि इनसान की बड़ाई दिल की पाकीज़गी (पवित्रता) में होती है, औरत या मर्द होने में नहीं।[92]

चिश्ती दरवेशों का ग़ुलामों को उनके मालिकों से आज़ाद कराने का ढंग भी निराला था। बाबा फ़रीद अपने अनुयायियों को अक़सर समझाया करते थे कि सूफ़ीमत हर तरह की ग़ुलामी के ख़िलाफ़ है, क्योंकि इसमें ख़ुदा के अलावा किसी दूसरे को किसी का मालिक नहीं माना जाता।[93] कुल मालिक एक है। वह रब्बुल-आलमीन है। वह सबका साँझा पिता है, इसलिये किसी इनसान को किसी दूसरे को अपना ग़ुलाम बनाने का कोई हक़ नहीं।[94] लोगों में प्रसिद्ध था कि पीरो-मुर्शिद किसी ग़ुलाम की रिहाई पर बहुत ख़ुश होते हैं। हर नया मुरीद अपने ग़ुलाम को तो फ़ौरन आज़ाद कर ही देता, साथ ही वह किसी दूसरे के ग़ुलाम को आज़ाद करवाने की कोशिश में भी लग जाता।

एक बार जब शेख़ शरफ़दीन बाबा फ़रीद के दीदार के लिये नागौर से आया, तो उसकी दासी ने अपनी तरफ़ से एक दस्तार मुर्शिद को भेंट करने के लिये दी। शेख़ साहिब ने आकर दासी द्वारा भेजी दस्तार बाबा फ़रीद को भेंट की। आपने फ़रमाया, "ख़ुदा उसे आज़ादी बख़्शे। आज़ादी जैसी कोई चीज़ नहीं।" घर लौटते समय शेख़ शरफ़ ने सोचा कि बाबा जी के वचन से दासी ने आज़ाद तो हो ही जाना है, क्यों न इसकी क़ीमत बटोर ली जाये। फिर ख़याल आया कि अगर यह दूसरे के कब्ज़े में जाकर आज़ाद हुई तो इसका सवाब (पुण्य) भी उसे मिलेगा, मुझे नहीं। यह सोचकर उसने घर पहुँचते ही उस दासी को आज़ाद कर दिया।[95]

हज़रत मुईनुद्दीन द्वारा शुरू किये गए, हज़रत बख़्तियार काकी द्वारा आगे बढ़ाये गए चिश्ती सम्प्रदाय ने बाबा फ़रीद के यत्नों से एक शक्तिशाली प्रवाह का रूप धारण कर लिया। बाबा फ़रीद के बाद आपके प्रिय शिष्य और जानशीन हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया ने आपके कार्य को और आगे बढ़ाया। हर कामिल दरवेश ने इस धारा को और अधिक विशाल एवं मज़बूत बनाने में अपना योगदान दिया। इन कामिल दरवेशों द्वारा तन-मन से की गई लोगों की रूहानी अगुवाई ने देश के रूहानी क्षेत्रों में चिश्ती सिलसिले के दरवेशों के मान-सम्मान में बहुत वृद्धि की। इस सिलसिले के श्रद्धालुओं की गिनती भी काफ़ी बढ़ गई और चिश्ती सिलसिले का सम्मान दूर-दूर तक फैल गया।

महान व्यक्तित्व

बाबा फ़रीद मधुर-भाषी तो थे ही, आपका स्वरूप भी अत्यन्त मनमोहक और प्रभावशाली था। चेहरे से इलाही नूर झलकता था और आपकी निकटता से शान्ति का अहसास होता था। जहाँ भी आप जाते, लोगों का ध्यान अपने आप ही आपकी ओर खिंचा चला जाता।[96]

बाबा फ़रीद बहुत कम बोलते थे, पर आपके हर वचन में गहरा रहस्य भरा होता था। लोगों को आपकी संगति का जितना अधिक अवसर मिलता और जितना अधिक वे आपके उपदेश को सही अर्थों में समझने के क़ाबिल बनते जाते, उतनी ही ज़्यादा उनकी आपके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती। आपके उपदेश का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता क्योंकि आपके वचन निजी अनुभव पर आधारित होते थे।

बाबा फ़रीद का प्रिय शिष्य निज़ामुद्दीन औलिया जब पहली बार आपसे मिलने के लिये अजोधन आया, तब बाबा फ़रीद की उम्र लगभग 90 वर्ष की थी। उस समय आपके कई पुराने और प्रेमी शिष्य भी वहाँ मौजूद थे, किन्तु आपने उन सबको छोड़कर इस नये शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। यह सब आपने अपनी अन्दरूनी रसाई के सहारे किया था। कौन कह सकता है कि आपका फ़ैसला ठीक नहीं था। हज़रत निज़ामुद्दीन कहा करते थे कि जब वह शेख़ फ़रीद की शरण में गये तो उनके मन में यह कशमकश चल

रही थी कि अपनी पढ़ाई जारी रखूँ कि नहीं। एक दिन बाबा फ़रीद ने अपने आप ही उनसे कहा, "मैंने कभी किसी को अपनी पढ़ाई छोड़ने के लिये नहीं कहा। दरवेश को चाहिये कि तब तक बाहरी इल्म और रूहानी कमाई का दोहरा काम जारी रखे, जब तक दोनों में से एक का शौक़ दूसरे पर हावी नहीं हो जाता।"[97]

बाबा फ़रीद ग्रन्थों-शास्त्रों के भी ज्ञाता थे, पर आपका ज्ञान केवल किताबों की पढ़ाई तक ही महदूद (सीमित) नहीं था। आपको मनुष्य-मन की गहरी सूझ-बूझ थी और अन्दर रूहानी ज्ञान का प्रकाश भी प्राप्त था, जिसकी रोशनी में आप हर बात को उसके सही रूप में देखने में समर्थ थे। नीचे लिखी घटना इस बात की पुष्टि करती है।

> पाकपटन में एक मुल्ला रहता था, जो हमेशा फ़क़ीरों को बुरा-भला कहता रहता था। वह कहता था कि इन्होंने शरह-शरीअत की किताबें नहीं पढ़ीं, इन्हें दीन का क्या पता है। एक बार वह शेख़ फ़रीद के पास आकर भी उलटा-सीधा बोलने लगा। शेख़ फरीद ने कहा, "मुल्ला जी, बताइए इसलाम के कितने रुकन (अंग) हैं?" उसने जवाब दिया, पाँच- कलमा, नमाज़, रोज़ा, हज्ज और ज़कात (दान)। शेख़ फ़रीद ने कहा, मैंने सुना है कि एक छठा रुकन भी है और वह है रोटी। मुल्ला ग़ुस्से में आकर कहने लगा, आपको पता ही नहीं, इसका ज़िक्र न तो क़ुरान में है, न हदीसों में और न ही किसी और किताब में। आपने यह छठा रुकन कैसे बना दिया ?
>
> समय गुज़रता गया। मुल्ला हज्ज के लिये मक्का चला गया और सात वर्ष वहाँ रहा। जब वापस लौटा तो रास्ते में जहाज़ टूट गया और वह एक तख़्ते पर तैरता हुआ किसी स्थान पर किनारे जा लगा। भूख बहुत लगी हुई थी, कोई चारा नहीं था। एक रोटी वाला आया, उसने कहा कि तू मुझे सात हज्जों का फल दे दे, मैं तुझे रोटी दे देता हूँ। उसने सोचा, कहने से क्या होता है, कह देता हूँ , भूख तो मिटाऊँ। उसने रोटी ले ली। दूसरे दिन फिर भूख लगी तो उसने रोज़े रखने का पुण्य दे दिया। तीसरे दिन नमाज़ों का फल और चौथे दिन ज़कात का फल देकर रोटी खा ली।

अगले दिन मुल्ला बोला, "अब मेरे पास कुछ नहीं बचा।" रोटी बेचने वाले ने कहा, "कोई बात नहीं, अब तुम मुझे लिख कर दे दो कि मैं रोटी के बदले सारे पुण्य दे बैठा हूँ और आज केवल यह लेख ही दे रहा हूँ।" मुल्ला ने लेख देकर रोटी खा ली और वापस गाँव आ गया।

जब शेख़ फ़रीद को पता चला तो वह मुल्ला से बड़े प्रेम से मिले और सफ़र का हाल-चाल पूछते हुए कहा, हम आपको बहुत याद करते रहे हैं। आप अब हमसे नाराज़ तो नहीं ? तब आप एक बात पर गुस्से हो गये थे। आप दीन के पाँच रुकन बताते थे, हमने कहा था कि छठा रुकन और भी है। मुल्ला को सारी बात याद आ गई और उसने फिर ज़ोर देकर दोहराया, "मैं अब भी कहता हूँ कि फ़क़ीर शरह की किताबें नहीं पढ़ते, इन्हें पता ही नहीं, यूँ ही गप्पें हाँक देते हैं। मैंने तो किसी किताब में लिखा हुआ नहीं देखा, अगर आपने देखा है तो दिखाओ।" बाबा फ़रीद ने अपने सेवक को बुलाकर वह लेख मँगवाया जो मुल्ला ने अपने हाथ से लिखा था। मुल्ला लेख देखकर हैरान रह गया और शेख फ़रीद के चरणों पर गिर पड़ा।[98]

आचरण की निर्मलता

महानता के महल का निर्माण निर्मल आचरण की नींव पर होता है। बाबा फ़रीद का जीवन आचरण की निर्मलता के साँचे में ढला हुआ आदर्श जीवन था। संयम, अनुशासन और परहेज़ आपके जीवन का बुनियादी तत्त्व था। कम खाना, कम सोना, कम बोलना बाबा फ़रीद की रहनी का स्वाभाविक अंग था।

कोमल-चित्त

बाबा फ़रीद बहुत कोमल-चित्त थे। आप दूसरों के दु:ख को अपना दु:ख समझते थे। कोई भी दु:खी आपके पास आकर पुकार करता तो आपका मन एकदम पसीज उठता और आँखें भर आती। आप हरएक की बात प्यार से सुनते, उसे धैर्य और दिलासा देते। आप लोगों के दु:खों में हिस्सेदार बनते और उनके दु:खों को दूर करने की पूरी कोशिश करते।

इस प्रसंग में एक घटना की ओर ध्यान जाता है। अजोधन (पाकपटन) का एक अधिकारी अपने मुंशी को बहुत तंग करता था। मुंशी ने दु:खी होकर शेख़ फ़रीद को अपनी व्यथा सुनाई। आपने सारी बात पूरे ध्यान से सुनी और उस अधिकारी को सन्देश भिजवाया, "फ़रीद पर अहसान करो, इस बेचारे मुंशी को तकलीफ़ न दो।" अधिकारी यह सिफ़ारिश सुनकर और क्रोधित हो गया और बेचारे मुंशी को और ज़्यादा तंग करने लगा। दु:खी होकर मुंशी ने फिर बाबा फ़रीद के पास अपनी फ़रियाद रखी। बाबा साहिब बोले, "ऐसा लगता है कि तूने किसी वक़्त किसी लाचार की फ़रियाद नहीं सुनी, इसीलिये तेरी फ़रियाद भी नहीं सुनी गई।" यह सुनकर मुंशी ने तौबा की और आगे से हर दु:खी का दु:ख सुनने और उसकी मदद करने का प्रण किया। ख़ुदा की मौज कि कुछ दिनों के बाद मुंशी के प्रति उस अधिकारी का व्यवहार अपने आप बदल गया और वह उसके साथ बहुत हमदर्दी के साथ पेश आने लगा।

सहनशीलता

बाबा फ़रीद शान्त-चित्त दरवेश थे। जितना मर्ज़ी विरोध क्यों न किया गया, कितनी भी उत्तेजक बातें क्यों न कही गईं, बाबा फ़रीद की सहनशीलता का बाँध कभी नहीं टूटा। वास्तव में आपकी शान्ति ऊपरी या बनावटी न होकर, आत्मा के परमात्मा में समाकर परमात्मा की तरह स्थिर हो जाने की सहज अवस्था में से उपजी क़ुदरती शान्ति थी।

एक बार अफ़ज़ादीन नामक एक विद्वान दिल्ली आया। उसने वाद-विवाद में सभी विद्वानों को हरा दिया। वह शेख़ फ़रीद की कीर्ति सुनकर पाकपटन जा पहुँचा। उसका ख़याल था कि मैं वहाँ जाकर फ़रीद से वाद-विवाद करूँगा और उन्हें भी हरा दूँगा। पर बाबा फ़रीद उसके साथ बहस में न पड़े। आप किसी न किसी बहाने उसे टालते रहे। शेख़ फ़रीद के शिष्य निज़ामुद्दीन ने अपने तौर पर बहस की। उसने अपनी दलीलों से अफ़ज़ादीन को हैरान और लज्जित कर दिया। जब बाबा फ़रीद को पता चला तो आप निज़ामुद्दीन से बहुत नाराज़ हुए और कहने लगे, "फ़क़ीरों का काम झगड़ा करना नहीं, तुमने उसे नीचा दिखाने की कोशिश की, यह फ़क़ीरों की रीति के ख़िलाफ़ है। दरवेशों की शोभा आलिमों की इज़्ज़त करने में है, उन्हें नीचा दिखाने में

नहीं।'' मुर्शिद की ख़ुशी हासिल करने के लिये निज़ामुद्दीन ने अफ़ज़ादीन से माफ़ी माँगी और उससे बड़े प्यार व आदर से पेश आया।

हज़रत निज़ामुद्दीन अपने मुर्शिद के यह वचन अक़्सर दोहराया करते थे कि सारी दुनिया को अपना दुश्मन बनाना चाहते हो तो अपने अन्दर ख़ुदी (अहंकार) पैदा कर लो। बाबा फ़रीद की संगति में आने से पहले निज़ामुद्दीन 'महफ़िल-शिकन' यानी दूसरों के विचारों की धज्जियाँ उड़ा देने के गुण के लिये प्रसिद्ध था। पर बाबा फ़रीद की शरण में आकर उसका ढंग ही बदल गया और उसने अपने मुर्शिद से यह गुण ग्रहण किया कि विरोधियों के विचारों को भी इस प्रकार ठण्डे दिल से और प्रेमपूर्वक सुनना चाहिये कि किसी प्रकार की रंजिश पैदा न हो।

नम्रता

बाबा फ़रीद नम्रता की मूर्ति थे। वे हर बात का श्रेय अल्ला-तआला या अपने मुर्शिद को देते थे। अगर आन्तरिक रूहानी भेद बयान करते तो वे अपने आपको कभी बीच में न लाते और इस ढंग से बात कहते कि जैसे वे किसी दूसरे के अनुभव बयान कर रहे हों। बाबा फ़रीद बात-बात में अपने लिये आजिज़, फ़क़ीर और दरवेश आदि शब्दों का प्रयोग करते। शहंशाहों, अधिकारियों और प्रभावशाली लोगों के साथ ही नहीं, बल्कि ग़रीब से ग़रीब लोगों के साथ भी आप आजिज़ी से पेश आते।

बाबा फ़रीद के जीवन में दिखाई देती यह नम्रता, आपकी वाणी में साफ़ झलकती है। इससे रूहानियत के रास्ते पर चलने वालों को भी अपने अन्दर नम्रता का गुण धारण करने का सुन्दर उपदेश मिलता है।

क्षमा की मूर्ति

बाबा फ़रीद क्षमा की मूर्ति थे। वे न किसी बात पर ग़ुस्सा करते, न किसी बात का बुरा मानते और न ही कभी किसी के प्रति द्वेष या बदले की भावना ही रखते। वे हर किसी की हर प्रकार की ज़्यादती को धैर्य से सहन कर लेते। एक बार एक जादूगर ने काले इल्म द्वारा बाबा फ़रीद को दुःख देने की कोशिश की। अजोधन के गवर्नर को पता चला तो उसने जादूगर को कठोर

दण्ड देना चाहा, पर बाबा फ़रीद ने ख़ुद उसे माफ़ कर दिया और गवर्नर से भी उसे माफ़ कर देने की सिफ़ारिश की। शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने लिखा है कि बाबा फ़रीद बार-बार इस बात पर ज़ोर देते थे कि अपने दुश्मनों को माफ़ कर दो और उनके साथ प्यार से पेश आओ।

ज़िक्र आता है कि एक बार लाहौर के सूबेदार ने बाबा फ़रीद के एक शिष्य शेख़ आरिफ़ सेवसतानी के द्वारा, जो लाहौर में ही रहता था, बाबा फ़रीद को सौ दीनार नज़राने के तौर पर भेजे। शेख़ आरिफ़ का मन बेईमान हो गया और उसने सिर्फ़ पचास दीनार ही बाबा फ़रीद को पेश किये। बाबा फ़रीद ने कहा, ''भाई आरिफ़, तुमने आधे-आधे करके बिलकुल भाइयों जैसी बाँट की है।''[99] आरिफ़ ने शर्मिन्दा होकर बाक़ी के पचास दीनार भी भेंट कर दिये। बाबा फ़रीद ने उसे समझाया कि दरवेश को हमेशा ईमानदारी से काम लेना चाहिये, नहीं तो उसकी पहली रूहानी कमाई नष्ट हो जाती है और वह कभी भी पूर्णता की मंज़िल पर नहीं पहुँच सकता। यह कहकर बाबा फ़रीद ने सौ के सौ दीनार आरिफ़ को दे दिये और बाद में उसे लाहौर में अपना ख़लीफ़ा भी बना दिया। इससे आपकी सहनशीलता और क्षमा ही नहीं, बल्कि हृदय की उदारता का भी पता चलता है। आप सुधार करने में विश्वास रखते थे, नीचा दिखाने में नहीं।*

कलाम

बाबा फ़रीद ने पंजाबी के सिवाय अरबी और फ़ारसी में भी कलाम कहा है। अमीर ख़ुर्द ने आपके द्वारा फ़ारसी में रचित शायरी और रूबाइयों के नमूने दिये हैं। मौलवी अब्दुल हक़ ने 'सूफ़ीज़ वर्क इन अरली डेवैलपमैंट ऑफ़ उर्दू लैंग्वेज' में, प्रो. महमूद शीरानी ने 'पंजाब में उर्दू' में तथा डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने 'हिस्टरी ऑफ़ पंजाबी लिटरेचर' में आपके नाम के साथ जुड़े उर्दू कलाम के नमूने दिए हैं। कुछ शोध-कर्ताओं और विद्वानों ने आपके हिन्दी या देशीय भाषा और स्थानीय उप-भाषा के कलाम की पंक्तियाँ पेश की हैं।

---

* प्यारा सिंह पदम ने 'बोले शेख़ फ़रीद' में बहुत-सी साखिओं और घटनाओं का विवरण दिया है, जो बाबा फ़रीद के जीवन और व्यक्तित्व को समझने में सहायता देती हैं। देखें: पृ. 85-112.

प्रो. निज़ामी ने इस प्रकार की रचनाओं की कई मिसालें देते हुए, इनके बाबा फ़रीद की रचना होने के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया है।[100]

आदि ग्रन्थ में आपके 112 श्लोक और 4 पूरे शब्द दर्ज हैं। दो शब्द राग आसा में हैं और दो राग सूही में। आपके श्लोकों के साथ गुरु साहिबान की ओर से जोड़े गये 18 श्लोक भी शामिल हैं। मोहम्मद आसिफ़ खां ने पाकिस्तान से छपी अपनी पुस्तक 'आखिया बाबा फ़रीद ने' में आदि ग्रन्थ में शामिल बाबा फ़रीद के 112 श्लोक तो दिये हैं, लेकिन साथ ही 83 ऐसे श्लोक भी दिये हैं जिनके साथ बाबा फ़रीद का नाम जुड़ गया है।

बाबा फ़रीद का कलाम गुरु नानक साहिब को बाबा फ़रीद के बारहवें उत्तराधिकारी शेख़ इब्राहिम, जिसे फ़रीद सानी और शेख़ ब्रह्म भी कहा जाता है, से प्राप्त हुआ।[101] बहुत समय तक यह बात विवाद का विषय बनी रही कि यह कलाम बाबा फ़रीद का है या शेख़ इब्राहिम का। कई विद्वानों ने इस कलाम की भाषा आदि को सामने रखते हुए इसे शेख़ इब्राहिम की वाणी सिद्ध करने के यत्न किये हैं। रिज़वी का विचार है कि आदि ग्रन्थ में शेख़ फ़रीद के नाम से दर्ज वाणी में उपदेश बाबा फ़रीद का ही है, चाहे इसमें बाबा फ़रीद के उत्तराधिकारियों की 'फ़रीद' के नाम से रची वाणी भी शामिल हो।[102] विद्वानों द्वारा यह वाणी बाबा फ़रीद की ही होने के हक़ में निम्नलिखित ठोस दलीलें दी गई हैं:

1. आदि ग्रन्थ के सम्पादक गुरु अर्जुन साहिब ने हर महापुरुष की वाणी के साथ उसके नाम का स्पष्ट हवाला दिया है। अगर यह वाणी शेख़ इब्राहिम (शेख़ ब्रह्म या फ़रीद सानी) की होती तो गुरु साहिब इसके बारे में ज़रूर संकेत देते।
2. बाबा फ़रीद ने अपना एक शब्द इस प्रकार शुरू किया है, 'बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥[103] इससे सीधा और स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह वाणी शेख़ फ़रीद की है, शेख़ इब्राहिम की नहीं।
3. गुरु साहिब ने श्री आदि ग्रन्थ में वाणी दर्ज करते समय केवल वाणी के स्तर और इसकी भाषा की ख़ूबियों का ही नहीं, वाणी की रचना करनेवाले महापुरुष की रूहानी पहुँच और सामाजिक महानता को भी ध्यान में रखा है।
4. बाबा फ़रीद के कुछ श्लोकों के साथ दूसरे गुरु साहिबान के श्लोक भी दर्ज हैं। इनमें से चार श्लोक गुरु नानक साहिब के हैं। स्वाभाविक है कि गुरु नानक साहिब के पास बाबा फ़रीद के श्लोक मौजूद थे। इससे पता चलता है कि गुरु नानक साहिब शेख़ इब्राहिम से बाबा फ़रीद की वाणी ले आए थे।
5. 'सियरुल-औलिया' में बाबा फ़रीद की फ़ारसी वाणी के अलावा, उनकी मुलतानी भाषा की रचना का भी ज़िक्र मिलता है, 'इलावा बरीं अशयारे फ़ारसी ऊ रा दर ज़बाने मुलतानी अशयारे शीरीं व रवां अस्त।'[104] यानी फ़ारसी के अतिरिक्त आपने मुलतानी में भी मिठासपूर्ण और प्रवाहपूर्ण शेयर कहे हैं। इससे बाबा फ़रीद के श्लोकों के बारे में स्पष्ट संकेत मिलता है। ये श्लोक समय पाकर लोगों की ज़बान पर चढ़ गये और बहुत लोकप्रिय हो गये। इससे पता चलता है कि गुरु साहिब ने शेख़ इब्राहिम से जो रचना ली वह बाबा फ़रीद की ही हो सकती थी।*

डॉ. नज़ीर अहमद ने अपनी पुस्तक 'कलामे बाबा फ़रीद शक्करगंज' में अनेक हवालों द्वारा यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आदि ग्रन्थ में दर्ज वाणी बाबा फ़रीद की ही है।† प्रस्तुत पुस्तक में इस वाणी को ही चर्चा का आधार बनाया गया है, क्योंकि यह वाणी शुद्ध प्रामाणिक रूप में मिलती है। बाबा फ़रीद के नाम से जोड़ी गई अन्य सारी वाणी बाबा फ़रीद के उपदेश के सम्बन्ध में इसलिये चर्चा में शामिल नहीं की गई है, ताकि केवल प्रामाणिक वाणी के आधार पर ही कुछ कहा जाये। बाबा फ़रीद का कलाम इस पुस्तक के तीसरे भाग में अर्थ सहित दिया गया है।

---

* विस्तार के लिये देखें: (क) डॉ. दीवान सिंह, फ़रीद दर्शन, (ख) मानवता का प्रतीक बाबा फ़रीद, फ़रीद वाणी की प्रमाणिकता, प्रो. राजबीर कौर।[105]

† विस्तार के लिये देखें आपकी पुस्तक पृ. 12-14.

इन्तकाल

अनेक कठिनाइयों के बावजूद, आधी-आधी रात तक ख़लके-ख़ुदा की ख़िदमत में लगे रहना, बड़ा कठिन काम था। उम्र का भी अपना तकाज़ा होता है। 'बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह॥'[106] बाबा फ़रीद काफ़ी वृद्ध हो गये थे। आपका स्वास्थ्य दिन-ब-दिन गिरता जा रहा था। आँतों में दर्द होना शुरू हो गया था। 15 अक्तूबर, 1265 ई. का दिन था। आप रात के समय इबादत करने के लिये उठे और कुछ ही देर बाद बेहोश हो गये। जमातख़ाने पर दुःख और चिन्ता के घने बादल छा गये। जिस ख़ानगाह में हमेशा रूहानियत के चाहवानों की भीड़ लगी रहती थी, उसमें एकदम क़ब्रिस्तान जैसी ग़मी और उदासी छा गई। अचानक बाबा फ़रीद ने आँखें खोलकर पूछा, "क्या मैंने इबादत कर ली है?" 'हाँ' में जवाब मिलने के बावजूद आप फिर ध्यान-मग्न हो गये। कुछ देर बाद आपने आँखें खोलीं, आपके होंठ आख़िरी बार फड़के और आपने 'या हयी या कय्यूम' (ऐ लाफ़ानी ख़ुदा) कहते हुए हमेशा के लिये इस फ़ना संसार की ओर से आँखें मूँद लीं।[107]

बाबा फ़रीद के शरीर छोड़ने से कुछ दिन पहले आपका मुरीद सैयद मोहम्मद किरमानी दिल्ली से अजोधन आया। बाबा फ़रीद हुजरे में बीमार पड़े थे और बाहर उनके बच्चे और शिष्य इस समस्या में उलझे हुए थे कि वे अपनी गद्दी किसे सौंपेंगे। बेटे चाहते थे कि गद्दी उन्हें मिल जाये, पर कामिल दरवेश जो कुछ करते हैं अन्तर में कुल मालिक से मिले हुक्म के अनुसार करते हैं। बाबा फ़रीद के बेटों द्वारा रोके जाने के बावजूद सैयद किरमानी हुजरे में चला गया और उसने मुर्शिद के क़दमों पर सिर रख दिया। बाबा फ़रीद ने एकदम आँखें खोलकर पूछा, "सैयद, तेरा क्या हाल है? तू कब आया?" आप बहुत कमज़ोर हो चुके थे, पर अपने पूरे होशो-हवास में थे। सैयद किरमानी ने आपसे कहा कि निज़ामुद्दीन ने हुज़ूर की ख़िदमत में सलाम-दुआ अर्ज़ की है। बाबा फ़रीद ने उत्सुकता से पूछा, "निज़ाम का क्या हाल है? वह ठीक तो है?" यह कहते हुए आपने अपना ख़िरका (चोला), सजादा (आसन) और असा (डण्डा) उसे देते हुए फ़रमाया कि यह चीज़ें निज़ामुद्दीन को सौंप देना। आप एक बार ऊँची आवाज़ में बोले, "शेख़ निज़ामुद्दीन।" फिर ख़ुद ही कहने लगे, "वह तो दिल्ली में है।"[108] आप उसे ख़ुद ही बता

चुके थे कि न मैं अपने मुर्शिद के आख़िरी वक़्त उनके पास था, न ही तू मेरे आख़िरी वक़्त मेरे पास होगा।

जिस प्रकार बाबा फ़रीद ने फ़क़ीराना ढंग से जीवन बिताया था, उसी तरह वे इस नश्वर संसार से कूच कर गये। घर में उनके क़फ़न-दफ़न के लिये भी कुछ नहीं था। अमीर ख़ुर्द की माता ने उनके कफ़न के लिये एक सफ़ेद चादर भेंट की। घर का दरवाज़ा उखाड़कर आपकी क़ब्र के लिये कच्ची ईंटें निकाली गईं। जिस व्यक्ति ने बाबा फ़रीद के जीवन काल में उनके लिये एक पक्का मकान बनाने की पेशकश की थी, उसने उनके लिये एक पक्का मक़बरा बनवाया। बाद में बादशाह फिरोज़शाह तुग़लक ने इसकी मुरम्मत करवाई।[109] इस मक़बरे को लोग आज तक एक पवित्र स्थान मानते हैं।

कुछ लेखकों ने बाबा फ़रीद के ख़लीफ़ों की गिनती हज़ारों में बताई है। 'जवाहरे फ़रीदी' के लेखक ने आपके 584 ख़लीफ़े माने हैं। प्रो. निज़ामी के अनुसार बाद के लेखकों ने कल्पना के घोड़े दौड़ा कर मनमर्ज़ी से ख़लीफ़ाओं की गिनती बढ़ा-चढ़ा कर बयान की है। उसने सियरुल-औलिया के हवाले से केवल सात ख़लीफ़ों का ज़िक्र किया है।[110] अपने सभी ख़लीफ़ाओं में से बाबा फ़रीद ने निज़ामुद्दीन को ही अपना उत्तराधिकारी बनाने के योग्य समझा। निःसन्देह आपका उत्तराधिकारी आपकी भविष्यवाणी पर पूरा उतरा और उसने अपने मुर्शिद के उपदेश के अनुसार ख़लके-ख़ुदा की रूहानी सेवा के काम को चार चाँद लगाकर अपने मुर्शिद के कार्य को पूर्णता के शिखर पर पहुँचाया।

बाबा फ़रीद को भारत के ही नहीं, संसार के महान सूफ़ी दरवेशों और कामिल फ़क़ीरों में गिना जाता है। उनकी बेमिसाल इबादत, आजिज़ी, मुर्शिद-परस्ती और ख़ुदा की तलाश में भटक रही रूहों पर की गई रहमत ने बाबा फ़रीद को अमर बना दिया है।

बाबा फ़रीद को सूफ़ीमत के इतिहास में ही नहीं, रूहानियत के सम्पूर्ण इतिहास में बहुत सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। अरबी भाषा में 'फ़रीद' शब्द का अर्थ है 'लासानी मोती'। 'फ़रीदुद्दीन' के अर्थ हैं, 'धर्म का सच्चा मोती'। 'बाबा' कहते हैं 'बज़ुर्ग और बड़े' को। 'शैख़' का अर्थ होता है 'मुखिया या बड़ा'। बाबा फ़रीद की प्रशंसा करते हुए विद्वानों और श्रद्धालुओं ने उनको

शेख़े-कबीर (बड़ा शेख़), शैख़ुल-शयूख़ (शेख़ों का शेख़) और शक्करगंज (शक्कर का भण्डार) आदि सम्मानजनक उपाधियाँ दी है। आपके लिये प्रयुक्त किये गए ये प्रशंसा-युक्त पद सौ फ़ीसदी ठीक हैं।* किन्तु सच्च तो यह है कि शब्दों में आपकी प्रशंसा कर सकना असम्भव है। आप अपनी वाणी में कहते हैं, 'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥'[112] इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि बाबा फ़रीद प्रभु से मिलाप कर चुके थे। ऐसे पूर्ण दरवेश के बारे में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

साध की सोभा साध बनि आई॥ नानक साध प्रभ भेदु न भाई॥[113]

किसी साधु (दरवेश) की बड़ाई बयान कर सकना असम्भव है क्योंकि साधु और प्रभु में कोई भेद नहीं होता। गुरु अर्जुन देव जी ने बाबा फ़रीद की वाणी को दूसरे गुरु-पीरों की वाणी के समान सम्मान दिया क्योंकि आप ख़ुदा में समाकर ख़ुदा का रूप हो चुके कामिल दरवेश थे।

बाबा फ़रीद पूर्ण परोपकारी और मानवता के सच्चे हितैषी कामिल मुर्शिद थे। आपने अपना सारा जीवन लोगों को सत्य का मार्ग दिखाने में लगा दिया और अपनी अमूल्य रूहानी सहायता के बदले अपने निजी लाभ के लिये कभी किसी से एक कौड़ी भी स्वीकार नहीं की। आप जाते हुए अपना वह इलाही कलाम पीछे छोड़ गये जो सदियों से मानवता को सच्ची रूहानियत का अद्भुत ज्ञान दे रहा है। यह कलाम आज भी ताज़ा फूलों की तरह सुगन्धि फैला रहा है। यह सौन्दर्य, रस और प्रेरणा का ऐसा अथाह भण्डार है जिससे हम आज भी दिशा प्राप्त करके अपना जीवन सँवार सकते हैं।

---

* पंजाबी के किस्साकारों द्वारा की गई बाबा फ़रीद की उपमा के लिये देखें, 'बाबा फ़रीद: जीवन, समय और रचना' (सं.) सुरिन्द्र सिंह कोहली। इस पुस्तक के अनुसार पंजाबी के प्रसिद्ध किस्साकार वारिसशाह ने अपने किस्से 'हीर-रांझा' में बाबा फ़रीद की इस प्रकार उपमा की है:

मौदूद दा लाडला पीर चिश्ती, शकरगंज मसऊद भरपूर है जी।
ख़ानदान विच चिश्त दे कामलीअत, शहर फ़कर दा पटन मशहूर है जी।
बाईआं कुतबां विच ओह पीर कामल, जिस दी आजज़ी ज़ोहद मनज़ूर है जी।
शक्करगंज है आण मकान कीता, दुख-दर्द पंजाब दा दूर है जी।[111]

भाग दूसरा

उपदेश

1. 'बोलै सेख फरीदु'

'पिआरे अलह लगे'

'बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥'[1] बाबा फ़रीद प्रेमपूर्वक कहते हैं: मेरे प्यारे दोस्तो, मेरी बात मानो और उस अल्लाह के साथ लग जाओ। अल्लाह से प्रेम कर लो। अरबी भाषा में अल्लाह के अर्थ हैं– पूज्नीय परमेश्वर, सच्चा परमेश्वर, गुण-निधान परमेश्वर, कर्तापुरुष परमेश्वर आदि। बाबा फ़रीद का भाव है कि वह अल्लाह जो सबसे ऊँचा और सबसे बड़ा है, जो शक्ति और ज्ञान का अथाह भण्डार है और जो सबका सृजनहार है, सचमुच हमारे प्रेम और भक्ति के योग्य है। वह सच्चा, पवित्र और निश्चल परम तत्त्व है। वह गुणों का अनन्त सागर है। तुम उसके साथ प्रेम करके उसके बन जाओ और उसे अपना बना लो। तुम इस तरह उसके प्रेम और बन्दगी के रंग में रँग जाओ कि तुममें और उसमें कोई भेद न रहे। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं, 'जैसा सेवै तैसो होइ॥'[2] जब तुम उसमें समाकर उसका रूप हो जाओगे तो तुममें भी उसके सभी गुण आ जायेंगे।

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि॥[3]

ख़ुदा ख़लकत में है और ख़लकत ख़ुदा में है। ख़ुदा की पैदा की हुई ख़लकत ख़ुदा के आसरे क़ायम है। ख़ुदा अपने आपसे है और अपना आधार आप है। पर बाक़ी जो कुछ है, वह अपने अस्तित्व के लिये ख़ुदा पर निर्भर है। ख़ुदा के हुक्म से पैदा हुआ जगत, अपनी हस्ती के लिये उस पर निर्भर है। भौतिक जगत भी उसके हुक्म का खेल है और जीवात्मा की हस्ती भी उस पर निर्भर है। आज हम उन चीज़ों से प्यार करते हैं, जिनकी कोई आज़ाद हस्ती नहीं है। हम सुख और शान्ति के लिये कभी एक व्यक्ति या वस्तु का सहारा ढूँढते हैं, कभी दूसरी का। हमारे सहारे या आधार रोज़ बदलते रहते हैं क्योंकि

हमें कोई स्थायी, निश्चल और पक्का आसरा नहीं मिलता। बाबा फ़रीद के अनुसार ऐसा एकमात्र आधार या सहारा वह ख़ुदावंद है। कबीर साहिब की वाणी है, 'तूं मेरो मेरु परबतु सुआमी ओट गही मै तेरी॥ ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लीनी हरि मेरी॥'[4] 'ख़ुदा' 'ख़ुद' और 'आ' की संधि से बना है अर्थात् जो ख़ुद आया हो, ख़ुद बना हो, जो अपने आपसे हो, जो अपनी हस्ती का ख़ुद आधार हो। अरबी भाषा में इस शब्द के अर्थ हैं—ख़ुद वजूद में आया मालिक या साहिब। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं, 'थापिआ न जाइ कीता न होइ॥ आपे आपि निरंजनु सोइ॥'[5] संसार की हर वस्तु अपने अस्तित्व के लिये किसी दूसरे पर निर्भर है जबकि प्रभु को किसी दूसरे आधार या सहारे की ज़रूरत नहीं। जब हम उस सर्वशक्तिमान, पूर्ण और निश्चल प्रभु को अपना आसरा या आधार बना लेंगे, तब हम भी अधूरी, परिवर्तनशील और आधारहीन वस्तुओं के सहारे से मुक्त हो जायेंगे और हमें एक स्थायी और पक्का आधार मिल जायेगा। इस तरह हम भी ख़ुदा की तरह अमर जीवन और पूर्ण आनन्द के भागी बन जायेंगे। बाबा फ़रीद कहते हैं:

परवदगार अपार अगम बेअंत तू॥ जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥[6]

'परवदगार'—वह ख़ुदा सिर्फ़ दुनिया का ख़ालिक या कर्ता ही नहीं है, इसका परवरदिगार यानी राज़िक या प्रतिपालक भी है। वह कायनात को पैदा करके इसके बारे में बेपरवाह नहीं हो गया है। वह इसकी पूरी सँभाल करता है और अपनी पैदा की हुई ख़लकत के लिये रोज़ी या आजीविका का प्रबन्ध करता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ॥'[7] पृथ्वी पर रहनेवाले और पानी में रहनेवाले जीवों की आजीविका का प्रबन्ध भी वह करता है और आकाश तथा पाताल में रहनेवाले जीवों के लिये आहार भी वही पहुँचाता है। 'अपार अगम बेअंत तू'—वह परमेश्वर अगम्य—अविनाशी है। 'जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं'—आप कहते हैं कि जो लोग प्रभु रूपी अगम्य सत्य को पहचान लेते हैं, मैं उन पर क़ुर्बान जाता हूँ।

वह प्रतिपालक प्रभु अगम्य और अमर-अविनाशी है। संसार की हर वस्तु देश और काल की सीमा में है। वह ख़ुदावंद इन सीमाओं से परे है। वह

अथाह और अमर है। हर व्यक्ति और वस्तु की एक सीमा है। वह उससे आगे नहीं जा सकती। अधूरी और नश्वर चीज़ों का सहारा और सुख भी अधूरा और नश्वर ही हो सकता है। केवल उस पूर्ण और अविनाशी परमेश्वर में से ही पूर्ण और अविनाशी सुख की प्राप्ति हो सकती है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा सकर खंडु निवात गुडु माखिउो मांझा दुधु॥
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु॥[8]

शक्कर, चीनी, मिश्री (निवात), शहद (माखिउो) और भैंस का दूध संसार के उत्तम से उत्तम रसों, स्वादों और भोगों के प्रतीक हैं। आप एक अन्य श्लोक में कहते हैं, 'फरीदा रब खजूरी पकीआं माखिअ नई वहंन्हि॥'[9] वह परमात्मा पकी हुई खजूरों और शहद की नदी के समान अनन्त रस का भण्डार है। वास्तव में संसार का कोई भी रस ख़ुदा से मिलाप के अलौकिक आनन्द का मुक़ाबला नहीं कर सकता।

बाबा फ़रीद इशारा करते हैं कि इस समय बेशक हम इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों, ऐशो-इशरत के अनेक प्रकार के साधनों को ही ऊँचा, बड़ा और सुखदायक मानते हैं, पर जब परमात्मा से मिलाप का आनन्द प्राप्त होगा तो ये सभी रस फीके और नीरस लगने लगेंगे। कबीर साहिब फ़रमाते हैं, 'उह रसु पीआ इह रसु नही भावा॥'[10] गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं, 'कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ इकु अंम्रितु नामु तुमारा॥'[11] संसार का कोई सुख, स्वाद, रस या भोग परमात्मा और उसके नाम से मिलने वाले परम आनन्द के बराबर नहीं है। अन्तर थोड़े या अधिक रस या स्वाद का नहीं है। यह अन्तर मात्रा (quantity) का नहीं, गुणवत्ता (quality) का है। मन और इन्द्रियों के भोग स्थूल और जड़ हैं। परमात्मा और उसके नाम का आनन्द सूक्ष्म और आत्मिक है। इन्द्रिय सुख क्षणभंगुर हैं जबकि वह सहज आनन्द निरन्तर और अनन्त है। इसी लिये आप परमात्मा से मिलाप के परम आनन्द के लिये प्रार्थना करते हुए कहते हैं, 'तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥ सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥'[12] ऐ बख़्शनहार ख़ुदा, मैं बाक़ी सब सहारे त्यागकर तेरी शरण में आया हूँ। तू मुझ पर दया-मेहर करके मुझे अपनी इबादत के रंग में रँग दे और अपने साथ मिलाकर अपना रूप बना ले।

'दिलहु मुहबति जिंन्ह'

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥[13]

'दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ'— आप सावधान करते हैं कि अगर परमात्मा से लगना है, तो सच्चे दिल से लगो। अगर तुम तन और मन से उस कर्तापुरुष से प्रेम करोगे तो तुम 'सचयार' बन जाओगे। फिर तुम इस नश्वर और मायावी रचना का दायरा पार करके उस परम सत्य में अभेद हो जाओगे। इससे तुम जन्म-मरण के दु:खदायी बन्धनों से सदा के लिये मुक्त हो जाओगे। बाबा फ़रीद ऊपर लिखे श्लोक में ही आगे कहते हैं, 'जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ' कि अगर तुम बाहर से तो प्रभु के प्रेमी-भक्त होने का दिखावा करते हो, पर तुम्हारा मन संसार और इसके शक्लों-पदार्थों के मोह और प्यार से भरा हुआ है तो तुम परमात्मा रूपी सत्य को धारण करनेवाले 'सचयार' कहलाने की बजाय झूठे (कूड़े) संसार से प्यार करनेवाले 'कूड़यार' कहलाओगे। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

सचि मिलै सचिआरु कूड़ि न पाईऐ॥
सचे सिउ चितु लाइ बहुड़ि न आईए॥[14]

आपका भाव है कि परमात्मा रूपी सच में समा चुके लोग सचयार हैं और माया रूपी कूड़ के प्रेम में डूबे हुए लोग कूड़यार हैं।

क़ुरान शरीफ़ में रोज़े-मीसाक का ज़िक्र आता है कि जब ख़ुदा ने रूहों से पूछा कि क्या मैं तुम्हारा सच्चा माबूद (इष्ट) हूँ? तब रूहों ने जवाब दिया, ''हाँ, बेशक तू ही हमारा एकमात्र सच्चा माबूद है और हम तुझे और सिर्फ़ तुझे, अपने इश्क़, इबादत, भक्ति या बन्दगी के क़ाबिल समझती हैं।''[15] सूफ़ी दरवेशों ने समझाया है कि काफ़िर (मनमुख) और मोमिन (गुरुमुख) होने का सम्बन्ध हिन्दू या मुसलमान होने से नहीं है। असल काफ़िर वह है जो उस ख़ुदा के सिवाय किसी दूसरी चीज़ से प्यार करता है और उस एक ख़ुदा को छोड़कर किसी दूसरे इष्ट की बन्दगी में लगा हुआ है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि॥
मिसल फकीरां गाखड़ी सु पाईऐ पूर करंमि॥[16]

आप ख़बरदार करते हैं— ऐ भले इनसान, अगर तेरा मन इस फ़ानी दुनिया के रंग में रँगा हुआ है तो तू सच्चा दरवेश या भक्त नहीं है। ख़ुदा का आशिक़ बनना बहुत मुश्किल है। बाबा फ़रीद कहते हैं, 'वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥'[17] प्रभु-प्रेम की मंज़िल दूर है और इसका मार्ग भी कठिन है। 'फरीदा दर दरवेसी गाखड़ी चलां दुनीआं भति॥ बंन्हि उठाई पोटली किथै वंञा घति॥'[18] जो शख़्स दुनियादारों की तरह (दुनीआं भति) चलता है, जिसका रुख़ (झुकाव) दुनिया की तरफ़ है जिसने अपने सिर पर दुनिया के मोह की भारी गठरी उठाई हुई है, वह ख़ुदा का सच्चा आशिक़ कैसे कहला सकता है?

'चोपड़ी परीति'

फरीदा दरवेसी गाखड़ी चोपड़ी परीति॥
इकनि किनै चालीऐ दरवेसावी रीति॥[19]

सच्ची प्रीति कठिन है पर 'चोपड़ी परीति' या दिखावे का प्रेम व्यर्थ है। बाबा फ़रीद सावधान कर रहे हैं कि ख़ुदा से तुम्हारा इश्क़ छल-कपट और स्वार्थ का खेल नहीं होना चाहिये। तुम प्रभु के साथ इसलिये प्रेम न करो कि ऐसा करने से तुम्हारे सांसारिक कार्य पूर्ण हो जायेंगे या वह प्रभु तुम्हें सांसारिक पदार्थों से माला-माल कर देगा। न ही तुम इस डर के कारण उसकी प्रीत का दिखावा करो कि उसकी भक्ति न करने से तुम्हारा कुछ नुक़सान हो जायेगा या तुम किसी सज़ा के हक़दार बन जाओगे। तुम लोक-लाज की पालना के लिये भी प्रभु-भक्ति का नाटक न खेलो। आप कहते हैं, 'रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥'[20] तुम सिर्फ़ उसके दीदार और मिलाप की तड़प या चाहत लेकर उसकी भक्ति में लगो। तुम ख़ुदा की ख़ातिर ख़ुदा से प्यार करो। तुम उससे इसलिये प्रेम करो कि तुम उससे प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकते। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ॥
जो तन रते रब सिउ तिन तनि रतु न होइ॥[21]

परमात्मा के प्रेम के रंग में रँगे सच्चे आशिक़ों का शरीर चीरने पर उसमें से ख़ून की एक बूँद भी नहीं निकलेगी। 'ख़ून' से बाबा फ़रीद का क्या भाव

है? इससे अगले श्लोक में गुरु अमरदास जी आपके उपरोक्त श्लोक का असल भाव समझाते हैं:

इहु तनु सभो रतु है रतु बिनु तंनु न होइ॥
जो सह रते आपणे तितु तनि लोभु रतु न होइ॥
भै पइऐ तनु खीणु होइ लोभु रतु विचहु जाइ॥
जिउ बैसंतरि धातु सुधु होइ तिउ हरि का भउ दुरमति मैलु गवाइ॥
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रंगु लाइ॥[22]

यानी सारा शरीर ख़ून का बना हुआ है, पर ख़ुदा के सच्चे आशिक़ों के अन्दर लोभ रूपी ख़ून की एक बूँद भी नहीं होती। जिस तरह आग में तपाये गए सोने में ज़रा भी खोट बाक़ी नहीं रहती, उसी तरह प्रभु के प्रेम और डर की आग लोभ रूपी दुरमति को जलाकर प्रेमी का हृदय पूरी तरह निर्मल बना देती है। आपका भाव है कि जब तक हृदय संसार के लोभ और मोह से गन्दा है, इस पर प्रभु के प्रेम का रंग नहीं चढ़ सकता। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा जा लबु ता नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु॥
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु॥[23]

जिस प्रेम में लोभ, लालच और स्वार्थ की मिलावट है, वह प्रेम झूठा है। जिस तरह टूटी हुई झोंपड़ी तेज़ वर्षा के प्रहार को सहन नहीं कर सकती, उसी तरह लोभ और प्रेम दोनों इकट्ठे नहीं चल सकते। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं:

फरीदा राती वडीआं धुखि धुखि उठनि पास॥
धिगु तिन्हा दा जीविआ जिना विडाणी आस॥[24]

सच्ची प्रेमिका सच्चे दिल से प्रीतम से प्रेम करती है। जिन सुहागिनों के हृदय में अपने प्रीतम का सच्चा प्रेम बसा हुआ है, जुदाई की एक रात भी उन्हें सदियों जैसी लम्बी प्रतीत होती है। आप कहते हैं कि उन दुहागिनों के जीवन को धिक्कार है, जिनके मन में उस प्रियतम के सिवाय कोई दूसरी या 'पराई' (विडाणी) आस समाई हुई है। संसार और इसकी वस्तुओं की लालसा तथा प्रभु का सच्चा प्रेम, दोनों बातें इकट्ठी नहीं चल सकतीं।

'जिन्हा नाउ सुहागणी'

ढूढेदीए सुहाग कू तउ तनि काई कोर॥
जिन्हा नाउ सुहागणी तिन्हा झाक न होर॥[25]

आप सुहाग की खोज में लगी स्त्री को सावधान करते हैं कि तू दिखावा तो पति के प्रेम का कर रही हैं, पर तेरे अन्दर असल में कोई और ही चाहत (झाक) लगी हुई है। सच्ची सुहागिन तो सपने में भी किसी दूसरे का ख़याल अपने मन में नहीं आने देती। जब तक हृदय 'दूसरे' या 'पराये' के मोह की मैल से पूरी तरह रहित नहीं हो जाता, इसमें उस 'एक' की सच्ची प्रीति नहीं समा सकती। परम सन्त तुलसी साहिब कहते हैं:

दिल का हुजरा साफ़ कर जानां के आने के लिये।
ध्यान ग़ैरों का उठा उसके बिठाने के लिये॥
... ...
एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज़्यादा हविस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये॥[26]

यानी अगर उस सच्चे और निर्मल प्रीतम को अपने मन में बसाना चाहते हो तो पहले मन में से संसार की शक्लों और पदार्थों के मोह के मैल को दूर करो। जब तक हृदय दुनिया की अनगिनत इच्छाओं और तृष्णाओं के मैल से गन्दा है, इसके अन्दर कभी भी उस परम चेतन, ज्योतिर्मय प्रभु का निवास नहीं हो सकता। अनेकता के प्यार का त्याग ही उस 'एक' के प्यार की पहली सीढ़ी है। गुरु रामदास जी ने इस विचार के दो पहलू प्रस्तुत किये हैं:

बसुधा सपत दीप है सागर कढि कंचनु काढि धरीजै॥
मेरे ठाकुर के जन इनहु न बाछहि हरि मागहि हरि रसु दीजै॥[27]

प्रभु के भक्तों के आगे सात महाद्वीपों की दौलत क्यों न रख दी जाये, वे उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते, उन्हें केवल हरि के दर्शनों की इच्छा होती है।

सुरग मुकति बैकुंठ सभि बांछहि निति आसा आस करीजै॥
हरि दरसन के जन मुकति न मंगहि मिलि दरसन त्रिपति मनु धीजै॥[28]

लोग स्वर्गों-बैकुण्ठों या मुक्ति की इच्छा से ख़ुदा की इबादत करते हैं, पर ख़ुदा के सच्चे भक्त इनकी इच्छा नहीं रखते। उनको सिर्फ़ ख़ुदा के दीदार से

ही सुकून मिलता है। सूफ़ी दरवेश राबया बसरी के वचन हैं, "ऐ ख़ुदा! इस संसार की जो दौलत तू मुझे देना चाहता है, मेरे दुश्मनों को दे दे; परलोक की जो नियामतें तू मुझे बख़्शना चाहता है, मेरे दोस्तों को बख़्श दे; मेरे लिए तो तू ही काफ़ी है।" वह कहती है, "ऐ ख़ुदा, अगर मैंने तुझे दोज़ख़ के डर के कारण प्यार किया है, तो मुझे दोज़ख़ की आग में जलाना, अगर मैंने जन्नत के लालच में तेरी इबादत की है, तो तू मुझे जन्नत से महरूम रखना, पर अगर मैंने तुझे तेरी ख़ातिर प्यार किया है, तो मुझे अपने दीदार से ख़ाली न रखना।"[29] हज़रत ईसा कहते हैं, "मेरा पहला और बड़ा हुक्म यह है कि तुम उस परमपिता को दिलो-जान और मन-आत्मा से प्यार करो।"* ख़ुदा का इश्क़ और ख़ुदा की इबादत बाबा फ़रीद के कलाम की धुरी है। आप अनेक प्रकार से एक ही भाव प्रकट कर रहे हैं कि जीवात्मा रूपी प्रेमिका को चाहिये कि वह सदा उस परमात्मा रूपी प्रीतम के प्रेम में मग्न रहे। आप कहते हैं:

फरीदा जे जाणा लड़ु छिजणा पीडी पाईं गंढि॥
तै जेवडु मै नाहि को सभु जगु डिठा हंढि॥[31]

बाबा फ़रीद ने ऊपर कहा है कि हमें अल्लाह से जुड़ जाना चाहिये। यहाँ आप यह कह रहे हैं कि उसके साथ पक्की तरह 'गंढ-चितावा' कर लेना चाहिये। गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं, 'मू लालन सिउ प्रीति बनी॥ तोरी ना तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिंच तनी॥'[32] ऐ प्रीतम, मेरी तुझसे प्रीति हो गई है। मैं चाहती हूँ कि मेरी प्रीति सदा क़ायम रहे और इसमें कोई कमी न आये।

आत्मा को गंढ-चितावा (गठ-बन्धन) किस प्रीतम के साथ करना है? 'तै जेवडु मै नाहि को सभु जगु डिठा हंढि'— ऐसे वाहिद-हू-ला-शरीक़ अल्लाह के साथ जिसका कोई सानी नहीं। वह बड़े से बड़ा, ऊँचे से ऊँचा, सच्चे से सच्चा और निर्मल से निर्मल है। उस जैसा न कोई हुआ है, न हो ही सकता है। ऐसे अविनाशी पति-परमेश्वर को पाकर आत्मा भी अविनाशी पद और उससे जुड़ी समस्त ख़ुशियों की अधिकारी बन जाती है।

अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ॥
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ॥[33]

---

* Thou shalt love the lord thy God with all thy heart and with all thy soul and with all thy mind. This is the first and great commandment.[30]

सच्ची सुहागिन अपने प्यारे प्रीतम की पल भर की जुदाई भी सहन नहीं कर सकती। बाबा फ़रीद का भाव है कि तुम एक बार परमात्मा की भक्ति, उसका प्रेम, उसके मिलाप का रस चखकर तो देखो, तुम्हारी सब शंकाएँ, सब भ्रम अपने आप दूर हो जायेंगे। अभी तुम्हारा उस रस की ओर ध्यान नहीं है, पर उसे पाकर तुम एक पल के लिये भी उसे छोड़ने को तैयार नहीं होगे। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि विसारणा॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु विसारे॥
कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले॥[34]

गुरु साहिब सन्देश देते हैं कि परमात्मा रूपी प्रीतम से स्नेह करो क्योंकि वह सर्वसमर्थ है। उस स्वामी की शरण लेने से तुम्हारे सभी कार्य पूर्ण हो जायेंगे और जिस परम आनन्द की खोज में तुम दर-दर भटक रहे हो, तुम सहज ही उसके अधिकारी बन जाओगे। यह पूछने की बजाय कि परमात्मा से क्यों प्रेम करें, यह सोचो कि ऐसे सर्वशक्तिमान, परिपूर्ण और आनन्द-रूप परमात्मा से शीघ्र से शीघ्र प्रेम क्यों न किया जाये। इसलिये आप जीवात्मा को 'सदा रहु हरि नाले' का सन्देश देते हैं।

'फरीदा कंतु रंगावला'

फरीदा कंतु रंगावला वडा वेमुहताजु॥
अलह सेती रतिआ एहु सचावां साजु॥[35]

परमात्मा रूपी बड़े-से बड़ा और ऊँचे से ऊँचा कन्त या साजन अति मनोहर, सुन्दर और प्यारा है। सदा नया रहनेवाला वह निर्भय, निश्चिन्त प्रीतम सुन्दरता, प्रेम और आनन्द का स्रोत है। उसका प्रेम और उसकी दया भी अनन्त और अथाह है। 'अलह सेती रतिआ एहु सचावां साजु'- जीवात्मा रूपी पत्नी को चाहिये कि वह उस प्यारे प्रीतम को प्रेम के शृंगार द्वारा ख़ुश करने की कोशिश करे।

कबीर साहिब कहते हैं, 'कबीर को ठाकुरु अनद बिनोदी॥'[36] गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥'[37] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं,

'हउ ना छोडउ कंत पासरा॥ सदा रंगीला लालु पिआरा एहु महिंजा आसरा॥'[38]
वह प्रभु सच्चा, सुन्दर और आनन्द-रूप है। ऋषियों-मुनियों ने भी उसे सत्, चित्, आनन्द (सच्चिदानन्द) कहा है, यानी वह अविनाशी प्रभु सत्य-रूप, ज्ञान-रूप और आनन्द-रूप है। सन्त-महात्मा समझाना चाहते हैं कि वह परमात्मा सुन्दरता और आनन्द का अनन्त भण्डार है। आत्मा के लिये ऐसे गुण-निधान स्वामी की पत्नी बनने से बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है!

बाबा फ़रीद ने बहुत-से श्लोकों में उस परमात्मा को प्यारा, कन्त, साईं, शौह, पिर, सुहाग, मालिक, साहिब, सज्जन, धनी आदि कहकर उसका गुणगान किया है। ये सब शब्द आत्मा और परमात्मा के प्रेम के गहरे और अटूट रिश्ते को प्रकट करते हैं। स्त्री की हस्ती और ख़ुशी पूरी तरह पति पर निर्भर होती है। स्त्री को सुन्दर से सुन्दर वस्त्र, सोलह श्रृंगार, ऊँचे महल और अनगिनत दास-दासियाँ क्यों न मिल जायें, उसे जब भी सच्चा सुख मिलता है, पति के प्यार और मिलाप से मिलता है। पति से बिछुड़ी स्त्री के लिये सब सुख व्यर्थ हैं, जबकि पति के मिलाप के आनन्द में मग्न पत्नी बाक़ी सब सुखों की ओर से बेपरवाह होती है। उसी तरह जीवात्मा रूपी पत्नी को जब भी सच्चा सुख मिलता है, मायावी शक्लों-पदार्थों से नहीं, प्रभु रूपी पति के मिलाप से मिलता है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ॥
फरीदा किंती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ॥[39]

किसी सुन्दरी को सबसे अधिक चिन्ता अपनी सुन्दरता और जवानी की होती है। पर परमात्मा की प्यारी जीवात्मा को केवल इस बात की चिन्ता होती है कि मेरी प्रीति निर्बल न हो जाये। उसके लिये प्रीतम की प्रीति ही जीवन का मूल आधार होती है। प्रेम के बिना उसका यौवन अथवा जीवन कोई अर्थ नहीं रखता।

साहुरै ढोई ना लहै पेईऐ नाही थाउ॥
पिरु वातड़ी न पुछई धन सोहागणि नाउ॥[40]

बाबा फ़रीद कहते हैं कि अपनी ओर से तो सभी लोग परमात्मा के आशिक़ या भक्त होने का दावा करते हैं, पर जब तक उनका प्रीतम से मिलाप नहीं हो जाता, उनको न मायके (इस लोक) में सम्मान मिलता है, न ससुराल

(परलोक) में। लोक और परलोक दोनों में सुख, शान्ति और शोभा का एकमात्र साधन उस प्यारे का दयामय प्रेम है।

फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरहि विछावण लेफु॥
एहु हमारा जीवणा तू साहिब सचे वेखु॥[41]

विरह में व्याकुल प्रेमिका के लिये सुन्दर पलंग और सुखमय बिस्तर भी चिन्ताओं और दु:खदायक आहों का कारण सिद्ध होते हैं। वह पल-पल प्रीतम का ध्यान अपने चिता समान दु:खी जीवन की ओर दिलाती है और उसकी दया के लिये विनती करती है।

फरीदा जे मै होदा वारिआ मिता आइड़िआं॥
हेड़ा जलै मजीठ जिउ उपरि अंगारा॥[42]

आप कहते हैं कि अगर मैं अपने प्रीतम से कुछ छिपाकर रखूँ या मैं अपना सबकुछ उस पर क़ुर्बान न करूँ, तो मैं इस तरह जल जाऊँ जैसे मजीठ आग में जल जाता है। आपका भाव है कि सच्चा आशिक़ अपना सबकुछ अपने प्रीतम पर क़ुर्बान कर देता है। उसे प्रीतम के लिये की गई क़ुर्बानी में सच्चा सुख मिलता है और वह उससे अचेत रहने को आग में जलने के समान समझता है।

'विसरिआ जिन्ह नामु'

बाबा फ़रीद कहते हैं:

रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥[43]

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि अगर तुम प्रीतम के प्रेम के रंग में रँगे गए हो तो तुम सच्चे प्रेमी हो। अगर तुम प्रभु या उसके नाम को भूलकर मायावी रचना के मोह में फँसे हुए हो तो तुम धरती पर भारी बोझ हो और यह समझो कि तुम्हारा अनमोल मनुष्य जीवन कौड़ियों के भाव बिक रहा है। अपना जन्म सफल करने के लिये प्रभु और उसके नाम को, अपने जीवन का आधार बना लो।

इस वक़्त हमारा प्यार माता-पिता, पति-पत्नी, बेटे-बेटियों, मित्रों-सम्बन्धियों तक सीमित न रहकर, क़ौमों, मज़हबों और मुल्कों तक फैला हुआ है। हम

दिन-रात, साँस-साँस दुनियावी दौड़ का हिस्सा बने रहते हैं। जब बाबा फ़रीद या दूसरे सन्त-महात्मा हमें अपना ध्यान इनमें से निकालकर परमात्मा की तरफ़ मोड़ने का सन्देश देते हैं तो हम हैरान होते हैं और हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि आख़िर ऐसा क्यों किया जाये? हम सोचते हैं कि चाहे परमात्मा के बारे में बहुत कुछ सुना है, पर ख़ुद तो परमात्मा को नहीं देखा। जो कुछ हमें साक्षात् दिखाई दे रहा है और जिसमें से हमें प्यार और सुख मिल रहा है, उसे त्यागकर उस चीज़ की ओर क्यों चल पड़ें जिसके बारे में विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। बाबा फ़रीद ने इस शंका का बड़ा सुन्दर समाधान किया है।

'जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥' यहाँ आप परमात्मा को 'सच' कहकर बयान कर रहे हैं। आपने अपनी वाणी के एक अन्य प्रसंग में भी कहा है। 'सभना मै सचा धणी॥'[44] वह ख़ुदा सच है और सबके अन्दर मौजूद है। अरबी भाषा में अल्लाह का शाब्दिक अर्थ ही 'सच्चा वजूद', 'सच्ची हस्ती' है— वह परमात्मा जिसकी हस्ती, जिसका वजूद एक हक़ीक़त है।

बाबा फ़रीद और दूसरे पीर-फ़क़ीर, यह गहन भाव प्रकट करना चाहते हैं कि न केवल अल्लाह का वजूद सत्य है, बल्कि यह वजूद ही सदा क़ायम रहनेवाला एकमात्र सत्य है। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं, 'आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥'[45] वह परमात्मा भूत, भविष्य और वर्तमान— तीनों काल में सदा स्थिर रहनेवाला एकमात्र सच है, आप फ़रमाते हैं, 'है भी होसी जाइ ना जासी रचना जिनि रचाई॥'[46] वह सदा स्थिर है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं, 'निहचलु एकु सदा सचु सोई॥'[47] वह परमात्मा कभी न बदलने वाला और सदा एक-रंग, एक-रस और एक-रूप रहनेवाला परम तत्त्व है, इसलिये हमें उससे प्यार करना चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा मात्र एक कल्पना या सिद्धान्त है। कुछ अन्य कहते हैं कि संसार की कमियों, कमज़ोरियों से रहित काल्पनिक अवस्था का नाम परमात्मा है। कुछ दूसरे यह मान कर चलते हैं कि जिन नियमों के आधार पर सृष्टि चल रही है, वे नियम ही परमात्मा हैं। बहुत-से लोग परमात्मा की हस्ती को ही नहीं मानते। वे कहते हैं कि दृश्यमान स्थूल जगत अपने आपमें पूर्ण है; इससे ऊपर और परे किसी अदृश्य जगत और परमात्मा की कल्पना करना व्यर्थ है। भौतिकवादी दर्शन में विश्वास रखने

वाले लोग चेतना को भी पदार्थ की ही विकसित अवस्था मानते हैं। वे न परमात्मा को मानते हैं, न यह मानते हैं कि दृश्यमान जगत के अलावा कोई और अदृश्य, अविनाशी सूक्ष्म रूहानी जगत भी है।

इसके विपरीत, बाबा फ़रीद और अन्य सन्त-महात्मा समझाते हैं कि परमात्मा हमेशा क़ायम रहनेवाला एकमात्र सच है। बाक़ी जो कुछ है, अस्थिर और नश्वर है। आप बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि बदलते रहने वाली और फ़ानी शक्लों और चीज़ों का सुख भी परिवर्तनशील और फ़ानी ही हो सकता है। समय पाकर ये सब या तो हमें छोड़ जाते हैं या हम इन्हें छोड़ जाते हैं। इसलिये हमें इनसे स्थायी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इस विषय पर अगले अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है।

संसार के इतिहास पर नज़र डालने से पता चलता है कि समय-समय पर हज़ारों सिद्धान्त, हज़ारों प्रकार के राज्य-प्रबन्ध, हज़ारों राजनैतिक और सामाजिक संगठन अस्तित्व में आए। उन सबका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य को सच्चा, स्थायी और पूर्ण सुख देना था, पर उनमें से कोई भी इस उद्देश्य में सफल न हुआ। कारण? संसार अधूरा और परिवर्तनशील है और सिद्धान्त भी अधूरे और परिवर्तनशील हैं। सिद्धान्त और राज्य-प्रबन्ध बनते बाद में हैं और बदल पहले जाते हैं। न संसार स्थिर है और न ही इसकी कोई वस्तु स्थिर है। इसलिये संसार को सदा के लिये पूर्ण सुख प्रदान करनेवाला कोई प्रबन्ध न कभी पहले क़ायम किया जा सका है और न ही आगे किया जा सकेगा। जिस जगत को इसके कर्ता ने ख़ुद नश्वर और अधूरा बनाया है, उसमें से पूर्ण और स्थायी सुख मिलने की आशा रखना व्यर्थ है। संसार सदा संघर्ष का अखाड़ा रहा है और आगे भी रहेगा। कामिल दरवेश संसार के सुधार के लिये नहीं, जीवों के उद्धार के लिये संसार में आते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाउ॥
नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ॥[48]

बाबा फ़रीद की तरह गुरु अर्जुन देव तथा दूसरे सब सन्त-महात्मा उपदेश देते हैं कि संसार को पूर्ण नहीं बनाया जा सकता, परन्तु उस पूर्ण प्रभु से लिव जोड़कर जीव अवश्य पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

'जाइ मिला तिना सजणा'

प्रभु पूर्ण है। जीवात्मा की पूर्णता भी प्रभु से मिलाप पर निर्भर है और उसको पूर्ण शान्ति भी परमात्मा रूपी प्रीतम के मिलाप द्वारा ही मिल सकती है। इसलिये बाबा फ़रीद कहते हैं:

1. फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु॥
   चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु॥[49]

2. भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु॥
   जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु॥[50]

यहाँ गली से अभिप्राय संसार और कीचड़ तथा बारिश से तात्पर्य रास्ते की रुकावटों से है। कंबली का भीगना रास्ते में आनेवाले कष्टों का संकेत देता है। प्रेमी अभ्यासी को मार्ग में अनेक रुकावटों का सामना करना पड़ता है। पर वह न तो मार्ग की रुकावटों की शिकायत करता है और न ही लम्बे सफ़र की। सच्चा भक्त प्रभु की रज़ा में राज़ी रहते हुए दु:ख और सुख दोनों में समान भाव से भक्ति में जुटा रहता है।

'अलह वरसउ मेहु' से संकेत मिलता है कि मिलाप की चाह पैदा करने वाला भी वही है और रास्ते में रुकावटें खड़ी करनेवाला भी वही है। 'जाइ मिला तिना सजणा'—प्रेमी, प्रीतम से बारिश रोकने के लिये नहीं कहता, बल्कि बारिश को भी उसकी रहमत मानकर अपना सफ़र जारी रखता है। आप दूसरे प्रसंग में कहते हैं, 'फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु॥ अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु॥'[51] यानी यदि ख़ुदा की दरगाह में दाख़िल होना चाहते हो तो ख़ुदा की रज़ा को उसकी रहमत समझने की अवस्था पैदा करो। यह अवस्था प्रेम या इश्क़ के द्वारा पैदा होगी। इसी लिये बाबा फ़रीद जीव को बार-बार प्रभु-प्रेम और प्रभु-मिलाप का उपदेश देते हैं। सिर्फ़ ख़ुदा के सच्चे आशिक़ ही उसकी रज़ा को उसकी रहमत का रूप मान सकते हैं। बाबा फ़रीद उपदेश दे रहे हैं कि जब तुम ख़ुदा की रहमत और ख़ुदा की रज़ा को समान रूप में देखना शुरू कर दोगे तो दु:ख और सुख की द्वैत से ऊपर उठकर प्रभु के साथ मिलाप की पूर्ण शान्ति और विश्राम वाली सहज अवस्था में पहुँच जाओगे। यह अवस्था ख़ुदा के प्रेम और मिलाप से पैदा होगी, इसलिये तुम ख़ुदा से प्रेम करके हमेशा के लिये उसमें समा जाओ।

2. 'इहु तनु होसी खाक'

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥[1]

'पिआरे अलह लगे' द्वारा बाबा फ़रीद प्रभु-प्रेम का उपदेश दे चुके हैं। आप इसके साथ एक चेतावनी भी देते हैं, 'इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥' आप कहते हैं कि यह शरीर नाशवान है और एक दिन इस शरीर को मिट्टी का ढेर बनकर क़ब्र में समा जाना है। आप संकेत कर रहे हैं कि शरीर और संसार का मोह परमात्मा के प्रेम की राह में सबसे बड़ी रुकावट है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं, 'कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय। भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय॥'[2] शरीर भी एक है और मन भी एक है। इन्हें चाहे इन्द्रियों के भोगों में लिप्त कर लो, चाहे परमात्मा के प्रेम के रंग में रँग लो। सन्त नामदेव के अनुसार, 'नामे प्रीति नाराइण लागी॥ सहज सुभाइ भइओ बैरागी॥'[3] गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं, 'मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर॥'[4] वैसे तो परमात्मा का प्रबल प्रेम ही मन को शरीर और संसार के मोह की दलदल में से बाहर निकाल सकता है, पर शुरू में इसे शरीर और संसार की ओर से मोड़ने के लिये यत्न करना पड़ता है।

यदि पर्वत पर चढ़ रहे व्यक्ति के पैरों में रस्सी बँधी हो और उसे ज़ोर से धरती की ओर खींचा जा रहा हो तो अपना पूरा ज़ोर लगाने के बावजूद वह ऊपर चढ़ने में सफल नहीं होगा। जब तक रूह इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों के मोह के कारण शरीर रूपी धरती से बँधी रहती है, यह आँखों के पीछे पहुँचकर रूहानी सफ़र तय नहीं कर सकती। इसलिये बाबा फ़रीद ख़ुदा के इश्क़ के साथ मन को शरीर और संसार के मोह की ओर से मोड़ने का भी उपदेश देते हैं।

शरीर की ओर से मुड़ने का वास्तविक अर्थ मन को इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों, मित्रों-सम्बन्धियों के मोह और संसार के उन अनगिनत व्यर्थ

के धन्धों से मोड़ने का है, जो हमारी रूहानी तरक़्क़ी के रास्ते में रुकावट बनते हैं। जब तक मन को समझा-बुझा कर संसार और इसके भोगों की ओर से नहीं मोड़ते, मन को प्रभु से नहीं जोड़ सकते। हज़रत बू अली क़लन्दर का कहना है कि अगर कोई यह चाहता है कि मैं दीन भी कमा लूँ और इस निकम्मी दुनिया की इच्छाएँ भी पूरी कर लूँ तो यह केवल जुनून या पाग़लपन है।* यही भाव कबीर साहिब ने प्रकट किया है:

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान॥[6]

हमारे मन में से इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों का मोह निकालने के लिये बाबा फ़रीद ने कई प्रकार से शरीर की असलियत समझाने की कोशिश की है।

'महल निसखण रहि गए'

फरीदा महल निसखण रहि गए वासा आइआ तलि॥
गोरां से निमाणीआ बहसनि रूहां मलि॥[7]

आप कहते हैं कि जिन ऊँचे, बड़े और सुन्दर महलों को बनाने में जीव, जीवन का बड़ा हिस्सा बर्बाद कर देता है, ये महल बाद में ख़ाली रह जाते हैं और अन्त में शरीर को क़ब्र में निवास करना पड़ता है।

फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु॥
कजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु॥[8]

हमें हुस्न और जवानी का अभिमान है। हम यौवन, सुन्दरता और शारीरिक शक्ति को अपनी शान का सबसे बड़ा साधन समझते हैं। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि संसार का सबसे सुन्दर चेहरा, नशीले-मनमोहक नयन और नाज़ों से पला शरीर, कुछ भी स्थायी नहीं है।

इस श्लोक के साथ एक कथा जुड़ी हुई है, जो श्लोक के आन्तरिक भाव को बहुत सुन्दर ढंग से स्पष्ट करती है। कहा जाता है कि एक बार बाबा फ़रीद

---

* हम ख़ुदा ख़ुआही ओ हम दुनीआए दूं।
ईं ख़याल अस्तो-मुहाल-अस्तो जुनूं।[5]

ने देखा कि एक सुन्दरी अपनी नौकरानी को धड़ाधड़ चाबुक मार रही है। कारण पूछे जाने पर पता चला कि नौकरानी ने सुरमा इतना मोटा पीसा था कि वह मालकिन की सुन्दर और नाजुक आँखों में चुभ रहा था। समय बीतता गया। एक दिन क़ब्रिस्तान में से गुज़रते वक़्त बाबा फ़रीद ने एक खोपड़ी देखी, जिसमें किसी पक्षी ने बच्चे दिये हुए थे। आपने अन्तर-ध्यान होकर देखा तो पता चला कि यह खोपड़ी उसी अभिमानी सुन्दरी की थी जो अपनी दासी को चाबुक मार रही थी क्योंकि उसने सुरमा मोटा पीसा था।

हर इनसान अपने आपको सबसे अधिक सुन्दर, चतुर और श्रेष्ठ व्यक्ति समझता है, पर आख़िर सबका यही हाल होना है। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं:

फरीदा गरबु जिन्हा वडिआईआ धनि जोबनि आगाह॥
खाली चले धणी सिउ टिबे जिउ मीहाहु॥[9]

धन, यौवन, सुन्दरता और सांसारिक मान-बड़ाई के नशे में बहके हुए लोग जीवन की बाज़ी हार जायेंगे। 'खाली चले धणी सिउ'— वे उस सच्चे साईं के मिलाप से ख़ाली रह जायेंगे। उनका मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जायेगा। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा इट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि॥
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि॥[10]

महलों में फूलों की सेज पर सोने वाले शरीर का क़ब्र में निवास हो जाता है। मख़मल के तकिये की जगह ईंट सिर का तकिया बन जाती है। शरीर को कीड़े नोच-नोचकर खाते हैं और चुस्ती-फुर्ती के पुतले में करवट लेने तक की हिम्मत नहीं रहती।

'फरीदा किथै तैडे मापिआ'

शरीर की असलियत बयान करने के साथ ही बाबा फ़रीद ने जीवन की असलियत को भी चित्रित किया है। आप कहते हैं:

फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि॥
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि॥[11]

महाभारत में ज़िक्र आता है कि यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि वार्ता क्या है यानी संसार की सबसे हैरानी भरी बात क्या है? युधिष्ठिर ने जवाब दिया कि सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि सब लोग हर रोज़ दूसरों को मरते देखते हैं, पर फिर भी सबके मन में यह भ्रम रहता है कि मौत दूसरों के लिये है, शायद मुझे कभी मरना ही नहीं है।[12] यही विचार बाबा फ़रीद ने प्रकट किया है। 'फरीदा किथै तैडे मापिआ'— आप कहते हैं कि जीवन को स्थायी समझने की भूल करनेवालों को सोचना चाहिये कि आज हमारे पूर्वज कहाँ हैं? उनमें से कोई भी संसार से नहीं जाना चाहता था, पर उन्हें जाना पड़ा। 'तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि'— आप कहते हैं कि सीधी-सी बात है कि हमसे पहले आये लोग भी यहाँ नहीं रह सके तो हम भी नहीं रह सकते।

कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाइसी॥
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी॥[13]

प्यारे दोस्तो, अच्छी तरह समझ लो कि जब आत्मा रूपी स्त्री को कुल मालिक रूपी पति का बुलावा आता है (सहु अलाइसी) तो दुविधा में फँसी आत्मा रूपी स्त्री (हंसु डुंमणा) को मज़बूर होकर शरीर का साथ छोड़ना पड़ता है। आत्मा शरीर से अलग नहीं होना चाहती, पर इसको ज़बरदस्ती शरीर से अलग कर दिया जाता है और शरीर बाद में मिट्टी की ढेरी बन कर रह जाता है। आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध झूठा और थोड़े समय का है। इसलिये तुम शरीर के मोह से बचो। मौत के बाद शरीर को मिट्टी में दबा दिया जायेगा या आग में जला दिया जायेगा। जब अन्त समय शरीर ही आत्मा के साथ नहीं जायेगा तो संसार के तरह-तरह के सामान और रिश्तेदार-सम्बन्धी कैसे जा सकते हैं?

'बुढा होआ सेख फरीदु'

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह॥
जे सउ वर्हिआ जीवणा भी तनु होसी खेह॥[14]

आप दोहरी चेतावनी दे रहे हैं— एक यह है कि जवानी स्थिर नहीं। दूसरी यह कि आयु कितनी भी लम्बी क्यों न हो, मौत को सदा के लिये कभी भी

नहीं टाला जा सकता। जवानी, मस्तानी और मुँहज़ोर होती है, पर होती है चार दिन की मेहमान। बुढ़ापे में तो शरीर के लिये अपना भार उठाना भी मुश्किल हो जाता है, उस वक़्त उससे ख़ुदा की बन्दगी की उम्मीद कैसे की जा सकती है? बाबा फ़रीद चेतावनी देते हैं:

फरीदा अखी देखि पतीणीआं सुणि सुणि रीणे कंन॥
साख पकंदी आईआ होर करेंदी वंन॥[15]

बुढ़ापे में पहुँचकर आँखों की ज्योति मन्द पड़ जाती है, कान सुनना बन्द कर देते हैं। सूखी लकड़ी का रूप धार चुका और झुर्रियों से भरा शरीर बिलकुल नकारा हो जाता है।

चबण चलण रतंन से सुणीअर बहि गए॥
हेड़े मुती धाह से जानी चलि गए॥[16]

बुढ़ापे में दाँत (चबण), टांगें (चलण), आँखें (रतंन) और कान (सुणीअर) काम करना बन्द कर देते हैं। यही हालत शरीर के बाक़ी अंगों की भी हो जाती है। निर्बल शरीर चिल्लाता है (हेड़े मुती धाह) कि मेरे साथी भाव मेरे अंग, मेरा साथ छोड़ गये हैं, (से जानी चलि गए)।

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भविओम्हि॥
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि॥[17]

जवानी में नौजवान छोटी-छोटी टांगों (निकी जंघीऐ) से बड़े से बड़ा सफ़र तय कर लेता है। वह नाचता-गाता, हँसता-खेलता लम्बे-चौड़े रेगिस्तान व जंगल तथा आकाश से बातें करते पर्वत (डूंगर) पार कर जाता है, पर बुढ़ापे में पहुँचकर उसे खाट के पास पड़ा बर्तन भी सौ कोस दूर पड़ा प्रतीत होता है।

सन्त-महात्मा चेतावनी देते हैं कि जब शरीर के सभी अंग जवाब दे जायेंगे तो उस समय कुछ नहीं बन सकेगा। जो कुछ बनाना चाहते हो, आज और अभी बनाना चाहिये। सन्त भीखन जी कहते हैं:

नैनहु नीरु बहै तनु खीना भए केस दुध वानी॥
रूधा कंठु सबदु नही उचरै अब किआ करहि परानी॥[18]

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं:

कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु॥
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु॥[19]

शरीर नदी के किनारे उगे वृक्ष के समान है, जो कभी भी गिर सकता है। यह उस कच्चे बर्तन के समान है जिसमें साँसों का 'नीरु' अधिक देर बचाकर नहीं रखा जा सकता।

'सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ'

बाबा फ़रीद अपने उपरोक्त विचारों को एक विशाल दृष्टि से पेश करते हुए कहते हैं:

सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ॥
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ॥[20]

'जगि न कोई थिरु रहिआ'— इस संसार में कोई भी सदा नहीं रह सकता। 'जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ'— जिस स्थान पर आज हम बैठे हैं, वहाँ अनेक लोग पहले बैठ चुके हैं। जो ज़मीन-जायदाद और पदवियाँ आज हमारे नाम हैं, हमसे पहले दूसरों के नाम थीं। न पहले हो चुके लोग सदा के लिये रह सके, न हम सदा रह सकते है। ये चीज़ें न पहले आये लोगों के साथ गईं, न हमारे साथ जायेंगी। इनका लोभ और मोह झूठा और व्यर्थ है।

फरीदा खिंथड़ि मेखा अगलीआ जिंदु न काई मेख॥
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥[21]

'खिंथड़ि मेखा अगलीआ'— अगर गूदड़ी बार-बार फटती है तो उसे बार-बार टांका (मेखा) जा सकता है, पर जब ज़िन्दगी की गूदड़ी फटती है तो बस फट जाती है। मौत के सामने किसी का कोई वश नहीं चलता। 'वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख*' केवल ग़रीब, अनपढ़ और बुरे लोग ही मौत का शिकार नहीं बनते, बड़े-बड़े विद्वान, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, गुणी, ज्ञानी, दानी और चरित्रवान भी अपनी-अपनी बारी आने पर यहाँ से चले जाते

* मसाइक सेख- मशाइख़, शेख़ का बहुवचन है।

हैं। दौलत, इल्म, सुन्दरता, शक्ति, नेकी आदि कुछ भी मौत के वार के सामने ढाल नहीं बन सकता।

पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड॥
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड॥[22]

क्या मौत केवल ग़रीबों और लाचारों को आती है? नहीं। 'पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड'— राजा-महाराजा जिनकी महिमा में बाजे बजाये जाते हैं, जिनकी महिमा के गीत गाये जाते हैं और जिनके सिर पर छत्र झूलते हैं, वे भी क़ब्रिस्तान की सुनसान (जीराण) में जा पहुँचते हैं। उन्हें अनाथों की तरह क़ब्र में गाड़ दिया जाता है, 'थीए अतीमा गड'। वे अन्त समय ख़ाली हाथ यहाँ से चले जाते हैं।

चलि चलि गईआं पंखीआं जिन्ही वसाए तल॥
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल॥[23]

संसार रूपी सरोवर के किनारे खेल रहे जीव रूपी पक्षी ही मौत का शिकार नहीं बनते, एक दिन यह भरा हुआ सरोवर भी ख़ाली हो जायेगा, 'सरु भरिआ भी चलसी'। न संसार स्थायी है और न ही इसकी कोई वस्तु और इसमें रह रहा कोई प्राणी।

फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि॥
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि॥[24]

'पत झड़े झड़ि पाहि'— पतझड़ आता है तो सब वृक्षों के पत्ते झड़ जाते हैं। उसी प्रकार मौत हरएक को आती है और किसी भी जगह आ सकती है— 'रहणु किथाऊ नाहि'। केवल हिन्दुस्तानी ही मौत का शिकार नहीं होते; अमेरिकन, अफ़्रीकन भी मौत से नहीं बच सकते। 'चारे कुंडा ढूंढीआं'— संसार के चारों कोने ढूँढ कर देख लो, हर जगह मौत का पहरा नज़र आयेगा। चाहे ऊँचे से ऊँचे पर्वत पर जा बैठें, चाहे पाताल में छिपकर बैठ जायें, संसार की कोई जगह मौत की पहुँच से परे नहीं है।

चले चलणहार विचारा लेइ मनो॥
गंढेदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो॥[25]

'चले चलणहार विचारा लेइ मनो'— मन में अच्छी तरह विचार करके देखो कि सारी दुनिया यहाँ से चली जा रही है, तो हम यहाँ सदा कैसे रह सकते हैं? अगर यहाँ कोई सदा रह सकता तो हमसे पहले आये लोग यहाँ से क्यों चले जाते? और अगर पहले यहाँ कोई नहीं रह सका तो हम यहाँ सदा रहने की आशा कैसे रख सकते हैं ?

'गंढेदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो'— किसी चीज़ के बनने में काफ़ी समय लगता है, पर उसका अन्त एकदम हो जाता है। जो शरीर वर्षों में बनता है, वह मामूली से बहाने से मौत की चपेट में आ जाता है। छोटी-सी बीमारी या दुर्घटना जान ले लेती है। मौत अटल है और किसी समय, किसी बहाने आ सकती है। यहाँ स्थायी जीवन की आशा रखना कोरी अज्ञानता है।

'अचिंते बाज पए'

मौत सर्वव्यापक और अटल है, पर यह अचानक आती है। आप इशारा करते हैं:

फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥[26]

संसार रूपी नदी के किनारे इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों और मन-चाहे खेल खेल रहे जीव पर अचानक मौत के बाज़ टूट पड़ते हैं। 'केलां विसरीआं'— आँख झपकते ही सब रंग-तमाशे, नाच-गाने, नाटक-लीला, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कार्य-व्यवहार ख़त्म हो जाते हैं। उस समय अचानक ऐसी आश्चर्यजनक घटना घट जाती है, जिसके बारे में कभी सपने में भी नहीं सोचा होता। 'जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं'।

फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टुटी नागर लजु॥
अजराईलु फरेसता कै घरि नाठी अजु॥[27]

'भंनी घड़ी सवंनवी'— जिस तरह मामूली-सी ठोकर लगने से सुन्दर और रंगदार घड़ा टूट जाता है, उसी तरह मौत की ठोकर लगने से अनेक रंगों से

श्रृंगारित शरीर टूटकर बेकार हो जाता है। मौत का फ़रिश्ता शरीर रूपी घर में मेहमान बनकर आ जाता है। साँसों की सुन्दर रस्सी (नागर लजु) और शरीर रूपी सुन्दर घड़ा दोनों टूट जाते हैं। एक बार यहाँ से कूच कर गया जीव फिर कभी उसी रूप में यहाँ दिखाई नहीं देता।

फरीदा दुहु दीवी बलंदिआ मलकु बहिठा आइ॥
गड़ु लीता घटु लुटिआ दीवड़े गइआ बुझाइ॥[28]

आँखों के दीपक अभी जल रहे होते हैं कि जीव के देखते-देखते मौत का फ़रिश्ता (मलकु) आकर शरीर में डेरा डाल लेता है। जीव बिलकुल बेबस और लाचार हो जाता है। मौत का फ़रिश्ता शरीर रूपी किले (गड़ु) में से साँसों की पूँजी लूटकर ले जाता है (घटु लुटिआ) और अन्त में नयनों के दीपक भी बुझा देता है, 'दीवड़े गइआ बुझाइ'।

'वेखहु बंदा चलिआ'

बाबा फ़रीद सुचेत करते हैं:

साढे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अंनि॥
आइओ बंदा दुनी विचि वति आसूणी बंन्हि॥
मलकल मउत जां आवसी सभ दरवाजे भंनि॥
तिन्हा पिआरिआ भाईआं अगै दिता बंन्हि॥
वेखहु बंदा चलिआ चहु जणिआ दै कंन्हि॥
फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥[29]

मनुष्य की साढ़े तीन मन की देह अन्न-पानी के सहारे सांसारिक भाग-दौड़ में लगी रहती है। इनसान संसार में अनगिनत आशाओं-तृष्णाओं की पोटली बाँधकर (वति आसूणी बंन्हि) लाता है। पर जब मौत का फ़रिश्ता (मलकल मउत) शरीर के सब दरवाज़े तोड़कर अन्दर दाख़िल हो जाता है तो शरीर की हरकत बन्द हो जाती है और सब आशाओं का गला घुट जाता है। जो शरीर चुस्ती और फ़ुर्ती की साक्षात् मूर्ति था, वह दूसरों के कन्धों पर क़ब्रिस्तान या श्मशान भूमि तक की यात्रा पूरी करता है। उस समय कुछ भी साथ नहीं जाता, 'फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि'— साथ जानेवाली

एकमात्र चीज़ कुल मालिक की भक्ति का नेक अमल है, जिस ओर से इनसान जीवन-भर आँखें मूँद कर रखता है।

एनी लोइणी देखदिआ केती चलि गई॥
फरीदा लोकां आपो आपणी मै आपणी पई॥[30]

'एनी लोइणी देखदिआ केती चलि गई'— हमारे देखते ही देखते हमारे रिश्तेदार और मित्र यहाँ से चले जा रहे हैं। कई हमें छोड़ गये हैं और कइयों को हम छोड़ जायेंगे। 'लोकां आपो आपणी मै आपणी पई'— आप कहते हैं कि दुनियादारों के सिर पर तो दुनियावी पदार्थ इकट्ठे करने की धुन सवार है, पर मुझे इस बात की चिन्ता लगी हुई है कि जल्दी से जल्दी कुल मालिक की बन्दगी का धन इकट्ठा कर लूँ।

एक दृष्टान्त

परमार्थी साहित्य में एक दृष्टान्त आता है। एक राजा किसी महात्मा के पास गया। वह महात्मा से पूछता है, आपका हुक्म हो तो मैं आपको कुछ अर्पण करूँ। महात्मा ने कहा, जो वस्तु तुम्हारी अपनी हो वह भेंट कर दो। राजा ने कहा, मैं अपना राज्य भेंट कर देता हूँ। महात्मा ने पूछा, तुम से पहले यह राज्य किसका था और तुम्हारे बाद किसका होगा? राजा ने उत्तर दिया, पहले मेरे पिता का था और मेरे बाद मेरे बेटे का होगा। महात्मा ने कहा, फिर तो यह तुम्हारा नहीं है। राजा ने कहा, जी! मैं अपना शरीर आपको भेंट कर देता हूँ। महात्मा ने पूछा, तुम्हारी मौत के बाद यह शरीर किसका होगा ? राजा ने उत्तर दिया, जी! अग्नि की भेंट हो जायेगा। महात्मा बोले, फिर तो यह शरीर भी तुम्हारा नहीं है। राजा कहने लगा कि आप ही बतायें कि मैं कौन-सी चीज़ आपको अर्पण करूँ? महात्मा ने कहा कि हे राजन! तेरी हौमै (अहं) तेरी अपनी है जिसकी वजह से तू संसार की वस्तुओं को अपना समझता है; तू यह हौमै भेंट कर दे।

महात्मा राजा को समझाना चाहते थे कि शरीर, संसार और संसार की किसी चीज़ को अपना समझना सबसे बड़ी भूल है। यह अज्ञानता ही जीवात्मा और परमात्मा के बीच सबसे बड़ी रुकावट है। जब जीव इस अज्ञानता की बलि चढ़ा देता है तो उसका परमार्थ में उन्नति का रास्ता साफ़ हो जाता है।

बाबा फ़रीद तथा अन्य सन्त-महात्मा हमें संसार और शरीर को अपना समझने की हौमै अथवा अज्ञानता से मुक्त करना चाहते हैं। यहाँ कुछ भी हमारा नहीं है। जो कुछ है, उस एक कुल मालिक का है। हम उस मालिक के हैं और वह हमारा है। उसके सिवाय न कोई हमारा है और न हमारा बन ही सकता है। इसलिये नश्वर शरीर, संसार और इसकी शक्लों-पदार्थों को स्थायी समझने की अज्ञानता को त्यागकर उस अमर, अविनाशी परमेश्वर को अपना बनाने की ओर ध्यान देना चाहिये।

चार प्रसंग

बाबा फ़रीद ने अपने कलाम में शरीर और संसार की नश्वरता को बहुत सुन्दर ढंग से प्रकट किया है। आपके कलाम में से ये चार प्रसंग सम्मुख रख लें तो आपके द्वारा सृजित नश्वरता का सम्पूर्ण दृश्य स्पष्ट सामने आ जाता है:

1. चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि॥[31]
2. सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ॥[32]
3. सरु भरिआ भी चलसी॥[33]
4. जे सउ वर्हिआ जीवणा भी तनु होसी खेह॥[34]

स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद के कलाम में नश्वरता का स्वर प्रधान है पर आपने इस वर्णन के साथ जगह-जगह इस प्रकार के छोटे-छोटे संकेत भी जोड़े हैं:

1. फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ॥[35]
2. साई जाइ सम्हालि जिथै ही तउ वंञणा॥[36]
3. नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु॥[37]
4. फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥[38]
5. आखीं सेखा बंदगी चलणु अजु कि कलि॥[39]

आपने संसार की नश्वरता की दर्दनाक असलियत का वर्णन ग़ाफ़िल जीव को सावधान करने के लिये और यह सन्देश देने के लिये किया है कि वह

जल्दी से जल्दी आक़बत (परलोक) का तोशा तैयार कर ले। यह कार्य केवल ख़ुदा के इश्क़ या ख़ुदा की बन्दगी द्वारा ही सम्भव है। इस कार्य में सफलता के लिये मन में ख़ुदा का इश्क़ बढ़ाना उतना ही ज़रूरी है, जितना इसमें से शरीर और संसार का मोह घटाना ज़रूरी है। मौत अटल है और अचानक आ जाती है, इसलिये जीवन के मूल उद्देश्य की पूर्ति जल्दी से जल्दी कर लेनी चाहिये।

3. 'सचे तेरी आस'

बाबा फ़रीद के कलाम में नश्वरता का प्रबल स्वर सुनकर उनके निराशावादी होने का भ्रम हो सकता है। निःसन्देह साधारण इनसान जीवन, जवानी, धन-दौलत, मित्रों-सम्बन्धियों, मान-बड़ाई आदि से सुख और शान्ति की आशा रखकर इनकी ओर दौड़ता है, जबकि बाबा फ़रीद को इनमें से किसी चीज़ से सुख की आशा नहीं। बाबा फ़रीद के अनुसार शरीर फ़ानी (नश्वर) है, जवानी ढलती छाया के समान है, रिश्तेदार सदा साथ नहीं निभाते, महल-भवन भी स्थिर नहीं हैं और धन-दौलत, हुकूमत, बादशाहत, इल्म, अक़्ल आदि कुछ भी इनसान को बुढ़ापे और मौत से नहीं बचा सकते। पर केवल इन बातों के कारण बाबा फ़रीद को निराशावादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनको कुछ चीज़ों से पक्की और सच्ची आशा है।

1. 'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥'[1] 'तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥'[2] बाबा फ़रीद को ख़ुदा की रहमत से पूरी आशा है। ख़ुदावंद रहीम और करीम भी है और बख़्शिंद भी। वह रहमत का अथाह स्रोत है और इनसान के गुनाहों के बावजूद उसे बन्धन-मुक्त कर सकता है।

2. 'सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास॥ इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस॥'[3] यह ठीक है कि संसार रूपी भवसागर में जीव रूपी निर्बल पक्षी को मन, माया, काल, आशा-तृष्णा, विषयों-विकारों आदि अनेक शत्रुओं ने घेरा हुआ है और उसकी हालत सचमुच दयनीय है, पर बाबा फ़रीद निराश नहीं हैं। 'सचे तेरी आस'— बाबा फ़रीद को उस दयालु प्रभु से पूरी मदद और हिफ़ाज़त की उम्मीद है।

3. 'देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥ सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु॥'[4] यह ठीक है कि जीव इस गम्भीर संकट का शिकार है कि जो

देखने में शक्कर मालूम होता है, वास्तव में ज़हर है, परन्तु उस दयालु प्रभु की दया से यह संकट भी टल सकता है।

4. 'कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु॥ ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥'[5] समय रूपी कौए द्वारा सारा शरीर खा लिये जाने के बावजूद बाबा फ़रीद को अपने प्रियतम से मिलाप की आशा है।

5. 'लंमी लंमी नदी वहै कंधी केरै हेति॥ बेड़े नो कपरु किआ करे जे पातण रहै सुचेति॥'[6] जीवन की नाव चाहे भयानक भँवर में फँसी हुई है, पर कामिल मुर्शिद फिर भी उसे भवसागर से पार ले जा सकता है। इसलिये बाबा फ़रीद को अपने मुर्शिद से पूरी आशा है।

6. 'जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥'[7] मंज़िल दूर है, रास्ता लम्बा और कठिन है, पर बाबा फ़रीद को पूरी आशा है कि मुर्शिद के बताये हुए रास्ते पर चलकर मंज़िल ज़रूर प्राप्त की जा सकती है।

7. 'फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥'[8] बाबा फ़रीद यह आशा बिलकुल नहीं रखते कि जीव केवल क़ौम, मज़हब, मुल्क, जाति-पाँति, रंग-रूप, आयु , अक़्ल, धन-दौलत, मान-बड़ाई आदि के सहारे दरगाह में मंज़ूर हो जायेगा। परन्तु उन्हें पूरा विश्वास है कि कुल मालिक की बन्दगी का नेक अमल धुर-दरगाह में जीव की सहायता करेगा।

8. (i) फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु॥
चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु॥[9]

(ii) भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु॥
जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु॥[10]

निराशावादी वह होता है, जो संकट से घबराता हो। बाबा फ़रीद तो लम्बे से लम्बा और कठिन से कठिन रास्ता भी तय करने के लिये तैयार हैं क्योंकि उनके मन में अपने प्रीतम से अभेद होने की उमंग है।

9. 'फरीदा इहु तनु भउकणा नित नित दुखीऐ कउणु। कंनी बुजे दे रहां किती वगै पउणु॥'[11] आप कहते हैं कि मन रूपी कुत्ता हर रोज़ नये-नये भोगों की प्राप्ति के लिये भौंकता है, पर मेरे मन में विषयों की चाहे कितनी तेज़ आँधी क्यों न चले, मैंने अपने कान बन्द कर लिये हैं ताकि मुझ पर इस आँधी

का कोई असर न हो। इस प्रकार कानों में अँगुलियाँ दे लेने को पलायनवादी या निराशावादी वृत्ति कहा जाता है, पर बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि मन, इन्द्रियों और विषयों-विकारों की तृष्णा न कभी पूरी हुई है, न हो ही सकती है। इसलिये बाबा फ़रीद को मन और इन्द्रियों के दास बनने में नहीं, इनका स्वामी बनने में आशा की किरण दिखाई देती है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'दस इंद्री करि राखै वासि॥ ता कै आतमै होइ परगासु॥'[12] परमात्मा का भक्त इन्द्रियों और भोगों का भक्त कैसे बन सकता है?

बाबा फ़रीद और दूसरे सन्त-महात्मा यह बात स्वीकार नहीं करते कि जो कुछ मन माँगता है, उसे देते जायें, अन्त में यह अपने आप थककर बैठ जायेगा। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै॥'[13] आग कभी भी ईंधन से शांत नहीं होती, इसमें जितना अधिक ईंधन डालते हैं, ये उतने और अधिक ईंधन की मांग करती है। गुरु नानक देव जी समझाते हैं, 'भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥'[14] मन की इच्छाएँ कभी पूरी नहीं हो सकती। बाबा फ़रीद को मन की विलासमय अधीनता में सच्चे सुख की आशा नहीं दिखाई देती, बल्कि अपनी आत्मा मन के पंजे से आज़ाद करके परमात्मा में लीन करने में आशा की किरण दिखाई देती है।

10. 'फरीदा रब खजूरी पकीआं माखिअ नई वहंन्हि॥'[15] 'फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिउ मांझा दुधु॥ सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु॥'[16] बाबा फ़रीद को इन्द्रियों के भोग मीठे और सुखदायक नहीं लगते, परमात्मा और उसका नाम मीठा और सुखदायक लगता है। उनको संसार के रसों के विष से नहीं, परमात्मा के नाम के अमृत से आशा है।

11. 'वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥'[17] 'नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु॥'[18] बाबा फ़रीद ऐसे भक्त या 'सचयार' (सत्य से मिलकर सत्य का रूप हो चुका) की बात करते हैं जो अपने आदर्श की प्राप्ति के लिये बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी करने के लिये तैयार है। उसके उद्यम और आदर्श की दिशा तथा मंज़िल लोक नहीं, परलोक है और वह उत्साह भरे उद्यम और भरोसे की मूर्ति है।

12. बाबा फ़रीद के कलाम में मौत और नश्वरता का स्वर प्रबल ज़रूर है, पर क्या मौत एक हक़ीक़त नहीं है? क्या बाबा फ़रीद का शरीर, संसार,

महलों-बंगलों और रिश्तेदारों को नश्वर कहना, सच के विपरीत है? क्या सन्त कबीर, गुरु रविदास, गुरु नानक, गुरु तेग़ बहादुर आदि की वाणी में मनुष्य को इस घोर वास्तविकता के बारे में सावधान किया जाना निराशावादी रुचि का सूचक है? यदि ऐसा है तो संसार के सभी सन्त-महात्मा निराशावादी हैं। असलियत को देखने का यह ढंग सही नहीं। दूसरे सन्तों-महात्माओं की तरह बाबा फ़रीद जीव को न कर्म-हीन बनाते हैं, न उसका उत्साह कम करते हैं और न ही उसे भविष्य के बारे में निराश करते हैं। वे जीव को कर्म-हीन नहीं बनाते, कर्म की दिशा बदलने की प्रेरणा देते हैं। वे जीव को आदर्शहीन नहीं करते, बल्कि सही आदर्श निर्धारित करने का उत्साह देते हैं।

13. बाबा फ़रीद जीव को भगौड़ा नहीं बनाते, एक बड़े संग्राम के लिये तैयार करते हैं। वे जीव को पूरी शक्ति और सूझ-बूझ के साथ युद्ध-भूमि में उतरने की प्रेरणा देते हैं ताकि उसे विरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिले। विरोधियों की शक्ति और हथकण्डों के बारे में सावधान करना, जीव को डराने के लिये नहीं, पूरे यत्न से बाज़ी जीतने की प्रेरणा देने के लिये है। बाबा फ़रीद जीव को उत्साहित करते हैं कि तू बाक़ी सब सहारे त्यागकर एक सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और परम दयालु परमेश्वर की शरण में आ जा और हर तरह की भाग-दौड़ त्यागकर प्रेम और भरोसे से कामिल मुर्शिद के सच्चे और निर्मल उपदेश के अनुसार अपनी लिव अन्दर परमात्मा के नाम की ध्वनि से जोड़ ले। तेरी जीत निश्चित है। जब संसार को बनाने वाला प्रभु तेरा बन जायेगा तो संसार ख़ुद-ब-ख़ुद तेरे क़दमों में आ जायेगा। इतनी बड़ी जीत की युक्ति समझाने वाले और इतनी बड़ी जीत की आशा दिलाने वाले दरवेश को निराशावादी कैसे कहा जा सकता है?

14. 'रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ॥ फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ॥'[19] जो लोग इस दृश्यमान जगत को अन्तिम सत्य मानते हैं, जो सांसारिक सुखों-सुविधाओं, मान-बड़ाइयों, इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों आदि को ही मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य समझते हैं और इनको पाने के लिये जीवन के उसूलों को क़ुर्बान करने में भी कोई ख़राबी नहीं देखते, उनको बड़ी हैरानी होती है कि दरवेश रूखी-सूखी खाकर जीवन बिताने का उपदेश देते हैं।

'फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु॥ कजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु॥'[20] लोग हैरान होते हैं कि इन दरवेशों को न हुस्न और जवानी में और न ही राग-रंग की महफ़िलों में कोई दिलचस्पी है। जो लोग इस संसार का सुधार करके इसे सुख की नगरी बनाना चाहते हैं, उनको भी सन्त-महात्मा बड़े निराशावादी प्रतीत होते हैं, क्योंकि इन महापुरुषों को दुनिया दु:खों का घर नज़र आती है। ऐसे लोगों को वे दरवेश घोर निराशावादी प्रतीत होते हैं जो संसार को 'कोधरे का खेत', 'कल्लर केरी छपड़ी', 'कसुंभड़े का विसूला बाग' और इसके भोगों को 'चीनी में पगी विष गंदला' और 'ज़हर में बदल जाने वाली शक्कर' का नाम देते हैं। ऐसे लोगों के इस तरह के विचारों का मूल कारण कामिल दरवेशों की जीवन-दृष्टि के असल मर्म और उनके संसार में आने के वास्तविक उद्देश्य से अनजान होना है।

15. बाबा फ़रीद कहते हैं, 'जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ॥'[21], 'अलह सेती रतिआ एहु सचावां साजु॥'[22], 'फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिउ मांझा दुधु॥ सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु॥'[23] स्पष्ट है कि आपका संसार और इसके शक्लों-पदार्थों, पदों और प्राप्तियों से निराश होने का मूल कारण यह है कि आप हर दुनियावी प्राप्ति को प्रभु से मिलाप के आनन्द की तुलना में तुच्छ समझते हैं।

16. बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं:

1. फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोणु॥
   अगै गए सिञापसनि चोटां खासी कउणु॥[24]
2. पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड॥
   जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड॥[25]
3. फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा॥
   अगै दोजकु तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा॥
   इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा॥
   अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा॥[26]
4. फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥
   ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥[27]

बाबा फ़रीद के श्लोकों की सबसे अधिक समानता गुरु तेग़ बहादुर साहिब के श्लोकों के साथ है। गुरु साहिब के कुछ श्लोकों पर विचार करते हैं। आप कहते हैं:

1. गुन गोबिंद गाइओ नहीं जनमु अकारथ कीनु॥
   कहु नानक हरि भजु मना जिह बिधि जल कउ मीनु॥[28]
2. बिखिअन सिउ काहे रचिओ निमख न होहि उदासु॥
   कहु नानक भजु हरि मना परै न जम की फास॥[29]

आप विषयों-विकारों की पूर्ति को नहीं, गोबिन्द की भक्ति को मनुष्य जन्म का मूल उद्देश्य बताते हैं। आप कहते हैं:

1. सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहिन कोइ॥
   कहु नानक सुनि रे मना तिह सिमरत गति होई॥[30]
2. जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह॥
   कहु नानक सुनि रे मना दुरलभ मानुख देह॥[31]

आपका भाव है कि सच्चा, स्थायी और पूर्ण आनन्द केवल लिव को परमात्मा के साथ जोड़ने से ही प्राप्त हो सकता है। आप कहते हैं:

रामु गइओ रावनु गइओ जा कउ बहु परवारु॥
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसारु॥[32]

न तो रामचन्द्र जी महाराज जैसे पूर्ण पुरुष सदा रह सकते हैं और न ही रावण जैसे दुष्ट प्राणी। संसार और इसके वस्तु-पदार्थ स्वप्न की तरह है। आप ख़बरदार करते हैं:

धनु दारा संपति सगल जिनि अपुनी करि मानि॥
इन मैं कछु संगी नही नानक साची जानि॥[33]

धन-दौलत, महल-बँगलें, ज़मीनें-जायदादें, बेटे-बेटियाँ और सम्बन्धियों का साथ झूठा है। आप कहते हैं:

1. इहु जगु है संपति सुपने की देखि कहा ऐडानो॥[34]
2. इहु जगु धूए का पहार॥ तै साचा मानिआ किह बिचारि॥[35]
3. जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत॥
   जग रचना तैसे रची कहु नानक सुनि मीत॥[36]

4. जग रचना सभ झूठ है जानि लेहु रे मीत॥
   कहि नानक थिरु ना रहै जिउ बालू की भीति॥[37]
5. म्रिग त्रिसना जिउ झूठो इहु जग॥[38]

आप संसार की 'स्वप्न में इकट्ठी की गई दौलत', 'धूंऐ के पहाड़' 'पानी के बुलबले' 'रेत की दीवार' और 'मृग-तृष्णा' से तुलना करते हैं। आप सच्चा और स्थायी किसको मानते हैं?

नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंदु॥
कहु नानक इह जगत मै किन जपिओ गुर मंतु॥[39]

वह गोबिन्द सच्चा है, उसमें समाकर उसका रूप हो चुके सन्त-सतगुरु सच्चे हैं, गोबिन्द का नाम सच्चा है और मनुष्य-जन्म केवल उन भाग्यशाली जीवों का सफल है, जो सन्त-सतगुरु के उपदेश के अनुसार नाम रूपी गुरुमन्त्र की अराधना करते हैं। स्पष्ट है कि गुरु साहिब को संसार, इसके शक्लों-पदार्थों, इसकी मान-बड़ाइयों, इन्द्रियों के भोगों आदि में नहीं, केवल परमात्मा, सन्त-सतगुरु और उसके बख़्शे नाम की कमाई से आशा है। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

निमख काम सुआद कारणि कोटि दिनस दुखु पावहि॥
घरी मुहत रंग माणहि फिरि बहुरि बहुरि पछुतावहि॥
अंधे चेति हरि हरि राइआ॥ तेरा सो दिनु नेड़ै आइआ॥
पलक द्रिसटि देखि भूलो आक नीम को तूंमरु॥
जैसा संगु बिसीअर सिउ है रे तैसो ही इहु पर ग्रिहु॥
बैरी कारणि पाप करता बसतु रही अमाना॥
छोडि जाहि तिन ही सिउ संगी साजन सिउ बैराना॥
सगल संसारु इहै बिधि बिआपिओ सो उबरिओ जिसु गुरु पूरा॥
कहु नानक भव सागरु तरिओ भए पुनीत सरीरा॥[40]

कबीर साहिब एक शब्द में फ़रमाते हैं:

लंका सा कोटु समुंद सी खाई॥ तिह रावन घर खबरि न पाई॥
किआ मागउ किछु थिरु न रहाई॥ देखत नैन चलिओ जगु जाई॥
इकु लखु पूत सवा लखु नाती॥ तिह रावन घर दीआ न बाती॥
चंदु सूरजु जा के तपत रसोई॥ बैसंतरु जा के कपरे धोई॥

गुरमति रामै नामि बसाई॥ असथिरु रहै न कतहूं जाई॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई॥ राम नाम बिनु मुकति न होई॥[41]

प्रत्यक्ष है कि सारे कामिल दरवेशों ने अपनी बात 'ऐथै, 'अगै', 'भवसागरु तरिओ' और 'राम नाम बिनु मुकति न होई' के विशाल सन्दर्भ में की है। पूर्ण सन्तों की नज़र दृश्यमान घटनाओं और तथ्यों के पीछे छिपी वास्तविकता पर होती है। उनकी दृष्टि मृत्युलोक से सतलोक तक जाती है। वे कार्यों के आदि को उनके अन्त से, आग़ाज़ (आरम्भ) को अंजाम (अन्त) से जोड़कर देखते हैं। वे इन्द्रियों के क्षणिक भोगों की असारता के भी जानकार होते हैं और उनसे उत्पन्न होनेवाले लम्बे अकह सन्ताप के भी।

सन्तजन वर्तमान जीवन के छोटे-से काल-खण्ड को आत्मिक जीवन की अनन्त निरन्तरता के प्रसंग में रखकर देखते हैं। पल-भर का जो सुख लम्बे समय के दु:ख का कारण बने, वे उसे सुखदायी नहीं मानते। सांसारिक भोगों का जो टोना जीव को मूर्छित करके उसको निज-घर के परम सुख से दूर रखे, वे उसे दु:खदायक बताते हैं, सुखदायक नहीं।

पूर्ण सन्त मनुष्य के सामने वर्तमान के तुच्छ, क्षणिक इन्द्रिय-भोगों और दृश्यमान संसार के अपूर्ण नश्वर सुखों की जगह, परमेश्वर से मिलाप के अलौकिक और स्थायी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति का आदर्श क़ायम करते हैं। वे स्थायी आत्मिक आनन्द को सच्चा और क्षणभंगुर इन्द्रिय-सुख को झूठा मानते हैं। जीवन के मूल आदर्श की प्राप्ति होती हो तो वे वर्तमान के छोटे-से काल-खण्ड में कमियों और दु:खों को भी ख़ुशी-ख़ुशी सह लेने के हक़ में हैं। यही कारण है कि वे एक ओर सांसारिक वस्तुओं, रिश्तों, पदों और प्राप्तियों की असारता का करुणामय सन्देश देते हैं, तो दूसरी ओर परमेश्वर के मिलाप से मिलने वाले सच्चे, स्थायी आत्मिक आनन्द के आशामय गीत गाते हैं। जिस स्वार्थी दुनियादार ने पदार्थवाद और भोगवाद के काले शीशों की ऐनक लगा रखी है, उसे संसार के सभी सन्त-महात्मा स्वप्नवादी, पलायनवादी, निजवादी और निराशावादी प्रतीत होते हैं, जबकि निर्मल पारमार्थिक दृष्टि वाले व्यक्ति को वे सन्त-जन अत्यन्त यथार्थवादी, संघर्षशील, मानववादी और आशावादी प्रतीत होते हैं।

4. 'काली कोइल तू कित गुन काली'

पीछे बाबा फ़रीद ख़ुदा के इश्क़ की महत्ता, शरीर और संसार की नश्वरता का वर्णन कर आये हैं। आपकी वाणी रूहानियत के एक अन्य सुन्दर रहस्य पर प्रकाश डालती है:

काली कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥
पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए॥ जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए॥[1]

आत्मा से पूछा जाता है, 'काली कोइल तू कित गुन काली?' ऐ आत्मा रूपी कोयल, तू यह बात समझा कि तू वर्तमान अवस्था में कैसे पहुँच गई? तू चेतन थी, प्रकाश-रूप, ज्ञान-रूप और आनन्द-रूप थी; तू इस दु:खदायक, अन्धकारमय अवस्था में कैसे पहुँच गई? आत्मा कहती है, 'अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली।' मेरी पीड़ा भरी कालिमा का मूल कारण प्रीतम का वियोग है। मैं दिन-रात वियोग की आग में जल रही हूँ। आत्मा फिर पूछती है, 'पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए' क्या तुमने कभी अपने प्रीतम से बिछुड़ी किसी प्रेमिका को सुख की नींद सोते देखा है? प्रीतम के वियोग और सच्चे सुख का सम्बन्ध दिन और रात की तरह हैं, ये दोनों कभी इकट्ठे नहीं हो सकते।

ऊपर दिये गए वर्णन में बाबा फ़रीद ने बहुत सरल परन्तु भावपूर्ण ढंग से संसार के सब कामिल दरवेशों द्वारा बयान की गई इस बात की ओर ध्यान खींचा है कि आत्मा असल में मुक़ामे-हक़ (सचखण्ड) की रहनेवाली है। यह उस कुल मालिक का अंश है। यह आदि में उस मालिक में अभेद थी। उस कर्तापुरुष ने अपनी मौज में इसे अपने से अलग करके इस मृत्युलोक में भेज दिया। जैसे ही रूह अपने स्रोत से बिछुड़ी, इसके दु:खों की कभी न ख़त्म होनेवाली कहानी शुरू हो गई। परमात्मा की तरह ही आत्मा शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, प्रेम-रूप और आनन्द-रूप है, पर मन और माया के प्रभाव के कारण किये गए कर्मों ने इसके क़ुदरती प्रकाश को ढक लिया है। वर्तमान

अवस्था में यह बहुत निर्बल हो चुकी है और अज्ञानता के अन्धकार में बुरी तरह फँस चुकी है। सौभाग्य यह है कि इसके अन्दर दबी अपने असली घर की याद और प्रीतम की प्रीति को कभी किसी हालत में ख़त्म नहीं किया जा सकता। आत्मा के अन्दर अपना और निज-घर का प्रेम या वैराग्य उस कर्त्ता ने स्वयं पैदा किया है। यह प्रेम या वैराग्य ही अन्त में जीव को परमात्मा के साथ मिलाने का साधन बनता है। बाबा फ़रीद इसके बारे में आगे विस्तारपूर्वक समझाते हैं।

'बिरहा तू सुलतानु'

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु॥
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु॥[2]

लोग वियोग की दु:खदायक पीड़ा की शिकायत करते हैं, परन्तु बाबा फ़रीद के अनुसार यह पीड़ा ऊँची से ऊँची तथा पवित्र से पवित्र है। इस पीड़ा का प्रभु के मिलाप के मार्ग में वही दर्जा है जो एक सुलतान का अपने राज्य में होता है। किसी प्रेमी से पूछो कि क्या वह किसी भी क़ीमत पर इस पीड़ा को छोड़ने के लिये तैयार है? उसका जवाब 'नहीं' में होगा। वियोग का दर्द असल में प्रेम के ज़िन्दा होने की निशानी है। मनुष्य की हस्ती का सार प्रेम है और वियोग की पीड़ा, प्रेम के जीवित होने का प्रमाण है। जो किसी चीज़ की कमी महसूस करता है, जो किसी चीज़ के लिये तड़पता है, वह उसे पाने के लिये यत्न भी करता है और उसके लिये हर तरह की क़ुर्बानी देने के लिये भी तैयार हो जाता है। जिस चीज़ की कमी ही महसूस न हो, उसके लिये यत्न करने या क़ुर्बानी देने का सवाल ही पैदा नहीं होता। विरह प्रेम को प्रकट करती है, उसे प्रबल करती है और प्रीतम से मिलाप का साधन भी सिद्ध होती है। जिस हृदय में विरह पैदा हो गई है, वह हृदय धन्य है, जबकि विरह-विहीन हृदय श्मशान के समान है।

बहुत-से सूफ़ी दरवेशों ने अपने कलाम में यह भाव प्रकट किया है कि जबसे रूह ख़ुदा से बिछुड़कर इस दुनिया में आई है, इसके अन्दर ख़ुदा की जुदाई की पीड़ा समाई हुई है। इनसान को दुनिया में जो मर्ज़ी प्राप्त हो जाये उसे हमेशा अपने अन्दर कुछ कमी और बेचैनी महसूस होती रहती है। यह आत्मा

की परमात्मा की ओर क़ुदरती कशिश के कारण है। जब तक आत्मा वापस जाकर परमात्मा में नहीं समा जाती, यह बेचैनी दूर नहीं होती। बाबा फ़रीद ने इसे ही 'बिरहा तू सुलतानु' का नाम दिया है। रूहानी दृष्टि से यह विरह ही प्रभु से मिलाप का सबसे बड़ा और सच्चा साधन सिद्ध होता है। यदि परमात्मा ने रूह के अन्दर अपने मिलाप की तड़प न रखी हो तो कोई रूह कभी रचना के बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा से मिलाप नहीं कर सकती। बाबा फ़रीद इस गूढ़ भेद की ओर इशारा कर रहे हैं कि संसार की तड़प जीवात्मा को संसार से बाँधकर रखती है और परमात्मा की तड़प इसे अन्तत: परमात्मा से मिला देती है।

संसार के सभी सन्तों-महात्माओं ने जीव को यही उपदेश दिया है कि जब तक तुम झूठी दुनिया का झूठा मोह त्यागकर अपने हृदय में सच्चे प्रभु का सच्चा प्रेम पैदा नहीं करते, जब तक तुम्हारे हृदय में उस प्रीतम से मिलाप की सच्ची तड़प पैदा नहीं होती, तुम कभी भी उससे मिलाप की आशा नहीं रख सकते। आत्मा के अन्दर परमात्मा से मिलाप की क़ुदरती तड़प अवश्य है, परन्तु वर्तमान अवस्था में यह कर्मों, संस्कारों और संसार के प्रेम या मोह के नीचे दब चुकी है। इस दबी हुई या सो रही प्रीति को पुन: जाग्रत करना और बलवान बनाना ही सच्चा परमार्थ है। प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई का वास्तविक उद्देश्य भी इस सोई हुई प्रीति को जाग्रत करना है।

हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी बहुत सुन्दर उदाहरण द्वारा समझाया करते थे कि एक माँ अपने बच्चे को आया के साथ खेलने के लिये बाहर भेज देती है। वह आया तोतली बोली में कहानियाँ सुनाकर, फल-मिठाइयाँ देकर और अन्य अनेक प्रकार से बच्चे को प्रसन्न रखती है। जब तक बच्चा ख़ुशी-ख़ुशी आया के पास खेलता रहता है, माँ बेफ़िक्र रहती है। जैसे ही बच्चा बाक़ी सबकुछ भुलाकर माँ के लिये रोना शुरू कर देता है, माँ से भी बरदाश्त नहीं होता, वह दौड़कर बच्चे को छाती से लगा लेती है। इसी प्रकार जब तक आत्मा रचना के खिलौनों से खेलती रहती है, कुल मालिक इसे इस रचना के खेल में लगा रहने देता है। जब आत्मा हर ओर से ध्यान निकालकर उस पिता-परमेश्वर के लिये तड़पती है, तो वह पिता इसे ख़ुद अपने साथ मिला लेता है।

जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ॥
फरीदा किंती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ॥[3]

सच्ची प्रेमिका कहती है कि बाक़ी चाहे कुछ भी चला जाये पर प्रीतम की प्रीति कभी न जाये, क्योंकि जब तक प्रीति क़ायम है, प्यारे से मिलने की उम्मीद क़ायम है, अगर प्रीति गई तो प्रीतम से मिलाप की उम्मीद भी साथ ही ख़त्म हो जायेगी। बाबा फ़रीद इसी भाव को इस प्रकार भी प्रकट करते हैं:

1. कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु॥
   ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥[4]
2. कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि॥
   जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि॥[5]

इन श्लोकों में प्रेमिका की अपने प्रीतम से मिलाप की तड़प को बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। विरहिणी को न भूख लगती है, न नींद आती है; विरह की पीड़ा में उसका तन सूखकर काँटा हो गया है। प्रभु रूपी प्रीतम के विरह में व्याकुल विरहिणी काग से विनती करती है, "हे काग, बेशक तूने मेरे जिस्म का पूरा मांस खा लिया है, लेकिन मेरी तुझसे विनती है कि मेरी इन दो आँखों को न खाना क्योंकि मुझे अब भी अपने महबूब के दीदार की उम्मीद है।"

बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि प्रेमिका अपने प्रीतम के दीदार के लिये कोई भी क़ुर्बानी देने के लिये तैयार है। वे प्रीतम से मिलाप के लिये बड़े से बड़ा दुःख भी झेल सकती है। जब तक उन्हें अपने प्यारे का दीदार नहीं होता, उसके हृदय में विरह की चिनगारी जलती रहती है। उसे न तन की सुध-बुध रहती है, न खाने-पीने की और न ही वह दुःखों या कष्टों से घबराती है। बाबा फ़रीद एक अन्य श्लोक में कहते हैं:

फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरहि विछावण लेफु॥
एहु हमारा जीवणा तू साहिब सचे वेखु॥[6]

बाबा फ़रीद अपने विरह की व्यथा को बयान करते हुए कहते हैं कि चिन्ता की चारपाई है, यह दुःखों के वाण से बुनी हुई है और इस पर विरह का बिछौना है। हे मेरे प्रीतम, देख, तेरे वियोग में मेरी क्या दुर्दशा हो गई है। मेरा जीवन चिन्ता, दुःख तथा तड़प की तस्वीर बन चुका है। तू अपनी रहमत से मुझे इस दुःख से मुक्त कर दे।

प्रीति अनादि है

साईं बुल्लेशाह का कलाम है:

1. इक रांझा मैनूं लोड़ीदा।
   कुन फ़यकूनों अग्गे दीआं लग्गीआं, नेहों ना लगड़ा चोरी दा।[7]
2. नीं मैनूं लगड़ा इश्क अव्वल दा, अव्वल दा, रोज़ अज़ल दा।
   विच कड़ाई तल तल जावे, तलयां नूं चा तलदा।
   मोयां नूं एह वल वल मारे, वलयां नूं चा वलदा।
   क्या जाणां कोई चिणग कक्खीं ए, नित सूल कलेजे सलदा।
   तीर जिगर विच लग्गा इश्कों, नहीं हलायां हलदा।
   बुल्ला शाह दा नेहों अनोखा, नहीं रलायां रलदा।[8]

'कुन फ़यकून' और 'रोज़े अज़ल' के अर्थ हैं ख़ुदा के हुक्म से अस्तित्व में आई रचना का पहला दिन। आप संकेत करते हैं कि जब से ख़ुदा के हुक्म से रूह ख़ुदा से जुदा हुई और मुक़ामे-हक़ के स्थान पर इस मृत्युलोक की निवासी बनी, तब से ही इसके अन्दर ख़ुदा का इश्क़ और ख़ुदा की जुदाई का दर्द छिपा हुआ है। 'विच कड़ाई तल तल जावे', 'मोयां नूं एह वल वल मारे', 'नित सूल कलेजे सलदा' आदि वर्णन वियोग के दर्द की निरन्तरता दर्शाते हैं। 'नहीं रलायां रलदा' का 'बिरहा तू सुलतानु' वाला ही भाव है। बाबा फ़रीद और साईं बुल्लेशाह यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि कोई दूसरी चीज़ इस अनोखी पीड़ा का स्थान नहीं ले सकती। यही कारण है कि सृष्टि के शुरू से रूह रूपी हीर ख़ुदा रूपी रांझे की तलाश में भटक रही है। हज़रत सुलतान बाहू का कलाम है:

बंन चलाया तरफ़ ज़मीं दे, अरशों फ़रश टिकाया हू।
घर थीं मिलया देश निकाला, लिखया झोली पाया हू।
रौह नी दुनिया, न कर झेड़ा, साडा दिल घबराया हू।
असीं परदेसी वतन दुराडा, दम दम अलम सवाया हू।[9]

आप समझा रहे हैं कि मुक़ामे-हक़ की रहनेवाली रूह मन और माया के इस पराये देश में परदेसियों की तरह भटक रही है। इसके अन्दर घर लौटने की बेचैनी है। 'दम-दम अलम सवाया हू'— इसकी वियोग की पीड़ा हर पल

बढ़ती ही जाती है, घटती नहीं। इसका इस संसार में मन नहीं लगता और यह जल्दी से जल्दी अपने देश लौट जाना चाहती है, ताकि इसका वापस अपने प्रीतम से मिलाप हो जाये।

'जि दिहि नाला कपिआ'

फरीदा जि दिहि नाला कपिआ जे गलु कपहि चुख॥
पवनि न इती मामले सहां न इती दुख॥[10]

'नाला कपिआ' का अर्थ है नाड़ू काटना। 'जे गलु कपहि चुख'– अगर मेरा नाड़ू (नाला) काटने की बजाय मेरा गला ही काट देते तो अच्छा होता। नाड़ू काटना बच्चे का मां से अलग हो जाने का सूचक है। बाबा फ़रीद संकेत कर रहे हैं कि जब तक जीवात्मा रूपी बालक की परमात्मा रूपी माता से लिव जुड़ी हुई थी, यह हर प्रकार के दुःखों और चिन्ताओं से मुक्त था। 'पवनि न इती मामले सहां न इती दुख'– न आत्मा परमात्मा से अलग होती और न ही इसे मायावी जगत में आकर तरह-तरह के कष्ट सहने पड़ते। 'अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली', 'जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ' और 'पवनि न इती मामले सहां न इती दुख'– तीनों वर्णन मिलकर यह भाव प्रकट कर रहे हैं कि जब तक रूह अपने सच्चे देश में वापस पहुँचकर अपने स्रोत में नहीं समाती, इसके दुःख कभी दूर नहीं हो सकते। परमात्मा का वियोग ही आत्मा के लिये सबसे बड़ा सन्ताप और श्राप है। जब तक यह अपने वजूद को उस परम सत्य में अभेद नहीं करती, यह कभी भी दुःख से निजात नहीं पा सकती।

तती तोइ न पलवै जे जलि टुबी देइ॥
फरीदा जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ॥[11]

इस श्लोक के साधारण अर्थ यह है कि जैसे सूखी खेती को चाहे जितना मर्ज़ी पानी दिया जाये, वह फिर से हरी नहीं हो सकती, उसी तरह ख़ुदा से बिछुड़ी रूह भी कभी सुखी नहीं हो सकती।

बाबा फ़रीद पहले 'अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली' का इशारा कर चुके हैं। यहाँ आप यह समझा रहे हैं कि ख़ुदा से बिछुड़ी रूह को अधिक से

अधिक इन्द्रियों के भोगों और सांसारिक सुखों में क्यों न डुबो दें (जे जलि टुबी देइ) तो भी रूह हमेशा अपने प्रीतम से मिलाप के लिये तड़पती रहेगी– 'झूरेदी झूरेइ'। जिस विवाहित स्त्री का पति परदेस चला गया हो, उसे जितने मर्ज़ी सुन्दर आभूषण, कीमती हार-शृंगार और स्वादिष्ट भोजन दे दें, चाहे उसे आलीशान महलों में रखें और बहुत-से नौकर उसकी सेवा में हाज़िर रहें, वह फिर भी उदास रहती है। पानी से बिछुड़ी मछली को चाहे दूध, घी और शहद में रखें, वह फिर भी तड़पती रहेगी। इसी प्रकार परमात्मा रूपी प्रीतम के वियोग में व्याकुल जीवात्मा को संसार के चाहे कितने ही साज़ो-सामान दे दिये जायें, उसके वियोग की पीड़ा ख़त्म नहीं हो सकती। वियोग का एकमात्र इलाज मिलाप है।

'इकु ढूंढेदी न लहां'

फरीदा गलीं सु सजण वीह इकु ढूंढेदी न लहां॥
धुखां जिउ मांलीह कारणि तिंन्हा मा पिरी॥[12]

'जे जलि टुबी देइ' में सांसारिक सुखों की बहुतायत की ओर संकेत था तो 'गलीं सु सजण वीह' में संकेत मित्रों-सम्बन्धियों की बहुतायत से है। आत्मा कहती है– मेरे साथ रिश्ता जोड़ने वाले तथाकथित सम्बन्धियों की कमी नहीं, पर चलते समय साथ चलने वाला कोई सच्चा साथी नहीं। 'इकु ढूंढेदी न लहां'– झूठे रिश्तेदारों की भीड़ में घिरी हुई भी मैं अपने आपको अकेली महसूस कर रही हूँ। इनमें मुझे वह 'इकु' दिखाई नहीं देता जो वास्तव में मेरा अपना है।

'धुखां जिउ मांलीह'– रूह कहती है कि यही कारण है कि मैं संसार के अधिक से अधिक ऐशो-इशरत के सामानों और हज़ारों रिश्तेदारों के होते हुए भी अन्दर से आधे सूखे गोबर की तरह सुलग रही हूँ। मुझे सदा वियोग की दीमक खा रही है। 'जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ' वाले भाव को ही 'धुखां जिउ मांलीह' द्वारा पुष्ट किया गया है। बाबा फ़रीद आत्मा के अकेलेपन और इससे उत्पन्न 'दुःख की निरन्तरता' के भाव पर ज़ोर दे रहे हैं। जब तक इस अकेलेपन का 'श्राप' दूर नहीं होता, दुःख की पीड़ा भी दूर नहीं हो सकती।

अन्य कई सूफ़ी दरवेशों ने वियोग की इस पीड़ा के दर्द-भरे गीत गाये हैं। मौलाना रूम अपनी मसनवी की शुरूआत ही रूह के वियोग की दर्दो-पुकार से करते हैं। आत्मा रूपी बाँसुरी कहती है कि मैं अपने वियोग के दर्द की कहानी बयान कर रही हूँ। जब से मैं जंगल (अपने मूल) से बिछुड़ी हूँ, मैं परेशान हूँ। जिस किसी को भी उसके मूल से अलग किया जाता है, उसमें मूल से दोबारा मिलने की तड़प पैदा हो जाती है।[13]

'जो सैतानि वंञाइआ'

बाबा फ़रीद ने 'गंली सु सजण वीह' और 'धुखां जिउ मांलीह' द्वारा जो रहस्य प्रकट किया है, उसके साथ ही आप एक चेतावनी भी देते हैं:

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित॥
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥[14]

'मती देदिआ नित' और 'जो सैतानि वंञाइआ' द्वारा आप यह गहरा राज़ ज़ाहिर कर रहे हैं कि रूह के अन्दर अपने असल से मिलने की क़ुदरती कशिश है, पर मन या नफ़्स रूपी शैतान जीवात्मा को अन्दर से हर पल गुमराह करके इन्द्रियों के भोगों, ऐशो-इशरत और दुनिया के दूसरे अनेक प्रलोभनों की ओर खींचता रहता है। 'से कित फेरहि चित'— जीव इस क़द्र मन और माया या काल (शैतान) के वश में हो चुका है कि न तो उसका ध्यान अपने असल घर की ओर जाता है और न वह उस घर की प्राप्ति के लिये यत्न ही करता है। सन्त-महात्मा बहुत समझाते हैं, पर इसके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।

'आजु मिलावा सेख फरीद'

आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम कूंजड़ीआं मनहु मचिंदड़ीआ॥[15]

आप विश्वास दिलाते हैं कि ख़ुदा से आज और अभी मिलाप हो सकता है अगर मन को उत्तेजित करनेवाली इन्द्रियों को वश में कर लिया जाये, 'टाकिम कूंजड़ीआं।' मनुष्य की हस्ती का असली आधार आत्मा है, पर वर्तमान अवस्था में शरीर, मन और आत्मा की गाँठ बँध चुकी है। बजाय इसके कि मन, आत्मा के अधीन कार्य करे, इसने आत्मा को अपने अधीन किया हुआ है। मन ही

आत्मा को इन्द्रियों के भोगों की ओर खींचता है और यही इससे तरह-तरह के कर्म करवाता है। नतीजा यह होता है कि किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये आत्मा को बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

नफ़्स या मन, चेतन आत्मा और जड़ शरीर को आपस में जोड़ने वाली कड़ी है। सफ़ेद बल्ब पर नीला काग़ज़ चढ़ा दें तो ऐसा प्रतीत होता है कि बल्ब में से नीली रोशनी आ रही है। धर्म-ग्रन्थों में इसे 'संगदोष' कहा गया है। नफ़्स आत्मा के स्वाभाविक प्रकाश को ढक देता है। यह न तो उस प्रकाश को बदल सकता है और न ही ख़त्म कर सकता है, पर जैसे-जैसे आत्मा पर मन, माया और कर्मों के परदे चढ़ते जाते हैं, इसका क़ुदरती नूर दबता जाता है और यह रूहानी नूर के अखण्ड स्रोत उस परमात्मा से दूर होती जाती है। मान लें, कोई ख़ानाबदोश किसी राजकुमार को छोटी उम्र में अग़वा करके, उसके हाथ में भीख माँगने का कटोरा थमा देता है। धीरे-धीरे राजकुमार अपना कुल भूलकर उस ख़ानाबदोश को ही अपना रिश्तेदार समझने लगता है। वह उस ख़ानाबदोश के देश को ही अपना देश और उसके धन्धे को ही अपना धन्धा समझना शुरू कर देता है। वास्तव में यह उसकी अज्ञानता है, जो उसकी सबसे बड़ी दुश्मन है। यही अवस्था मन के अधीन हुई आत्मा की हो चुकी है। हज़रत सुलतान बाहू संकेत करते हैं:

कुन फ़यकून जदों फ़रमाया, असां वी कोले हासे हू।
हिक्के ज़ात सिफ़ात रब्बे दी, हिक्के जग ढूंडयासे हू।
हिक्के लामकान असाडा, हिक्के बुत विच फासे हू।
नफ़्स शैतान पलीती कीती, असल पलीत तां नासे हू।[16]

क़ुरान शरीफ़ में अल्लाह द्वारा रचना किये जाने के बारे में कहा गया है- 'कुन फ़यकून'[17]। जिसका अर्थ है— ख़ुदा ने हुक्म दिया 'हो जा' (कुन) और 'हो गया' (फ़यकून); यानी ख़ुदा के हुक्म से रचना अस्तित्व में आ गई। आप फ़रमाते हैं कि जब ख़ुदा के हुक्म से सम्पूर्ण कायनात वजूद में आई तो रूहें वहाँ (मुक़ामे-हक़ में) मौजूद थीं, 'असां भी कोले हासे हू।' रूहों की और परमात्मा की जाति एक है। ख़ुदा और रूहें हम-जिन्स, हम-ज़ात या सजातीय हैं। वे एक ही जौहर से बनी हैं और उनका निवास-स्थान भी एक ही है।

आत्मा-परमात्मा की तरह निष्कलंक है, इस पर जो भी मैल चढ़ी है, मन द्वारा चढ़ी है।

हज़रत बू अली क़लन्दर का कथन है, 'आफ़रीदा हक़्क़ मरा अज़ नूरे-ज़ात।'[18] यानी ख़ुदा ने मुझे अपनी ज़ात के नूर में से पैदा किया। 'अमरे रब्बी अस्त रूहो-सिर्र-ख़ुदास्त'[19] यानी रूह ख़ुदा के हुक्म से है और इसमें ख़ुदा का भेद छिपा हुआ है। साईं बुल्लेशाह का कलाम है:

1. बुल्लाशाह संभाल तू आप ताईं, तूं तां अनंत लग देह में कहां सोवें।[20]
2. बुल्लाशाह संभाल तू आप ताईं, तूं तां सदा अनंद हैं चानणा हैं।[21]
3. सुख रूप अखंड चेतंन हैं तूं, बुल्लाशाह पुकारदे वेद चारे।[22]
4. बुल्लाशाह संभाल जब आप देखा, सदा सोहंग प्रकाश होए झुल्लदा हैं।[23]

मूल रूप में आत्मा, परमात्मा की भाँति अनन्त है। यह देश और काल के बन्धनों से मुक्त है। यह अखण्ड है। यह काल और मृत्यु के अधीन नहीं। 'न इसे तलवार काट सकती है, न अग्नि जला सकती है और न पानी गला सकता है।'[24] यह जड़ नहीं, चेतन है। यह मायावी मलिनताओं से निर्मल है। यह विशुद्ध चेतना है। यह प्रकाश-रूप, शक्ति-रूप और आनन्द-रूप है। यह द्वैत, परिवर्तन, मौत आदि से पैदा होनेवाले दु:खों से ऊपर और परे है। इसके ऊपर जो भी मलिनताएँ चढ़ी हुई हैं, मन-माया के साथ और किये हुए कर्मों के कारण चढ़ी हुई हैं।

'आपु सवारहि मै मिलहि'

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥[25]

ख़ुदा इनसान से कहता है कि अगर तू ख़ुद को सँवार ले और दुनिया का बनने की बजाय मेरा बन जाये तो मैं तेरा बन जाऊँगा, तुझे परम सुख की प्राप्ति हो जायेगी और जो कुछ मेरा है सब तेरा हो जायेगा।

मनुष्य की हस्ती का असल आधार आत्मा है। इसलिये रूहानी साहित्य में 'आपे की पहचान' का प्रयोग 'आत्मा की पहचान' के अर्थों में किया गया है।

जब तक आत्मा, मन और इन्द्रियों से अलग नहीं होती, यह न अपने आपको पहचान सकती है और न ही अपने मूल उस परमात्मा को पहचान सकती है। यही कारण है कि 'आपे की पहचान' को ही 'मूल (परमात्मा) की पहचान' का आधार माना गया है। 'आपु सवारहि'— जब तक आत्मा इन्द्रियों और मन के सम्पर्क में है, यह अपवित्र या गन्दी है। जब तक यह मलिन है, यह उस निर्मल प्रभु में नहीं समा सकती। निर्मल होने के लिये ज़रूरी है कि यह पहले शरीर से और फिर मन से अलग हो। परमात्मा की भक्ति और नाम की कमाई का असल उद्देश्य भी आत्मा को शरीर और मन से अलग करके परमात्मा से जोड़ना है।

परमार्थी साहित्य में दृष्टान्त दिया गया है कि शरीर रथ के समान है, मन घोड़ों के समान है और आत्मा रथवान की तरह है। रथ और घोड़े रथवान पर निर्भर हैं, पर रथवान की एक आज़ाद हस्ती भी है। इस समय रथवान इतनी बुरी तरह रथ और घोड़ों से बँध चुका है कि वह रथ में से बाहर निकलने की और अपनी अलग हस्ती क़ायम करने की विधि भूल गया है। बाबा फ़रीद ही नहीं, संसार के सभी कामिल फ़क़ीरों के समूचे उपदेश का सार यही है कि आत्मा को जड़ शरीर, मन और इन्द्रियों से अलग करके ही परमात्मा से जोड़ा जा सकता है और आत्मा को मन-इन्द्रियों से अलग करके परमात्मा में लीन करना ही मनुष्य-जन्म का मूल उद्देश्य है। बाबा फ़रीद के दादा गुरु ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती संकेत करते हैं:

अगर तू ख़ुदा का जलवा देखना चाहता है तो अपने वजूद से आगे गुज़र क्योंकि तेरे अपने सिवाय 'तेरे और ख़ुदा के दरमियान' कोई और परदा नहीं है।

तू जिस्म के छिलके से आगे गुज़र कर रूह के सार-पदार्थ को देख क्योंकि इस जौहर के सिवाय कोई और किताब (भेद) नहीं है।* आप समझा रहे हैं कि आत्मा अगर शरीर, इन्द्रियों और मन का पर्दा हटा दे तो इसका एकदम परमात्मा से मिलाप हो जाये। यही भाव बाबा फ़रीद ने 'आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ' द्वारा प्रकट करने का यत्न किया है।

---

* शुहूदे-हक़्क़ तलबी अज़ वजूदे-ख़ुद बगुज़र। किह् जुज़ वजूदे-तू ऊ रा हिजाब दीगर नीस्त। ज़ि किशरे-तन बगुज़र दर लुबाबे-जां ब-निगर। दर आं लुबाबे-अजब गर किताबे-दीगर नीस्त।[26]

दो कविताएँ

वर्तमान युग में गुरुमत के व्याख्याकार कवि भाई वीर सिंह ने इस विषय के सम्बन्ध में दो सुन्दर कविताएँ लिखी हैं। आप एक कविता में कहते हैं:

साबन ला ला धोता कोला दुध दही विच पाया।
खुंब चाढ़ रंगन भी धरया रंग न ओस वटाया।
विछड़ के कालख सी आई बिन मिलयां नहीं लहंदी।
अंग अग्ग दे ला के देखो चढ़दा रूप सवाया।[27]

काले कोयले को चाहे कई बार साबुन से धोयें, चाहे दूध, दही में डाल दें, चाहे सज्जी डालकर धोबी की भट्ठी पर चढ़ा दें, वह काला ही रहता है। उसी कोयले को आग की भट्ठी में रख दिया जाये तो उसकी कालिमा एकदम दूर हो जाती है और वह जगमग जलने लगता है। आग से बिछुड़ने की कालिख, केवल आग के मिलाप से ही दूर हो सकती है।

कवि ने बाबा फ़रीद द्वारा प्रकट किये गए भाव 'काली कोइल तू कित गुन काली॥अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली' को ही अपने ढंग से प्रकट करने का यत्न किया है।

दूसरी कविता में कवि रात की शान्ति में बह रही एक नदी से पूछता है:

संझ होई परछावें छुप गये क्यों इच्छाबल तूं जारी?
नैं सरोद कर रही ओवें ही ते टुरनों बी नहिं हारी।
सैलानी ते पंछी माली हन सब अराम विच आऐ।
सहम छा रिहा सारे ते कुदरत टिक गई सारी।

हे नदी, इस समय सारी सृष्टि शान्त है। पशु-पक्षी, वृक्ष और इनसान सब आराम कर रहे हैं, पर तू अब भी बराबर बहती चली जा रही है। तू पल-भर भी बहना बन्द नहीं करती। इसका क्या कारण है? नदी उत्तर देती है:

सीने खिच जिनां ने खाधी, ओह कर अराम नहीं बहिंदे।
नेह वाले नैणा की नींदर, ओह दिने रात पये वहिंदे।
इको लगन लगी लई जांदी, है टोर अनन्त ओनां दी।
वसलों उरे मुकाम न कोई, सो चाल पये नित्त रहिंदे।[28]

यहाँ नदी आत्मा रूपी प्रेमिका का प्रतीक है और उसने परमात्मा रूपी सागर के साथ मिलाप करना है। सागर से मिले बिना नदी बेचैन रहती है और सदा बहती रहती है। इसी तरह जिस प्रेमिका के हृदय में प्रीतम का सच्चा प्यार है, जिसका हृदय प्रीतम से मिलाप के लिये तड़प रहा है, उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। उसकी मंज़िल प्रीतम से मिलाप है। इससे पहले उसके लिये आराम हराम है।

इस कविता में भी कवि ने अपने ढंग से बाबा फ़रीद द्वारा प्रकट किये गए भाव 'फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु' और 'जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु' को प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

एक ही उपदेश

सच्च बात तो यह है कि चाहे वेदों, उपनिषदों, बाइबिल या क़ुरान को पढ़ें या संसार में किसी समय या स्थान में हुए किसी भी कामिल दरवेश का कलाम पढ़ें, सभी ने अपनी-अपनी भाषा में परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा के विरह का वर्णन किया है और आत्मा को फिर प्रभु से मिलाप करने का सन्देश दिया है। हुज़ूर महाराज चरन सिंह जी समझाया करते थे कि चाहे इनसान को संसार के सभी सुख मिल जायें— सुन्दर पत्नी, नेक सन्तान, धन-दौलत और अनेक मान-बड़ाइयाँ प्राप्त हो जायें— फिर भी उसे अपने अन्दर कोई कमी महसूस होती रहती है। उसके अन्दर अकेलेपन का अहसास सदा बना रहता है। यह आत्मा के अपने असल से मिलाप के स्वाभाविक आकर्षण के कारण है। जब तक यह आकर्षण मिलाप में नहीं बदलता, आत्मा बेचैन रहती है। इसलिये बाबा फ़रीद ने विरह को सुलतान कहा है, 'बिरहा तू सुलतानु'। आत्मा के अन्दर परमात्मा की ओर से ख़ुद रखी गई अपने मिलाप की यह तड़प ही अन्त में उसके प्रभु से मिलाप का कारण बनती है। बाबा फ़रीद ही नहीं, संसार के सब कामिल दरवेशों ने रूह के अन्दर दबी हुई इस प्रीति को फिर से जाग्रत करने का प्रयत्न किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं:

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥[29]

परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा भी परमात्मा की तरह ही निर्मल, चेतन, अविनाशी और आनन्द-रूप है, पर मन और माया के बन्धनों में बँधी आत्मा की हालत पिंजरे में बन्द तोते और क़लन्दर की रस्सी से बँधे बन्दर जैसी हो गई है। चेतन आत्मा द्वारा जड़ शरीर, मन और इन्द्रियों का साथ लेने के कारण जड़ और चेतन की गाँठ बँध गई है। यह गाँठ झूठी है, परन्तु इसका खुलना कठिन है। इस गाँठ के कारण ही जीव मायावी संसार से बँध गया है। न यह गाँठ खुलती है और न ही जीव को सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। स्वामी शिवदयाल सिंह जी इस बारे में कहते हैं:

सुरत तू दुखी रहे हम जानी॥
जा दिन से तुम शब्द बिसारा। मन संग यारी ठानी॥
मन मूरख तन साथ बँधानी। इन्द्री स्वाद लुभानी॥
कुल परिवार सभी दुखदाई। इन संग रहत भुलानी॥
तू चेतन यह जड़ सब मिथ्या। क्यों कर मेल मिलानी॥
ताते चेत चलो यह औसर। नहिं भरमो तुम खानी॥[30]

आप इशारा करते हैं कि आत्मा के सब दुःखों का मूल कारण मन और इन्द्रियों की अधीनता है। मन और माया के बन्धन को तोड़े बिना आत्मा न अपनी असलियत पहचान सकती है और न ही अपने असल में समाकर सच्चे सुख को प्राप्त कर सकती है। साईं बुल्लेशाह ने क़ुरान शरीफ़ के हवाले से लिखा है:

1. लैसाफ़ीजंनती हाल बणाया, अश्रफ़ इनसान बणायो ई।[31]

ऐ इनसान, तुझे जन्नत (धुर दरगाह) में वापस पहुँचने के क़ाबिल बनाया गया है और सबसे उत्तम दर्जा दिया गया है।

2. वलकदकरमना याद करायो, लाइल्लाह दा परदा लाहयो।[32]

ऐ इनसान, देख, मैंने तेरा दर्जा कितना ऊँचा बनाया है, मेरे सिवाय और कोई ख़ुदा नहीं, तू सिर्फ़ मुझे अपने प्यार और इबादत के लायक़ समझ।

3. तू उस मकानों आया हैं, तू आदम बनके समाया हैं।[33]

आप समझाते हैं कि चाहे इस समय रूह इस मृत्युलोक में स्थूल शरीर में क़ैद है, पर इसमें अपने असल देश वापस पहुँचने और जिस कुल (अंशी) का यह जुज़ (अंश) है, उसमें वापस समाने का अपार सामर्थ्य मौजूद है। उस सर्वशक्तिमान का अंश होने के कारण इसकी हर इच्छा का पूर्ण होना पहले से तय है। ज्यों ही इसके अन्दर अपने असल से एक होने की तीव्र इच्छा पैदा होती है, इस इच्छा की पूर्ति का सामान ख़ुद-ब-ख़ुद तैयार हो जाता है।

बाबा फ़रीद ने 'काली कोइल तू कित गुन काली' से शुरू करके 'आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ' तक यह उपदेश दिया है कि इनसान ख़ुद की पहचान के ज़रिये ख़ुदा की पहचान करके ही ज़िन्दगी की बाज़ी जीत सकता है और परम सुख प्राप्त कर सकता है। मनुष्य-जन्म का असल उद्देश्य भी यही है। ख़ुदा को पाने से छोटी कोई भी इच्छा और इससे छोटा कोई भी मक़सद जीवात्मा को शोभा नहीं देता।

5. 'तू आंहो केहें कंमि'

फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहें कंमि॥[1]

बाबा फ़रीद पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि ख़ुदा से बिछुड़ी रूह केवल ख़ुदा से मिलकर ही सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकती है। आप यहाँ एक गूढ़ रहस्य खोल रहे हैं कि जिस कर्ता ने संसार की रचना की है उसने जीव को एक ख़ास उद्देश्य की पूर्ति के लिये संसार में भेजा है जिसकी पूर्ति के बिना मनुष्य जीवन व्यर्थ है। 'चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि'— आप जीव को सावधान करते हैं कि तूने दिन के चार पहर संसार की भाग-दौड़ में बिता दिये और रात के चार पहर खर्राटे भर कर। जब अन्त समय तेरा सृजनहार, जिसने तुझे संसार में भेजा है, तुझसे लेखा माँगेगा कि तुझे संसार में भेजा किस काम के लिये गया था और तू वहाँ करता क्या रहा, तब तुम क्या जवाब दोगे?

किसी सुलतान या हाकिम के हुक्म से विदेश में कोई ख़ास काम करने के लिये आया कारिन्दा, दिया गया काम भूल जाये तो वापस पहुँचने पर उसे मालिक की नाराज़गी उठानी पड़ती है और सज़ा भुगतनी पड़ती है। संसार का पूर्ण रूहानी सिद्धान्त इस मूल विचार के आसपास घूमता है कि मनुष्य मन-चाहे आदर्शों की पूर्ति के लिये जीवन व्यतीत करता है या अपने रचयिता द्वारा स्थापित किये गए आदर्श की पूर्ति के लिये। यही चेतावनी गुरु नानक साहिब देते हैं:

रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ॥
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ॥
नामु न जानिआ राम का। मूड़े फिरि पाछै पछुताहि रे॥[2]

'जिन्ही कंमी नाहि गुण'

फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि॥
मतु सरमिंदा थीवही सांई दै दरबारि॥[3]

'जिन्ही कंमी नाहि गुण'— ख़ुदा द्वारा सौंपे गए फ़र्ज़ के सिवाय हर काम गुण-रहित या व्यर्थ है। हम चाहे सारे संसार का राज्य प्राप्त कर लें, संसार के बड़े से बड़े राजा-महाराजा, सबसे बड़े दार्शनिक, विद्वान, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, कलाकार, दानी, लोक-सेवक क्यों न बन जायें, कुल मालिक की दरगाह में इसका कोई मूल्य नहीं। उस सच्ची दरगाह में इन प्राप्तियों का खोटा सिक्का नहीं चलता। वहाँ सिर्फ़ ख़ुदा के इश्क़ या ख़ुदा के नाम का सिक्का चलता है।

फरीदा दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि॥
मिसल फकीरां गाखड़ी सु पाईऐ पूर करंमि॥[4]

'दिलु रता इसु दुनी सिउ'— हमारा मन बुरी तरह दुनिया के रंग में रँगा हुआ है। हम दुनिया की सोहबत में रहते हुए निपट दुनियादार बनकर रह गये हैं। 'दुनी न कितै कंमि'— आप कहते हैं कि जिस दुनिया को तुमने अपना दीन-ईमान बनाया हुआ है, वह असल में तुम्हारे प्यार के क़ाबिल नहीं है। इस फ़ानी दुनिया की प्रीति में से किसी को न कभी सच्चा सुख मिला है और न ही मिल सकता है। आप कहते हैं कि अन्त समय यहाँ से कोई चीज़ साथ नहीं जायेगी और न ही संसार की कोई प्राप्ति सच्ची दरगाह में काम आयेगी। फ़क़ीरों की तरह ख़ुदा की इबादत का धन इकट्ठा करना कठिन कार्य है, परन्तु अन्त समय साथ चलने वाली और दरगाह में काम आनेवाली वस्तु केवल ख़ुदा का इश्क़, ख़ुदा की इबादत और ख़ुदा का नाम है।

कुछ गम्भीर प्रश्न

ऊपर दिये गए श्लोकों में आये वर्णन 'लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहों केहें कंमि', 'मतु सरमिंदा थीवही साईं दै दरबारि' और 'दुनी न कितै कंमि' हमारे सामने बहुत गम्भीर प्रश्न खड़े करते हैं। हम संसार में किस काम के लिये आए हैं? हम कौन-सा काम करें कि जब ख़ुदा के दरबार में लेखा माँगा जाये तो हमें शर्मिन्दा न होना पड़े और न ही सज़ा भुगतनी पड़े? अगर दुनिया और

इसके काम बेकार हैं तो काम की चीज़ कौन-सी है या हमारे करने लायक़ काम क्या है? बाबा फ़रीद द्वारा ऊपर प्रकट किये गए विचारों से संकेत मिलता है कि संसार में जीव की सफलता और असफलता इस बात पर निर्भर है कि वह परमात्मा द्वारा सौंपे गए कर्त्तव्य की पूर्ति को मुख्य रखता है या मनमर्ज़ी के अनुसार सांसारिक प्राप्तियों में जीवन व्यतीत कर देता है।

पहला दृष्टिकोण

संसार को देखने के दो दृष्टिकोण हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि संसार अपने आप बना है और अपने ही ज़ोर (momentum) से चल रहा है। इसका न कोई कर्ता है और न ही इस दृश्यमान स्थूल संसार से परे और ऊपर कोई सूक्ष्म आध्यात्मिक जगत है। ऐसे लोग इस दृश्यमान संसार के सुधार और इसमें सुख के अधिक से अधिक सामान पैदा करने पर बल देते हैं। वे कहते हैं कि हर व्यक्ति की रोटी, कपड़े और मकान की ज़रूरतें पूरी होनी चाहियें और उसकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति के अधिक से अधिक सामान तथा अधिक से अधिक अवसर पैदा किये जाने चाहियें।

दूसरा दृष्टिकोण

फरीदा मै जानिआ दुख मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि॥
ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि॥[5]

बाबा फ़रीद ख़बरदार करते हैं कि यह संसार दुःखों का घर है। न यह आज तक सुखों का नगर बन सका है और न आगे बन सकेगा।

'ऊचे चड़ि कै देखिआ' से कामिल दरवेशों की ऊँची रूहानी अवस्था का संकेत मिलता है। आम व्यक्ति की दृष्टि शरीर और दृश्यमान जगत तक ही सीमित है। कामिल दरवेशों की लिव अन्दर कुल मालिक से जुड़ी रहती है। वे त्रिलोकी से ऊपर उठकर इस रचना को इसके मूल रूप में देखते हैं। वे रचना के प्रारम्भ, रचना किये जाने के कारण, इसके संचालन में काम कर रहे नियमों, रचना में कार्यशील शक्तियों, मनुष्य जन्म के वास्तविक उद्देश्य आदि को समूचे रूप में देखते हैं। उस ऊँची और विशाल दृष्टि से उन्हें सारा संसार दुःखों की चक्की में पिस रहा दिखाई देता है। बाबा फ़रीद ने 'दुखु सबाइऐ जगि' और

गुरु नानक देव जी ने 'नानक दुखीआ सभु संसारु'[6] द्वारा संसार की असलियत बयान की है। कबीर साहिब कहते हैं:

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हूँ , सबका किया बिबेका हो॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
आसा तृस्ना सब को ब्यापै, कोई महल न सूना हो॥
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो।
कहैं कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो॥[7]

'आसा तृस्ना सब को ब्यापै'— सारा संसार आशा-तृष्णा की अग्नि में जल रहा है। हमारी जो भी इच्छा पूरी नहीं होती, वह हमें दुःखी कर देती है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥'[8] मनुष्य को त्रिलोकी का राज-पाट क्यों न मिल जाये तो भी उसके मन में तृप्ति नहीं आती। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं, 'इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ॥'[9] इनसान का वश चले तो सारी त्रिलोकी पर अधिकार करके बैठ जाये। जिस हृदय में तृष्णा की अग्नि सदा प्रचण्ड रहे, उसमें सच्ची शान्ति के लिये जगह कहाँ है?

यह संसार संघर्ष, विनाश और मृत्यु का अखाड़ा है। यहाँ व्यक्तियों, संगठनों, जातियों और क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों के झगड़े सदा चलते रहते हैं। यहाँ लूटमार, वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष, बीमारी और मौत का राज्य है। यहाँ एक की आबादी का महल दूसरे की बर्बादी के मलबे पर खड़ा होता है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है तो उससे बड़ी मछली उसे निगल जाती है। छोटे पक्षी कीड़े-मकोड़ों को खा जाते हैं और उन पक्षियों को बाज़ मार डालते हैं। भेड़-बकरियों को भेड़िये खा जाते हैं तथा भेड़िये, शेरों की ख़ुराक बन जाते हैं। मनुष्य सबको अपनी ख़ुराक बना लेता है। न धरती के जीव मौत के डर से आज़ाद हैं, न समुद्र के और न ही आकाश के। कामिल दरवेश समझाते हैं कि जिस संसार की नींव ही द्वैत, संघर्ष, ईर्ष्या, विनाश और मौत

पर खड़ी है, उस जगत से सच्चे, स्थायी और पूर्ण सुख की आशा रखना भ्रम और अज्ञानता से अधिक कुछ नहीं। तो फिर सुख की तलाश कहाँ की जाये? सहजो बाई कहती हैं:

धनवन्ते सब ही दुखी, निर्धन हैं दुख रूप।
साध सुखी सहजो कहै, पायो भेद अनूप।[10]

तुलसी साहिब कहते हैं:

कोई तो तन मन दुखी, कोई चित्त उदास।
एक एक दुख सभन को, सुखी संत का दास॥[11]

पिछले अध्याय में 'आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ' के विषय पर प्रकाश डाला गया है। इस सन्दर्भ में कबीर साहिब ने 'संत सुखी मन जीती हो' का उपदेश दिया है। तुलसी साहिब ने 'सुखी संत का दास' और सहजोबाई ने 'साध सुखी सहजो कहै, पायो भेद अनूप' की बात कही है। इन सब पूर्ण सन्तों का असल भाव यह है कि इस दु:खों के नगर में सुख की आशा केवल वे ख़ुशकिस्मत जीव रख सकते हैं जो कामिल दरवेशों के उपदेश के अनुसार संसार में आने के असल परमार्थी उद्देश्य को समझते हैं और उसकी पूर्ति में सफल होते हैं।

सन्त-महात्मा यह समझाते हैं कि उस ख़ुदा ने इस जगत को ख़ुद अधूरा बनाया है क्योंकि विकास केवल अधूरी अवस्था में ही हो सकता है। अगर संसार पूर्ण होता तो न संसार के सुधार की ज़रूरत पड़ती और न ही जीव के विकास की। इसके अलावा विकास केवल विरोध में सम्भव है। जितना ताक़तवर पहलवान हमारे विरोध में खड़ा होता है, हम उतना अधिक ताक़तवर बनने की कोशिश करते हैं। परमात्मा ने काल (शैतान), माया, विषय-विकार, आशा-तृष्णा आदि जो ताक़तें जीवात्मा के विरुद्ध खड़ी की हैं, जीवात्मा के रूहानी विकास के लिये की हैं। उस सर्वशक्तिमान का अंश होने के कारण, आत्मा में अथाह शक्ति मौजूद है। मन और माया के बन्धन तथा किये हुए कर्मों के प्रभाव के कारण यह शक्ति दबी हुई है, पर जैसे-जैसे जीव अपनी लिव अन्तर में प्रभु से जोड़ता है, इसके अन्दर दबी या सोई हुई शक्ति जाग्रत होती

जाती है। धीरे-धीरे जीव सब विरोधी शक्तियों को जीत कर उस सर्वशक्तिमान परमात्मा में समा जाता है और उसकी तरह ही शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, प्रेम-रूप और आनन्द-रूप हो जाता है।

बाबा फ़रीद और दूसरे सन्त-महात्मा समझाते हैं कि परमात्मा में समाकर अपूर्ण से पूर्ण होना, अज्ञानी से ज्ञानी बनना, सीमित से असीम बनना, शक्तिहीन न होकर सर्वशक्तिमान हो जाना, हर तरह के दु:खों और चिन्ताओं से मुक्त होकर आनन्दस्वरूप बन जाना ही मनुष्य जन्म का वास्तविक उद्देश्य है और यह उद्देश्य परमात्मा के साथ मिलाप करके ही पूरा हो सकता है।

चुनाव की स्वतन्त्रता

मनुष्य ऊपर लिखे दोनों दृष्टिकोणों में से कोई भी दृष्टिकोण अपनाने के लिये स्वतन्त्र है। चुनाव की आज़ादी है, पर जो व्यक्ति सन्तों-महात्माओं में विश्वास रखकर संसार को परमात्मा की रचना मानता है, बाबा फ़रीद उसे साथ ही यह बात दृढ़ कर लेने की प्रेरणा देते हैं कि जीवात्मा की वास्तविक भलाई उसके सृजनहार द्वारा सौंपे गए फ़र्ज़ को पूरा करने में है, न कि मनमर्ज़ी के धन्धे करने में। यदि जीव अपने असली फ़र्ज़ का पालन नहीं करता तो उसका प्रभु में विश्वास रखना और उसे संसार का रचयिता मानना, अमली तौर पर कोई मायने नहीं रखता।

बाबा फ़रीद, गुरु नानक देव आदि गुरुओं-पीरों ने अपने कलाम में सबसे ज़्यादा ज़ोर मनुष्य को यह मूल समस्या समझाने पर दिया है। वे मनुष्य को 'अचेत', 'ग़ाफ़िल', 'अज्ञानी', 'बावरा', 'मूढ़' आदि कहकर चेतावनी देते हैं कि जिन चीज़ों और कामों को वह इस समय जीवन का आदि, मध्य और अन्त समझ रहा है, परमार्थ की दृष्टि से उनकी कोई क़ीमत नहीं है। जिन धन्धों में वह व्यस्त है और जिन शक्लों-पदार्थों से वह बुरी तरह बँधा हुआ है, वह परमात्मा की तरफ़ से सौंपे गये कर्त्तव्य की पूर्ति की दृष्टि से बिलकुल निर्मूल और निरर्थक हैं।

इस पूरी चर्चा की पृष्ठभूमि में बाबा फ़रीद द्वारा दुनिया के वर्णन के लिये कही गई कुछ बातों को ध्यानपूर्वक समझने की ज़रूरत है।

'कलर केरी छपड़ी'

कलर केरी छपड़ी आइ उलथे हंझ॥
चिंजू बोड़न्हि ना पीवहि उडण संदी डंझ॥[12]

'कलर केरी छपड़ी'– बाबा फ़रीद कहते हैं कि यह संसार कल्लर (बंजर) की छप्परी के समान है। कल्लर में बोये बीज से कभी फ़सल नहीं मिलती। 'छपड़ी' गन्दी होती है। 'छपड़ी' में स्नान करने पर पहले से अधिक गन्दे हो सकते हैं, साफ़ नहीं हो सकते। आपका मतलब यह है कि इस संसार से न किसी को कभी कुछ मिला है, न मिल ही सकता है। संसार मन, माया और विषयों-विकारों की छप्परी के समान है। जीव इसमें जितना अधिक डूबता है, उतना अधिक गन्दा होता जाता है। वह यहाँ पिछले कर्मों की मलिनता को धोने के लिये आता है, पर इन्द्रियों के भोगों में लिप्त होकर और अधिक गन्दा होता जाता है।

हंसु उडरि कोध्रै पइआ लोकु विडारणि जाइ॥
गहिला लोकु न जाणदा हंसु न कोध्रा खाइ॥[13]

इस प्रसंग में केवल यह भाग विचार की माँग करता है, 'हंसु उडरि कोध्रै पइआ'– बाबा फ़रीद कहते हैं कि यह संसार कोधरे के खेत के समान है। कोधरा एक ऐसा अनाज है, जिसे खाने के क़ाबिल नहीं समझा जाता। भाव यह कि इस मायावी जगत में ऐसे उत्तम पदार्थ की आशा नहीं की जा सकती जो आत्मा का भोजन बन सके। गुरु नानक साहिब चेतावनी देते हैं, 'कलरि खेती बीजीऐ किउ लाहा पावै॥'[14] बाबा फ़रीद कहते हैं:

किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि॥
सांईं मेरै चंगा कीता नाही त हं भी दझां आहि॥[15]

'दुनीआ गुझी भाहि'– दुनिया छिपी हुई (गुझी) आग है। जो आग नज़र आ रही हो उससे बचाव आसान होता है। दुनिया बाहर से देखने में तो ठण्डी और मीठी लगती है, पर अन्दर से ज़हरीली आग के समान है। हमें इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों की लज़्ज़तें बहुत मीठी लगती हैं। संसार के नाटक, राग-रंग, तमाशे हमारे मन को आकर्षित करते हैं। हम दुनियावी मान-बड़ाइयों, पदवियों और प्राप्तियों के पीछे बावले हुए फिरते हैं। क़ौमों,

मज़हबों, मुल्कों की हुकूमत हमारे मन को आकर्षित करती हैं, पर ये सब हमें हमारी परमार्थी मंज़िल से दूर ले जाते हैं। ये चीज़ें मीठे ज़हर या दोस्ती के पर्दे में छिपी दुश्मनी का असर रखती हैं।

'फरीदा ए विसु गंदला'

फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि॥
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि॥[16]

आप सावधान करते हैं कि सांसारिक पदार्थ और इन्द्रियों के भोग बाहर से शक्कर की तरह मीठे लगते हैं, पर इनका असर ज़हरीला होता है। दुनियादार ख़ुशी-ख़ुशी इन्द्रियों के भोगों की ओर दौड़ते हैं जब कि असल में ये भोग उनके रूहानी विनाश का कारण सिद्ध होते हैं। अफ़सोस, दुनिया के लोग फिर भी सदा संसार और इसके पदार्थों के विनाशकारी व्यापार में लगे रहते हैं! 'इकि राहेदे रहि गए'– सभी लोग ज़हरीली बेलें बोने में ही अपनी ज़िन्दगी के दिन बर्बाद किये जा रहे हैं। 'इकि राधी गए उजाड़ि'– कुछ लोग बोई हुई खेती भी नष्ट कर जाते हैं यानी वे अपने पिछले जन्मों के नेक अमलों की जो पूँजी साथ लाते हैं, उसे भी इन्द्रियों के भोगों और ऐशो-इशरत में बर्बाद कर देते हैं।

देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥
सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु॥[17]

'सकर होई विसु'– इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है कि किसी चीज़ का स्वाद शक्कर जैसा मीठा हो, पर असर ज़हर जैसा विनाशकारी! 'सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु'– इस ख़तरनाक संकट से वह मालिक ही बचाये तो बचाये।

बाबा फ़रीद ने 'गुझी भाहि', 'विसु गंदला' और 'सकर होई विसु' द्वारा जीव को इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों की विनाशकारी असलियत के बारे में सावधान करने का यत्न किया है। विषयों-विकारों की लज़्ज़तें और इन्द्रियों के भोग हमारे मन को ख़ूब आकर्षित करते हैं, पर अन्त में वे हमारे शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक विनाश का कारण सिद्ध होते हैं। हम सोचते हैं कि हम भोगों को भोगते हैं, पर असल में भोग हमें भोगते हैं। हम समझते हैं कि हम शराब पीते हैं, जब कि वास्तव में शराब हमें पी जाती

है। अपनी ओर से हम अफ़ीम खाते हैं, पर असल में अफ़ीम हमें खा जाती है। 'बहु सादहु दूखु परापति होवै। भोगहु रोग सु अंति विगोवै। हरखहु सोगु न मिटई कबहू विणु भाणे भरमाइदा'॥[18] जितने अधिक भोग, उतने अधिक रोग, जितनी अधिक ऐशो-इशरत, उतनी अधिक रोगों और दुःखों की मार और उतना ही अधिक नैतिक, मानसिक और रूहानी पतन। स्पष्ट है कि संसार माया के मीठे ज़हर की ख़तरनाक खेल है।

'हथु न लाइ कसुंभड़ै'

बाबा फ़रीद कहते हैं, 'हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला॥'[19] हे प्यारे (ढोला), कसुंभड़े को हाथ मत लगाना, नहीं तो हाथ जल जायेंगे। कसुंभड़े के फूल देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं, पर ये जल्दी ही मुरझा जाते हैं और इनको हाथ लगाने से हाथों में जलन होती है। आप सावधान करते हैं कि संसार कसुंभड़े का खेत है। इसकी दिखाई दे रही सुन्दरता और आन्तरिक असलियत में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। साईं बुल्लेशाह का कलाम है:

मैं कसुंभड़ा चुण चुण हारी।
इस कसुंभड़े दे कंडे भलेरे अड़ अड़ चुनरी पाड़ी।[20]

कसुंभड़े के फूल देखने में बहुत सुन्दर और चमकीले लगते हैं, पर न उनका रंग पक्का होता है और न ही उनका असर सुखदायक होता है। आम सन्तों-महात्माओं ने मायावी संसार की कसुंभड़े के बाग़ से तुलना करके यह समझाने का यत्न किया है कि इस जगत की बाहरी चमक-दमक देखकर गुमराह नहीं होना चाहिये, इसकी आन्तरिक असलियत को समझने की कोशिश करनी चाहिये ताकि हम संसार के मोह को त्यागकर, परमात्मा के प्रेम में दृढ़ हो सकें।

फरीदा भूमि रंगावली मंझि विसूला बाग॥
जो जन पीरि निवाजिआ तिंन्हा अंच न लाग॥[21]

बाबा फ़रीद के श्लोकों के साथ दर्ज इस श्लोक में गुरु अर्जुन देव जी समझाते हैं कि इस संसार में ध्यानपूर्वक चलना चाहिये। 'भूमि रंगावली'– यह संसार देखने में बहुत सुन्दर और सुहावना प्रतीत होता है; 'मंझि विसूला बाग'– जब कि अन्दर से यह ज़हर से भरा हुआ है। 'जो जन पीरि निवाजिआ'–

जिस व्यक्ति ने किसी कामिल फ़क़ीर का सहारा लिया हुआ है, जिसने किसी पूर्ण सन्त की शरण प्राप्त करके उसके उपदेश के अनुसार अपनी लिव अन्दर ख़ुदा से जोड़ रखी है, उस पर दुनिया की ज़हरीली आग का कोई असर नहीं होता, जब कि बाक़ी सब बुरी तरह इस ज़हरीली आग में जल जाते हैं।

फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोणु॥
अगै गए सिंञापसनि चोटां खासी कउणु॥[22]

'इकना आटा अगला'– कुछ लोगों के पास सांसारिक वस्तुओं और पदार्थों की भरमार है। उन्हें ऐशो-इशरत के अनेक साधन प्राप्त हैं। 'इकना नाही लोणु'– कुछ लोगों को छत्तीस प्रकार के भोजन प्राप्त हैं तो कुछ लोग रूखी-सूखी रोटी और प्याज़ और अचार के लिये तरसते हैं। 'अगै गए सिंञापसनि चोटां खासी कउणु'– आप सावधान करते हैं कि चाहे कुछ लोग इस समय ठगी, बेईमानी और ज़ोर-ज़बरदस्ती के सहारे मौज उड़ा रहे हैं, पर जिस समय ख़ुदा की दरगाह में लेखा देना पड़ेगा और यमदूतों की मार खानी पड़ेगी, उस समय पता चलेगा कि ये चीज़ें सुख का कारण थी कि दुःख का। गुरु अर्जुन देव जी चेतावनी देते हैं:

दिनु राति कमाइअड़ो सो आइओ माथै॥
जिसु पासि लुकाइदड़ो सो वेखी साथै॥
संगि देखै करणहारा काइ पापु कमाईऐ॥
सुक्रितु कीजै नामु लीजे नरकि मूलि न जाईऐ॥[23]

बाबा फ़रीद ने भी यही बात समझाई है कि संसार में ख़ुदा की बन्दगी वाला नेक जीवन बिताना चाहिये। ऐसी तंगी की ज़िन्दगी, उस कुकर्मों भरी ऐशो-इशरत की ज़िन्दगी से लाख दर्जे बेहतर है, जो आख़िर में इनसान के नरक में पहुँचने का कारण बन जाती है।

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए॥
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए॥[24]

'कोठे मंडप माड़ीआ' आदि दुनियावी सुखों की बुलन्दी की ओर इशारा करते हैं। ये सिर्फ़ राजा-महाराजा को ही नसीब होते हैं। आम लोग दूसरों के

महल-बंगले देखकर आहें भरते हैं और ख़ुद इनके सपने देखते नहीं थकते। बाबा फ़रीद होशियार करते हैं कि तुम सोच कर देखो कि क्या आख़िरी वक़्त ये महल-बंगले, हाट-हवेलियाँ और ज़मीनें-जायदादें तुम्हारे साथ जायेंगी? क्या ये ख़ुदा की दरगाह में तुम्हारे हक़ में गवाही देंगी? 'सो धनु संचहु जो चालै नाले॥'[25] सच्चा धन या सच्चा सौदा वह है, जो लोक और परलोक दोनों में सुख और शोभा का कारण बने। लोक-परलोक दोनों में ख़्वारी का कारण बननेवाली चीज़ का व्यापार बेशक झूठा सौदा (कूड़ा सौदा) इकट्ठा करना है।

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु॥
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु॥[26]

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि भले इनसान! तुम अपने मन को महलों, कोठियों वग़ैरह से निकालो। तुम्हें महल, हवेलियाँ आदि बहुत ख़ूबसूरत, आरामदेह और मन को आकर्षित प्रतीत होते हैं, लेकिन ज़रा इनकी असलियत को समझने की कोशिश करो। आप झूठी और फ़ानी चीज़ों में से ध्यान को निकालने और चलते समय साथ जानेवाली सार-वस्तु की ओर ध्यान देने का सुझाव देते हैं। आप सावधान करते हैं:

फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि॥
जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि॥[27]

जो इनसान रात भर खर्राटे भर कर गुज़ार देता है और ख़ुदा की बन्दगी की ओर ध्यान नहीं देता, वह ज़िन्दगी की बाज़ी जीतने और जीते-जी ख़ुदा का विसाल करने की उम्मीद नहीं रख सकता। ऐसा शख़्स कहने को तो ज़िन्दा है, पर असल में मुर्दे के समान है—'जीवदड़ो मुइओहि'। वह दुनिया में आया या न आया, एक जैसा ही है। उसका जीवन व्यर्थ चला गया। आप सावधान करते हैं, 'जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि'। कबूतर आँखें बन्द कर ले तो इसका अर्थ यह नहीं कि बिल्ली उस पर नहीं झपटेगी। अगर इनसान अपना वक़्त फ़ज़ूल के धन्धों में ज़ाया कर दे और कुल मालिक की ओर से आँखें मूँद ले तो इसका यह मतलब नहीं कि आख़िरी वक़्त ख़ुदा भी उसकी ओर से आँखें मूँद लेगा। ख़ुदा उससे हर साँस का हिसाब माँगेगा। इस ताड़ना का असल उद्देश्य भी जीव को ख़ुदा की इबादत के लिये प्रेरित करना है।

'जो सिरु सांई ना निवै'

1. उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि॥
   जो सिरु सांई ना निवै सो सिरु कपि उतारि॥[28]
2. जो सिरु साई ना निवै सो सिरु कीजै कांइ॥
   कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ॥[29]

आप यहाँ तक कहते हैं कि जो सिर अमृत वेला में कुल मालिक की याद में नहीं झुकता, वह सिर काट देने के क़ाबिल है, बल्कि ऐसा सिर ईंधन की तरह जला देने के लायक़ है। मतलब यहाँ भी यही है कि ख़ुदा की इबादत के बिना ज़िन्दगी बेमानी (व्यर्थ) है।

फरीदा बे निवाजा कुतिआ एह न भली रीति॥
कबही चलि न आइआ पंजे वखत मसीति॥[30]

बाबा फ़रीद ख़ुदा की इबादत से ख़ाली इनसान को अभागा कुत्ता (बे निवाजा कुतिआ) कहकर उसका तिरस्कार करते हैं। 'पंजे वखत मसीति' से आपका रूहानी मतलब यही है कि इनसान को चाहिये कि ख़ुदा की इबादत को अपनी ज़िन्दगी का सबसे ज़रूरी हिस्सा बना ले।

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥[31]

आप ख़बरदार करते हैं कि जिन नासमझ इनसानों ने कुल मालिक या उसके नाम को भुलाया हुआ है, वे बहुत बदकिस्मत और मनहूस हैं। वे तिरस्कार के योग्य हैं। वे अपना लोक और परलोक दोनों बिगाड़ लेते हैं। उनको न इस लोक में सहारा मिलता है, न अगले लोक में। वे यहाँ भी सच्चे सुख से ख़ाली रहते हैं और आगे जाकर भी नरकों की आग में जलते हैं।

1. फरीदा राति कथूरी वंडीऐ सुतिआ मिलै न भाउ॥
   जिंन्हा नैण नींद्रावले तिंन्हा मिलणु कुआउ॥[32]
2. पहिलै पहरै फुलड़ा फलु भी पछा राति॥
   जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति॥[33]

पहले देख चुके हैं कि जो लोग रात के पहले पहर जागकर ख़ुदा की बन्दगी नहीं करते, बाबा फ़रीद के अनुसार वह मुर्दा हैं। यहाँ समझा रहे हैं,

'राति कथूरी वंडीऐ'— रात के पिछले पहर ख़ुदा की दरगाह से रहमत की बौछार होती है। 'सुतिआ मिलै न भाउ'—'भाउ' का अर्थ है भाग या हिस्सा। उस रहमत में से उन ख़ुशकिस्मत जीवों को हिस्सा मिलता है जिन्होंने उस समय अन्तर में लिव जोड़ रखी हो। जो लोग उस समय ख़ुदा की भक्ति या नाम की कमाई में लगे होते हैं, उनकी झोली इलाही रहमतों से भर जाती है। 'जिंन्हा नैण नींद्रावले तिंन्हा मिलणु कुआउ'— जिनकी आँखों में उस समय नींद की मस्ती छाई रहती है, उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता।

'जो सैतानि वंञाइआ'

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित॥
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥[34]

'फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित'—बाबा फ़रीद अफ़सोस ज़ाहिर करते हैं कि कुल मालिक के दरवेश और सन्त-महात्मा इनसान को ख़ुदा की बन्दगी की राह पर लाने की बहुत कोशिश करते हैं, पर इनसान इस क़द्र शैतान या काल के वश में हैं कि वे उनकी नसीहत की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते।

शैतान (काल) या नफ़्स (मन) भी कुल मालिक का बनाया हुआ है। यह जीव को ख़ुदा के सच्चे इश्क़ की ओर से मोड़कर झूठी दुनिया की फ़ानी शक्लों और पदार्थों के मोह में फँसाता है। यह आत्मा को ऊपर से नीचे और अन्दर से बाहर लाकर इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों की ओर जाने के लिये प्रेरित करता है। यह जीव से तरह-तरह के कर्म करवाकर उसे आवागमन के चक्र से बाँध देता है और ख़ुद ही धर्मराय का रूप धारण करके जीव को संसार में किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिये मजबूर करता है जिसके कारण जीव हमेशा चौरासी के जेलख़ाने में ही क़ैद रहता है। यही जीव के अन्दर द्वैत, हौमै, मैं-मेरी आदि पैदा करके उसे क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों, जाति-पाँति आदि के अनेक प्रकार के झगड़ों में उलझाये रखता है। यही परमात्मा द्वारा अपने साथ मिलने के लिये स्वीकार की गई अन्तर्मुख सच्ची भक्ति की बजाय संसार में अनेक प्रकार की बाहरमुखी भक्तियाँ जारी करके जीवों को प्रभु से दूर रखने का प्रपंच रचता है। बाबा फ़रीद अफ़सोस प्रकट करते हैं कि दुनिया के लोग

ऐसी खोटी बुद्धि वाले हैं कि वे मालिक के भक्तों की बात नहीं सुनते, जो उनके असल हितैषी हैं, पर मन या काल के बहकावे में आकर अपना जन्म बर्बाद कर लेते हैं।

'अलह सेती रतिआ'

फरीदा कंतु रंगावला वडा वेमुहताजु॥
अलह सेती रतिआ एहु सचावां साजु॥[35]

'सचावां साजु'— आप पिछले कई श्लोकों में झूठे सौदे का ज़िक्र कर चुके हैं। यहाँ सच्चे सौदे, सच्चे सामान, सच्चे पदार्थ की ओर इशारा कर रहे हैं। सिर्फ़ ख़ुदा का इश्क़, ख़ुदा की बन्दगी और ख़ुदा का विसाल ही सच्चा सौदा, सच्चा सामान या सच्चा शृंगार है, बाक़ी जो कुछ है सब झूठा या फ़ना है। लोक-परलोक में मदद देनेवाली और जीवात्मा को झूठे संसार से आज़ाद करके सच्चे ख़ुदा से मिलानेवाली सिर्फ़ एक ही चीज़ ख़ुदा का इश्क़ या ख़ुदा की बन्दगी है। इसलिये उस ख़ुदा की इबादत के रंग में रँग जाना ही एकमात्र सच्चा पहरावा और पवित्र शृंगार है। इकट्ठा करने योग्य केवल यही सच्चा धन और सार-पदार्थ है। परमात्मा की भक्ति करनेवालों का जीवन सफल हो जाता है। वे कुल मालिक के प्रेम के रंग में रँग जाते हैं। उनके रोम-रोम से नाम की सुगन्ध निकलती है। ऐसे लोग धन्य हैं। वे प्रभु की प्रसन्नता के पात्र बन जाते हैं, उन्हें लोक और परलोक दोनों में सच्चा आनन्द और सच्चा सम्मान प्राप्त होता है।

6. 'वसी रबु हिआलीऐ'

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ॥
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ॥[1]

मनुष्य जन्म का मूल उद्देश्य ख़ुदा से मिलाप करना है क्योंकि जब तक रूह वापस जाकर ख़ुदा में नहीं समा जाती, इसे सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। रूह ख़ुदा की तलाश कहाँ करे? बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं:

1. 'वसी रबु हिआलीऐ'— वह ख़ुदा हमारे अन्दर बसता है। वह जिसे मिला है, अन्दर ही मिला है और जिसे मिलेगा, अन्दर ही मिलेगा। वह बाहर न किसी को मिला है और न किसी को मिल ही सकता है।
2. 'जंगलु किआ ढूढेहि'—अन्दर रहनेवाले ख़ुदा की तलाश में बाहर जंगलों-पहाड़ों, वीरानों वग़ैरह में भटकना फ़ज़ूल है।
3. 'वणि कंडा मोड़ेहि'— जंगलों में जाकर पैरों में काँटे तो चुभ सकते हैं, ख़ुदा नहीं मिल सकता यानी बाहरी तलाश में दुःख और भटकन के सिवाय कुछ हासिल नहीं होगा।

फरीदा सोई सरवरु ढूढि लहु जिथहु लभी वथु ॥
छपड़ि ढूढै किआ होवै चिकड़ि डुबै हथु ॥[2]

आप समझाते हैं कि तुम उस सरोवर (सरवरु) में से ख़ुदा या उसके नाम की सार-वस्तु (वथु) ढूँढने की कोशिश करो, जहाँ वह वस्तु असल में है। 'चिकड़ि डुबै हथु'—आप सावधान करते हैं कि शरीर रूपी सच्चे सरोवर में से ख़ुदा और उसके नाम की तलाश करने की बजाय, बाहर मायावी संसार रूपी छप्परी में उसकी तलाश करोगे, तो हाथ कीचड़ से गन्दे हो जायेंगे, मगर मिलेगा कुछ भी नहीं।

'अंदरि पिरी निहालि'

तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि ॥
पैरी थकां सिरि जुलां जे मूं पिरी मिलंन्हि ॥[3]

आप कहते हैं कि मैं अपना शरीर तंदूर की तरह तपाने और हड्डियों को ईंधन की तरह जलाने के लिये तैयार हूँ,अगर ऐसा करने से मेरा अपने प्रीतम से मिलाप हो जाये और यदि मैं प्यारे की तलाश में पैरों से चलते-चलते थक जाऊँ तो सिर के बल चलना शुरू कर दूँगा। आपके इस श्लोक के साथ गुरु नानक साहिब का यह श्लोक दर्ज है:

तनु त तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि ॥
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि ॥[4]

गुरु साहिब बाबा फ़रीद के श्लोक का असल भाव समझाते हुए कहते हैं कि अन्दर बैठे प्रीतम की खोज के लिये न तो सिर, पैर या शरीर के दूसरे अंगों को दुःख देने की ज़रूरत है और न ही बाहर जंगलों, पहाड़ों, वीरानों आदि में भटकने की। ज़रूरत है तो सिर्फ़ ध्यान को अन्तर्मुख करने की। इससे अगले श्लोक में गुरु रामदास जी कहते हैं:

हउ ढूढेदी सजणा सजणु मैडे नालि ॥
नानक अलखु न लखीऐ गुरमुखि देइ दिखालि ॥[5]

जिस प्रीतम को जीवात्मा रूपी प्रेमिका बाहर जगह-जगह ढूँढ रही है, वह प्रीतम इन्द्रियों के स्तर पर अलख और अगम है। गुरु अर्जुन देव जी समझाते हैं, 'नानक से अखड़ीआं बिअंनि जिनी डिसंदो मा पिरी ॥'[6] उस परम सूक्ष्म और परम चेतन प्रभु को केवल आत्मा की आँखों द्वारा देखा जा सकता है। जिज्ञासु को आन्तरिक आँख खोलकर उस अलख प्रीतम को देखने का तरीक़ा कामिल मुर्शिद सिखाता है।

क़ुरान शरीफ़ में आया है, ''नहनु अक़रबु अलैही मिन हबलल वरीद।''[7] अर्थात् ख़ुदा शाहरग से निकट है। अपना ध्यान बाहरी जगत और शरीर के आँखों से निचले भाग से मोड़कर अन्दर आँखों के पीछे शाहरग या सुषम्ना में ले आओ तो तुम्हें तुम्हारे अन्दर ही ख़ुदा का नूर दिखाई देने लगेगा। इसलिये बाबा फ़रीद ख़ुदा के विसाल के चाहवान को सबसे पहली नसीहत यह करते

हैं कि बाहर की भटकन भरी तलाश को छोड़कर, अन्दर की सरल और क़ुदरती तलाश को अपनाओ। आप कहते हैं:

कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि॥
जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि॥[8]

'जितु पिंजरै मेरा सहु वसै'– यह शरीर रूह को क़ैद रखने के लिये बनाया गया हाड़-मांस का पिंजरा ही नहीं है, बल्कि इस पिंजरे के अन्दर उस सच्चे साईं, प्रीतम का निवास है। शरीर जिस तरह रूह का निवास-स्थान है, उसी तरह परमात्मा का भी निवास-स्थान है। दोनों एक ही घर में रहते हैं। दोनों एक-दूसरे के बहुत नज़दीक हैं। अगर ख़ुदा नज़र नहीं आता तो इसका यह मतलब नहीं कि वह बहुत दूर है। सिर्फ़ रूह को अन्दर बैठे महबूब से मिलने के तरीक़े का पता नहीं।

'सभना मै सचा धणी'

इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे॥[9]

क्या ख़ुदा किसी ख़ास धर्म, ख़ास जाति, ख़ास मुल्क के ख़ास लोगों के अन्दर रहता है? क्या ख़ुदा सिर्फ़ ताक़तवर, अमीर या नेक लोगों के अन्दर रहता है? क्या वह सिर्फ़ आलिमों, दार्शनिकों या दानिशमन्दों के अन्दर है? 'सभना मै सचा धणी'– उस कुल मालिक ने कभी हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, ईसाई, स्त्री-पुरुष, विद्वान-अनपढ़, नेक-बद, अमीर-ग़रीब वग़ैरह का फ़र्क़ नहीं किया। हर मज़हब, हर मुल्क, हर क़ौम का हर इनसान समान रूप से अपने अन्दर बैठे प्रीतम से मिलाप के क़ाबिल है। हज़रत सुलतान बाहू के अनुसार वह ख़ुदावंद करीम, सच्चा आबे-हयात और सच्चा काअबा भी अन्दर है। सच्चा सिजदा भी अन्दर करना चाहिये और सच्चा कलमा भी अन्दर ही पढ़ना और सुनना चाहिये:

1. एह तन रब्ब सच्चे दा हुजरा, विच पा फ़क़ीरा झाती हू।
   न कर मिन्नत ख़्वाज ख़िज़र दी, तैं अंदर आब हयाती हू।[10]
2. एह तन रब्ब सच्चे दा हुजरा, खिड़ीआं बाग़ बहारां हू।
   विच्चे कूज़े, विच मुसल्ले, विच सिजदे दियां ठारां हू।
   विच्चे काबा विच्चे क़िबला, इल-लिल्लाह पुकारां हू।[11]

साईं बुल्लेशाह फ़रमाते हैं, 'भुल्ली हीर ढूंढेदी बेले रांझण यार बुक्कल विच खेले'।[12] आप कहते हैं कि ख़ुदा हर इनसान के अन्दर छिपा हुआ है। जो कोई दरवेशों की हिदायत पर चलकर अन्दर उसकी तलाश करता है, वह मुक़ामे-हक़ में पहुँच जाता है, जो स्थायी सुख और शान्ति का स्थान है:

इक लाज़म बात अदब दी ए, सानूं बात मलूमी सभदी ए।
हर हर विच सूरत रब दी ए, किते ज़ाहर किते छिपेंदी ए।
जिस पाया भेद कलंदर दा, राह खोजया अपने अंदर दा।
ओह वासी है सुख मंदर दा, जित्थै चढ़दी ए न लैंहदी ए।[13]

'जोबन जांदे ना डरां'

जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ॥
फरीदा किंती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ॥[14]

बाबा फ़रीद कहते हैं कि मुझे जवानी के बीत जाने की फ़िक्र नहीं है; फ़िक्र है तो सिर्फ़ इस बात की कि कहीं ख़ुदा के लिये मेरी प्रीति न चली जाये भाव मनुष्य जन्म, जवानी और सुन्दरता तभी मुबारक हैं जब प्रभु रूपी प्रीतम के साथ मिलाप हो जाये। इस श्लोक को गुरु अर्जुन देव जी के इस श्लोक के साथ मिलाकर पढ़ते हैं:

फरीदा उमर सुहावड़ी संगि सुवंनड़ी देह॥
विरले केई पाईअनि जिंन्हा पिआरे नेह॥[15]

'सुवंनड़ी देह'– सुन्दर रंगोंवाली, ख़ूबसूरत देह। आप मनुष्य शरीर का महत्त्व बता रहे हैं कि मनुष्य शरीर बहुत सुन्दर है। 'उमर सुहावड़ी'– मनुष्य जन्म प्रभु से मिलाप का अनमोल अवसर है। 'विरले केई पाईअनि जिंन्हा पिआरे नेह'– आप इशारा करते हैं कि गिनती के भाग्यशाली जीव हैं जो मनुष्य जन्म का सदुपयोग करते हुए इसे उस प्रियतम से मिलाप का साधन बनाते हैं। आपका भाव यह है कि मनुष्य जन्म के अमूल्य अवसर को प्रभु की भक्ति द्वारा उसके साथ मिलाप के लिये काम में लाना चाहिये।

साईं बुल्लेशाह क़ुरान शरीफ़ की एक आयत के हवाले से कहते हैं, 'लैसाफ़ीजंनती हाल बणाया, अश्रफ़ इनसान बणायो ई।'[16] यानी ख़ुदा ने इनसान को धुर दरगाह में वापस पहुँचने के क़ाबिल बनाया है और उसे सबसे

ऊँचा दर्जा दिया है। हज़रत ईसा का कथन हैं, 'ख़ुदा ने इनसान को अपनी शक्ल में बनाया है।'* आपका भाव है कि कुल मालिक ने इनसान में अपने सभी गुण रखे हैं और केवल उसे अपने साथ मिलाप का अधिकार दिया है। बाबा फ़रीद इशारा करते हैं:

आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥
जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईऐ॥ झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ॥[18]

ख़ुदा अन्दर है और उससे आज और अभी मिलाप किया जा सकता है। कैसे? 'टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआं'—अगर मन को उकसाकर भोगों की ओर प्रवृत्त करनेवाली इन्द्रियों को वश में कर लिया जाये। आपका भाव है कि मन और इन्द्रियों के भोग रूह को खींचकर अन्दर से बाहर ले आते हैं जिसकी वजह से रूह अन्दर बैठे ख़ुदा का दीदार नहीं कर सकती।

'जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईऐ॥ झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ॥'—यदि जीव को यह इल्म हो जाये कि इनसान का जामा बार-बार नसीब नहीं होता और यह ख़ुदा की अमूल्य बख़्शिश है तो वह दुनिया और इसकी ऐशो-इशरत में खोने की बजाय अपनी तवज्जुह अन्दर ख़ुदा से जोड़ने की कोशिश करेगा। बाबा फ़रीद कहते हैं:

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥[19]

'आपु सवारहि मै मिलहि'—आप ऊपर कही गई बात को दूसरी तरह बयान करते हुए कहते हैं कि जब तक आत्मा मन और इन्द्रियों के अधीन है यह भोगों की वजह से मैली है। अगर यह मन और इन्द्रियों का साथ छोड़कर अपने आपको सँवारकर निर्मल हो जाये तो यह ख़ुदा से मिलकर सच्चा सुख हासिल कर सकेगी। आप यहाँ भी इसी बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि मन और इन्द्रियाँ जीव को ग़लत रास्ते पर डालकर उसे अपने सच्चे महबूब से दूर ले जाती हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित॥
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥[20]

---

* God created man in His own image.[17]

आप अफ़सोस करते हैं कि सन्त-महात्मा ऊँचे स्वर में जीवात्मा को मनुष्य जन्म का महत्त्व समझाते हैं और अल्लाह से मिलने की ताक़ीद करते हैं, पर जीव इस क़द्र शैतान या मन के चंगुल में फँस चुके हैं कि वे इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते और बार-बार बाहर की तरफ़ दौड़ते है, इसलिये अपने अन्दर बैठे महबूब से उनका मिलाप नहीं हो पाता और उनका मनुष्य जन्म व्यर्थ बर्बाद हो जाता है।

'सेई वेस करेउ'

फरीदा पाड़ि पटोला धज करी कंबलड़ी पहिरेउ॥
जिन्ही वेसी सहु मिलै सेई वेस करेउ॥[21]

परमात्मा अन्दर है, पर अन्दर बैठे परमात्मा से विसाल किस तरह किया जाये? बाबा फ़रीद कहते हैं कि मैं उससे विसाल के लिये दुनियादारों का रेशमी पहरावा छोड़कर वैरागियों जैसा लिबास पहनने के लिये भाव कोई भी तरीक़ा अपनाने के लिये तैयार हूँ। गुरु अमरदास जी आपके श्लोक का असल भाव समझाते हुए कहते हैं:

काइ पटोला पाड़ती कंबलड़ी पहिरेइ॥
नानक घर ही बैठिआ सहु मिलै जे नीअति रासि करेइ॥[22]

'जे नीअति रासि करेइ'—ख़ुदा की खोज और प्राप्ति का सम्बन्ध मन, वृत्ति या नीयत से है, एक तरह का भेष बदल कर दूसरी किस्म का भेष पहन लेने से या घर-बार को त्यागकर जंगलों-पहाड़ों में भटकने आदि से नहीं।

हम परमात्मा से मिलाप के लिये आम तौर पर क्या करते हैं? कुछ लोग एक धर्म को बदलकर दूसरे धर्म को अपनाने पर बल देते हैं। कुछ लोग घर-बाहर के त्याग की और कुछ अनेक किस्म के हठ-कर्मों की वकालत करते हैं। कुछ लोग लम्बे व्रत रखते हैं। कुछ लोग चलीहे (चालीस दिन का तप) करते हैं। कुछ लोग सालों एक पाँव पर खड़े होकर तप करते हैं। कुछ लोग अपने चारों ओर धूनी रमा लेते हैं। कुछ जटाएँ रख लेते हैं। कुछ लोग कान चिरवा लेते हैं और अन्य अनेक ख़ास किस्म के चिन्हों, भेषों या पहरावों पर ज़ोर देते हैं। 'नीअति रासि करेइ' द्वारा सन्त-महात्मा मनुष्य को सच्चे

परमार्थ का यह बुनियादी नुक़्ता समझाने का यत्न करते हैं कि प्रभु-प्राप्ति का सम्बन्ध किसी प्रकार के बाहरमुखी यत्न से नहीं, मनुष्य की नीयत या वृत्ति से है। मनुष्य की वृत्ति ही उसका धर्म है और उसकी वृत्ति ही उसकी सच्ची पहचान है। हम वहाँ होते हैं, जहाँ हमारा ध्यान होता है और हम वैसे होते हैं जैसी हमारी वृत्ति होती है। जो व्यक्ति घर-गृहस्थ का त्याग करके जंगलों-पहाड़ों पर चला गया है, अगर उसके मन में भोगों की लालसा है तो वह भोगी है, परमार्थी या त्यागी नहीं। जो व्यक्ति घर-गृहस्थी और परिवार की सब ज़िम्मेदारियाँ पूरी कर रहा है, परन्तु उसका ध्यान प्रभु की ओर है, तो वह सच्चा त्यागी है। कामिल दरवेशों ने ख़ुदा की याद को ही ख़ुदा की इबादत माना है। सारी रूहानियत ख़ुदा के ज़िक्र (सिमरन) के आधार पर खड़ी है। ख़ुदा को याद करना ही ख़ुदा का सिमरन है और ख़ुदा का सिमरन ही ख़ुदा की याद है। हम याद उसे करते हैं जिसको हम प्यार करते हैं और जिसको याद करते हैं, उसके साथ प्यार पैदा हो जाता है। इसलिये सन्त-महात्मा समझाते हैं कि 'घर ही बैठिआ सहु मिलै'— मन दुनिया के प्यार की जगह ख़ुदा के प्यार के रंग में रँग जाये तो घर बैठे ही ख़ुदा से मिलाप हो जाता है। दुनिया का प्रेम दुनिया से बाँधकर रखता है जब कि प्रभु का प्रेम प्रभु से मिला देता है।

बाबा फ़रीद के जीवन वृत्तान्त में देखा जा चुका है कि आप गृहस्थ महात्मा थे और आपकी सन्तान भी थी। आपने न ख़ुद किसी ख़ास भेष की परम्परा स्वीकार की और न ही अपने मुरीदों को कोई ख़ास लिबास पहनने के लिये कहा। आपने आम गृहस्थियों की तरह ज़िन्दगी बिताई। बाबा फ़रीद ने ख़ुद साफ़-सुथरे इख़लाक (निर्मल आचरण) और हक़-हलाल की कमाई के उसूल पर चलते हुए कुल मालिक की बन्दगी का अन्दरूनी रास्ता अपनाया और अपने मुरीदों को भी इस रास्ते पर चलने का तरीक़ा सिखाया।

'एह न भली रीति'

फरीदा बे निवाजा कुतिआ एह न भली रीति॥
कबही चलि न आइआ पंजे वखत मसीति॥[23]

'एह न भली रीति'— बाबा फ़रीद समझाते हैं कि तुम्हारा मौजूदा दुनियावी रहन-सहन का तरीक़ा सही नहीं है। तुम इस रीति या तरीक़े को बदलो। हम

जिस्म और दुनिया के प्यार, दोस्तों और रिश्तेदारों के प्यार और दुनिया के धन्धों में इस क़द्र खो चुके हैं कि ख़ुदा की ओर हमारा ध्यान बिलकुल नहीं है।

'फरीदा बे निवाजा कुतिआ'— आपने दुनियादार और मायावी वृत्ति वाले इनसान को 'बे निवाजा' कुत्ता कहा है। किसी को धिक्कारना हो तो उसे 'लावारिस कुत्ता' कहा जाता है। 'बे निवाजा कुत्ता' उस जीव की ओर इशारा करता है जो एक सच्चे मालिक का द्वार छोड़कर इस फ़रेबी दुनिया में दर-दर भटकता है। एक महात्मा के वचन हैं, 'जे कुत्ता दर दर फिरे, दर दर दुर दुर होय। जो इक दर का होय रहे, दुर दुर काहे होय॥'[24] इसलिये बाबा फ़रीद चेतावनी देते है कि तुम दर-दर भटकना छोड़ कर एक मालिक की शरण लो और अपना मन उसकी बन्दगी में लगाओ।

'कबही चलि न आइआ पंजे वखत मसीति'- आप एक अन्य श्लोक द्वारा सावधान करते हैं, 'फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥ लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहे कंमि॥'[25] आपका भाव है कि जिसके पास ख़ुदा की बन्दगी के लिये इतना समय भी नहीं कि वह कम से कम पाँच वक़्त की नमाज़ ही अदा कर ले, वह निपट संसारी, दुनियादार या मनमुख है, ख़ुदा का आशिक़ नहीं। उसे यह आदत या तरीक़ा बदलना चाहिये और कुल मालिक के सच्चे भक्तों का तरीक़ा अपनाना चाहिये, जो हरदम उसकी इबादत और याद में खोये रहते हैं।

'सुबह निवाज गुजारि'

उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि॥
जो सिरु सांई ना निवै सो सिरु कपि उतारि॥[26]

'उठु फरीदा'— आप नसीहत करते हैं कि ऐ भले इनसान, तूने सारी रात खर्राटे भरकर गुज़ार दी है, सुबह तो मालिक की इबादत के लिये उठ। 'उजू साजि'—'उजू', 'वुज़ू' का बदला हुआ रूप है जिसका अर्थ है पाँच स्नान। भारत में पानी की बहुतायत है, इसलिये भारतीय धर्मों में प्रातःकाल सावधान और सुचेत होकर प्रभु-भक्ति करने के लिये स्नान पर ज़ोर दिया गया है। अरब देशों में पानी की कमी है, इसलिये पंच-स्नान यानी हाथ, पाँव, मुँह

धोकर अल्लाह की इबादत में लगने के लिये कहा जाता है। पानी न मिलने की हालत में रेत से वुज़ू कर लिया जाता है। भाव तो सुस्ती दूर करने और सुचेत होकर मन को कुल मालिक की इबादत में लगाने का है। न वुज़ू अन्त है, न पूरा स्नान। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं, 'साध भले अण नातिआ चोर सि चोरा चोर॥'[27] निर्मल हृदय वाले व्यक्ति की बिना स्नान की गई भक्ति भी धन्य है, पर जिसकी नीयत साफ़ नहीं उस व्यक्ति का वुज़ू या स्नान भी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता। वुज़ू, स्नान, नमाज़ आदि का असल भाव और उद्देश्य मन को संसार की ओर से मोड़कर परमार्थ की ओर ले जाना है। ये साधन हैं, मंज़िल नहीं।

क़ब्र, अज़राईल और दोज़ख़

बाबा फ़रीद आदि सूफ़ी दरवेशों के कलाम में क़ब्र में दबाए जाने, नरकों में भेजे जाने और अज़राईल फ़रिश्ते आदि के बारे में संकेत मिलते हैं। जैसे:

1. फरीदा महल निसखण रहि गए वासा आइआ तलि॥
   गोरां से निमाणीआ बहसनि रूहां मलि॥
   आखीं सेखा बंदगी चलणु अजु कि कलि॥[28]

2. फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित॥
   जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥[29]

3. फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टुटी नागर लजु॥
   अजराईलु फरेसता कै घरि नाठी अजु॥[30]

वास्तव में ऐसे संकेतों का उद्देश्य मनुष्य को कर्म और उसके फल के नियम की अटलता समझाते हुए परमात्मा की भक्ति की तरफ़ मोड़ना है। पहले श्लोक में रूहों को मौत के बाद क़ब्रों के निवास का डर देकर क्या उपदेश दिया गया है? 'आखीं सेखा बंदगी चलणु अजु कि कलि'। दरवेश ख़ुदा की बन्दगी करने की हिदायत दे रहा है क्योंकि मौत तेज़ी से दौड़े चली आ रही है। कबीर साहिब चेतावनी देते हैं, 'हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास। सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास॥'[31] आप फ़रमाते हैं, 'लकड़ी कहै लुहार सों, तू मति जारैं मोहिं। एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं॥'[32]

कबीर साहिब ने मौत के बाद आग में जलाए जाने की याद दिलाकर जीव को प्रभु-भक्ति का सन्देश दिया है। मुहावरा इस्लामी हो या हिन्दू धर्म का, दोनों फ़क़ीरों—फ़रीद और कबीर—का असल मक़सद जीव को अज्ञानता की नींद से बेदार करना है।

अज़राईल फ़रिश्ते और दोज़ख़ का ज़िक्र बाबा फ़रीद ने ही नहीं, गुरु अर्जुन देव जी ने भी किया है:

पाप करेदड़ सरपर मुठे॥ अजराईलि फड़े फड़ि कुठे॥
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ॥[33]

अज़राईल हर जीव से किये हुए कर्मों का हिसाब माँगता है। वह पापी जीवों को ज़िबह करता और दोज़ख़ में भेजता है। इसके विपरीत:

खुदि खसम खलक जहान अलह मिहरवान खुदाइ॥
दिनसु रैणि जि तुधु अराधे सो किउ दोजकि जाइ॥
अजराईलु यारु बंदे जिसु तेरा आधारु॥
गुनह उस के सगल आफू तेरे जन देखहि दीदारु॥[34]

हे संसार के सृजनहार दयालु प्रभु, जो जीव दिन-रात तेरी भक्ति में मग्न रहता है वह दोज़ख़ में कैसे जा सकता है? जिस जीव ने तुझे अपना आधार बना लिया है, अज़राईल उसका मित्र बन जाता है, क्योंकि तेरा दीदार करनेवाले जीव के सब पापों का नाश हो जाता है।

न तो बाबा फ़रीद किसी ख़ास शरीअत का प्रचार कर रहे हैं और न ही गुरु अर्जुन देव जी। दोनों पूर्ण सन्त केवल इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि प्रभु-भक्ति से बेमुख प्राणी नरकों के दुःख भोगते हैं जब कि प्रभु के सच्चे भक्त प्रभु-प्राप्ति के सच्चे सुख के अधिकारी बन जाते हैं। उनका असल उद्देश्य जीव को परमार्थी बनाने का है।

सूफ़ी दरवेशों ने आम तौर पर रूहानी तरक़्क़ी को चार भागों (पड़ावों) में बाँटा है—शरीअत, तरीक़त, मार्फ़त और हक़ीक़त। सूफ़ी दरवेश साईं बुल्लेशाह का कलाम है:

शरीयत साडी माई है, तरीकत साडी दाई है।
अग्गों हक़्क़ हक़ीक़त आई है अते मार्फ़तों कुझ पाया है।[35]

शरीअत और तरीक़त मनुष्य के अन्दर रूहानी झुकाव और सदाचार के गुण पैदा करने के लिये हैं। बाबा फ़रीद ने अपने कलाम में सिर्फ़ पाँचों वक़्त नमाज़ गुज़ारने का ही नहीं, बुरे का भला करने, मन में गुस्सा न करने, सन्तोष से काम लेने, अपनी हक़-हलाल की कमाई बाँटकर खाने, सच्चे धर्म का पालन करने, ख़ुदा की रज़ा में राज़ी रहने आदि बहुत-से नेक अमलों पर भी ज़ोर दिया है, जिनके बारे में अगले अध्याय में विस्तार से विचार किया गया है। ये सब गुण तरीक़त यानी चरित्र की सफ़ाई का हिस्सा हैं।

मार्फ़त का अर्थ कामिल दरवेशों द्वारा बताये गए रूहानी आदर्श की निजी प्राप्ति है। इसे ज़ाती मुशाहदा या निजी अनुभव भी कहा जाता है।

निजी अभ्यास द्वारा अपनी रूह को ख़ुदा में जज़्ब करना, हक़ीक़त की अवस्था को प्राप्त करना है। मार्फ़त की अवस्था में अभ्यासी को अपने अन्दर कई रूहानी तर्जुबे (अनुभव) होते हैं, पर जब तक उसका ख़ुदा से विसाल नहीं हो जाता, उसका अभ्यास जारी रहता है। हर कामिल दरवेश अपने मुरीदों को मार्फ़त की सीढ़ी के ज़रिये हक़ीक़त की मंज़िल पर पहुँचाने की कोशिश करता है।

सब धर्मों के कर्मकाण्ड अलग-अलग हैं, पर नैतिक और रूहानी आधार सभी धर्मों का सांझा है। संसार के सभी धर्म सच, क्षमा, नम्रता, सेवा, त्याग, अहिंसा और आचरण की निर्मलता पर ज़ोर देते हैं। इसी प्रकार संसार के सभी कामिल दरवेश ख़ुदा के इश्क़ और अन्दरूनी रूहानी अभ्यास के ज़रिये रूह को ख़ुदा में जज़्ब करने की एक-सी हिदायत देते हैं। वे समझाते हैं कि जीव का असल भला शरीअत या तरीक़त तक अटके रहने में नहीं, निजी अभ्यास द्वारा रूह को ख़ुदा में लीन करने में है।

बाबा फ़रीद ने शरीअत से शुरू करके तरीक़त, मार्फ़त और हक़ीक़त की सीढ़ियाँ तय कीं। आप कहते हैं, 'जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥'[36] यानी ख़ुदा की बन्दगी से आपका ख़ुदा से मिलाप हो गया। आप उपदेश देते हैं कि शरीअत से फ़ायदा उठाते हुए, नेक और पाक रहनी को अपनाते हुए रूहानी साधना करके रूह को ख़ुदा में जज़्ब करने की कोशिश करनी चाहिये।

बाबा फ़रीद का जीवन

पुस्तक के आरम्भ में दिये गए बाबा फ़रीद के जीवन-वृत्तान्त को सामने रखा जाये तो ऊपर दी गई सभी बातों को बहुत आसानी से और अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

बाबा फ़रीद की पूरी ज़िन्दगी एक लम्बी नमाज़ थी। आपकी रूह एक बार अल्लाह-तआला के सिजदे में गई और सदा के लिये उसमें लीन हो गई।

बाबा फ़रीद ज़ुबान से बोले जानेवाले सिफ़ाती कलमे से शुरू होकर इस्मे-आज़म के हमेशा जारी रहनेवाले ज़ाती कलमे से जुड़ गए।

बाबा फ़रीद का जीवन एक लम्बा रोज़ा था, जिसकी शुरूआत रोज़ा-ए-शिक्म (पेट का व्रत) था और अन्त रोज़ा-ए-नफ़्स (मन का व्रत) था। आपने कभी खाने के लिये खाना नहीं खाया, सिर्फ़ इबादत के लिये रूखा-सूखा खाकर कनायत (सन्तोष) की और पूरी ज़िन्दगी नफ़्स रूपी कुत्ते के आगे विषयों का एक भी ग्रास नहीं फैंका।

बाबा फ़रीद ज़कात (दान) की मूर्ति थे। इस दरवेश ने अपना सबकुछ और अपने आपको ख़ुदा और उसकी ख़लकत की भेंट चढ़ा दिया।

बाबा फ़रीद बाहरी हज्ज पर न जा सके, पर आपका हर साँस ख़ुदा की हज़ूरी के हज्ज में गुज़रता था।

बाबा फ़रीद की क़ुरान शरीफ़ के प्रति श्रदा आन्तरिक थी, रस्मी नहीं। आप अपनी हर बात इस इलाही पुस्तक की आयतों की सहायता से समझाते और साथ ही कामिल सूफ़ी दरवेशों के जीवन और कलाम को भी अपने उपदेश का पूरक बनाते।

बाबा फ़रीद हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन को आदर्श जीवन स्वीकार करते हुए, बात-बात में उनकी ऊँची और पवित्र रहनी के उदाहरण देते थे। इसके साथ ही आपने अपने मुर्शिद की अमली रूहानी अगुवाई में निजी रूहानी अभ्यास द्वारा ख़ुद भी पूर्णता की प्राप्ति के लिये सफल प्रयास किया और शरीर त्यागने से पहले हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को अपना जानशीन बनाया क्योंकि आप अपने वक़्त के कामिल मुर्शिद की अमली अगुवाई को निजात का असल साधन मानते थे।

बाबा फ़रीद का जिहाद (धर्म युद्ध) भी निराला था। यह जिहाद बाहरी काफ़िरों के ख़िलाफ़ नहीं, अन्दर बैठे नफ़्स रूपी काफ़िर के ख़िलाफ़ था। बाबा फ़रीद की नज़र बाहरी फ़ानी हुकूमत पर नहीं, अन्दर की लाफ़ानी सलतनत पर थी। क़ुरान शरीफ़ में आता है, "ऐ मोमिनों, जब तुम्हारा दुश्मनों से सामना हो जाये तो मज़बूत क़दम रहो और बार-बार ख़ुदा को याद करो ताकि तुम जीत हासिल कर सको।"[37] सूफ़ी दरवेश इसके ये अर्थ करते हैं कि जब तुम पर नफ़्स (अन-नफ़्स-अल-अम्मारा) का हमला हो और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी दुश्मन रूह को घेर लें तो ख़ुदा के नाम के ज़िक्र के सहारे उन पर जीत हासिल करो। इसे ही अल-जिहाद-अल-असग़र (छोटे धर्म-युद्ध) से अल-जिहाद-अल-अकबर (बड़े धर्म-युद्ध) की ओर रुख़ करने का नाम दिया गया है। सूफ़ी दरवेश शेख़ शरफ़ुद्दीन कहते हैं कि हर तरह की बुराई की जड़ नफ़्स है। ग़ैर मुस्लिम लोगों या काफ़िरों से की गई जंग सच्चा जिहाद नहीं, नफ़्से-काफ़िर के खिलाफ़ लड़ी जंग ही सच्चा जिहाद है।*

हदीस में आता है, "मैं चाहता हूँ कि तेरा ज़िक्र करते हुए जीऊँ और तेरा ज़िक्र करता हुआ ही मरूँ।" हज़रत मुहम्मद के साथियों ने पूछा, "क्या काफ़िरों के ख़िलाफ़ लड़ना यही दर्जा नहीं रखता?" आपने जवाब दिया, "नहीं, चाहे तुम उस वक़्त तक लड़ते रहो जब तुम्हारी तलवार टुकड़े-टुकड़े हो जाये।"[39] आप ख़ुदा की बन्दगी के ज़रिये नफ़्स पर फ़तह हासिल करने को ही सबसे ऊँचा जिहाद मानते हैं।

बाबा फ़रीद ने अपनी ज़िन्दगी की अमली मिसाल और अपने कलाम में बयान किये गए उसूलों के ज़रिये इनसान की रहनी में इन्क़लाब लाने का कार्य किया। आपके कलाम में सबसे ज़्यादा ज़ोर ख़ुदा के इश्क़ पर दिया गया है। जैसे:

1. जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ॥
   फरीदा किंती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ॥[40]

---

* "The greatest heretic of all, believed the Shaikh, and the real source of all evil was nafis. It was not jihad, argues the Shaikh, against non-muslims which was the real war, but that against the nafis-i-Kafir (the heretical nafis) of one's own lowerself."[38]

2. अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ॥
   जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ॥[41]

3. दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
   जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥[42]

4. बौले सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥[43]

ऐसे कई और उदाहरण पहले और दूसरे अध्याय में दिये जा चुके हैं, जिनमें बाबा फ़रीद ने इनसान को रूहानियत को अपनाते हुए मन को दुनियावी शक्लों और चीज़ों के मोह की जगह ख़ुदा के इश्क़ की ओर मोड़ने की नसीहत दी है।

बाबा फ़रीद ने जिज्ञासु को पहली बात यह समझाई है कि उस महबूब की खोज अपने अन्दर करो, उसकी तलाश में बाहर मत भटको। आपने दूसरी नसीहत यह दी है कि ख़ुदा को हासिल करने का ताल्लुक बाहरी भेषों से नहीं, मन के झुकाव को बदलने और मन में उसका सच्चा इश्क़ पैदा करने से है। इन नसीहतों पर अमल करें तो हम अपने अन्दर ही उस महबूब का दीदार करने में सफल हो जायेंगे।

7. 'दर दरवेसी गाखड़ी'

फरीदा दरवेसी गाखड़ी चोपड़ी परीति॥
इकनि किनै चालीऐ दरवेसावी रीति॥[1]

पिछले अध्याय में देखा जा चुका है कि परमात्मा से मिलाप के लिये बाबा फ़रीद ने मनुष्य को दो उपदेश दिये हैं—(i) बाहर भटकने की बजाय अपने अन्दर ख़ुदा की खोज करनी चाहिये। (ii) ख़ुदा की तलाश के लिये मनोवृत्ति को बदलना चाहिये और दुनिया के भक्त बनने की बजाय परमात्मा के भक्त बनना चाहिये।

अपनी वृत्ति बदलने के लिये मनुष्य क्या करे? 'फरीदा दरवेसी गाखड़ी'—बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि दरवेशी का रास्ता बहुत मुश्किल है। 'वाट हमारी खरी उडीणी खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥'[2] फ़क़ीरी का रास्ता तलवार की धार से तेज़ और बाल से बारीक है। हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं, 'राह फ़क़र दा मुशकल बाहू, घर मां न सीरा रिद्धा हू।'[3] फ़क़ीरी खीर या हलवा खाने के समान नहीं है। 'चोपड़ी परीति'—न ही यह छल-कपट या दिखावे का मार्ग है। 'इकनि किनै चालीऐ'—न यह आसान मार्ग है और न ही दुविधा और बेदिली से इस पर सफलता की आशा रखी जा सकती है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा दर दरवेसी गाखड़ी चलां दुनीआं भति॥
बंन्हि उठाई पोटली किथै वंञा घति॥[4]

'दर दरवेसी गाखड़ी'—उस मालिक के द्वार का दरवेश बनना कठिन है। संसार का कोई काम आसान नहीं। किसान को मिट्टी से मिट्टी होना पड़ता है, तब फ़सल उसके घर आती है। माता को सन्तान का मुख देखने के लिये लम्बे समय तक पीड़ा में से गुज़रना पड़ता है। डाक्टरों, वैज्ञानिकों और कलाकारों को ज़बरदस्त संयम रखना पड़ता है। जितनी बड़ी प्राप्ति का आदर्श

सामने रखा जाता है, उतनी ही सख़्त मेहनत में से गुज़रना पड़ता है और उतनी बड़ी क़ुर्बानी करनी पड़ती है। परमात्मा से मिलाप करना सबसे बड़ा और सबसे ऊँचा ध्येय है। इसलिये इसकी प्राप्ति भी सबसे अधिक कठिन है। 'चलां दुनीआं भति'—सच्चा दरवेश बनने के लिये, सच्चे दरवेश जैसा संयम धारण करना पड़ता है। जो इनसान दुनियादारों की तरह चलता है, वह दरवेश नहीं बन सकता। 'बंन्हि उठाई पोटली'—जिसने सिर पर दुनियावी इच्छाओं और कर्मों की भारी गठरी उठाई हुई है, वह रूहानियत का सफ़र तय करके दरवेशी की मंज़िल पर कैसे पहुँच सकता है—'किथै वंञा घति'।

संसार का सारा परमार्थी साहित्य आदर्शवादी है। इसमें एक तरफ़ तो इनसान के सामने ख़ुदा और मुक़ामे-हक़ को पाने का ऊँचा मक़सद रखा जाता है और दूसरी तरफ़ दुनियादारों जैसी वृत्ति को छोड़कर ख़ुदा के भक्तों जैसी जीवन-वृत्ति को अपनाने की नसीहत की जाती है।

फरीदा दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि॥
मिसल फकीरां गाखड़ी सु पाईऐ पूर करंमि॥[5]

'दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि'—जब तक दिल निकम्मी दुनिया के लोभ, मोह के मैल से गन्दा है, ख़ुदा के आशिक़ बनने का सपना साकार नहीं हो सकता। 'मिसल फकीरां गाखड़ी'—फ़क़ीरों जैसी ऊँची और पाक अवस्था हासिल होना बहुत मुश्किल है। 'पाईऐ पूर करंमि'—यह अवस्था ऊँचे भाग्य और ख़ुदा की रहमत से ही नसीब होती है।

बाबा फ़रीद ने ख़ुदा के विसाल के चाहवानों के लिये जो रहनी बताई है, आपकी ज़िन्दगी उस रहनी की जीती-जागती तस्वीर थी और आपने अपने कलाम में भी उस रहनी के कई पहलुओं पर रोशनी डाली है।

'दिलि अंधिआरी राति'

फरीदा कंनि मुसला सूफु गलि दिलि काती गुड़ु वाति॥
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति॥[6]

'फरीदा कंनि मुसला सूफु गलि दिलि काती गुड़ु वाति'—आप बाहरी दिखावे और अन्दरूनी गुणों का अन्तर बताते हुए चेतावनी देते हैं कि कन्धे पर

नमाज़ पढ़ने का मुसल्ला रख लेने (कंनि मुसला) और गले में ऊन का चोगा (सूफ़ु गलि) पहन लेने से कोई सूफ़ी या भक्त नहीं बन जाता। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'जोगु न भगवी कपड़ी जोगु न मैले वेसि॥ नानक घरि बैठिआ जोगु पाईऐ सतिगुर कै उपदेसि॥'[7] सच्चे भक्त बनने के लिये ख़ास पहरावे की नहीं, सतगुरु के उपदेश के अनुसार मन की अवस्था को बदलने की ज़रूरत है। बाबा फ़रीद कहते हैं, 'दिलि काती गुड़ु वाति' और 'बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति'— अगर हम बाहर से भक्ति, नेकी, निर्मलता, दया आदि का दिखावा करते हैं, पर अन्दर स्वार्थ, लोभ, मोह और अहंकार आदि से भरा हुआ है तो हमने भेष तो दरवेशों जैसा धारण किया हुआ है, पर अन्दर से निपट दुनियादार हैं। दरवेश के मन, वचन और कर्म में पूर्ण समानता होनी चाहिये। जब तक मन, वचन और कर्म में पूर्ण निर्मलता प्राप्त नहीं होती, सच्ची दरवेशी का सपना साकार नहीं हो सकता।

फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु॥
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु॥[8]

'गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु'— सच्चे साधक की दृष्टि बाहरी पहनावे पर नहीं, अपनी आन्तरिक अवस्था पर होती है। उसका ध्यान अपने दोषों और पापों को दूर करने पर होता है। मन की मलिनता और दरवेशी का सम्बन्ध रात और दिन की तरह है। जिस प्रकार रंगरेज़ गन्दे कपड़े को नहीं रँग सकता, उसी प्रकार परमात्मा के प्रेम के रंग में रँगे जाने के लिये मन का वस्त्र नीच वृत्तियों और पापों की गन्दगी से साफ़ होना चाहिये।

बाबा फ़रीद सच्चे भक्त या दरवेश को अन्य बहुत-से गुण धारण करने का भी उपदेश देते हैं।

'थीउ पवाही दभु'

फरीदा थीउ पवाही दभु॥ जे सांई लोड़हि सभु॥
इकु छिजहि बिआ लताड़ीअहि॥ तां साई दै दरि वाड़ीअहि॥[9]

बाबा फ़रीद ख़ुद नम्रता और सहनशीलता की जीती-जागती तस्वीर थे। आप कहते हैं कि अगर तुझे साईं की तलाश है और तू सच्चा दरवेश या भक्त

बनना चाहता है तो तू पैरों की घास (पवाही दभु) बन जा। लोग इस घास को काटते, कूटते और फिर पाँवों तले रौंदते हैं, पर घास कुछ नहीं कहती। जब तेरा स्वभाव भी घास जैसा हो जायेगा, तो एक दिन तू भी उस प्यारे के घर में मंज़ूर हो जायेगा।

फरीदा खाकु न निंदीऐ खाकू जेडु न कोइ॥
जीवदिआ पैरा तलै मुइआ उपरि होइ॥[10]

सच्चा साधक नम्रता की मूर्ति होता है। वह दूसरों के दोष नहीं देखता। वह उस ख़ुदा के बनाये सब जीवों को अपने से बड़ा समझता है और कभी किसी को छोटा या बुरा नहीं कहता। उसे मिट्टी में भी सिफ़्त दिखाई देती है जो ज़िन्दा इनसान के पैरों के नीचे रहती है और क़ब्र में दबाए जाने पर उसकी ओढ़नी बन जाती है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं, 'कबीरा सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय। जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय॥'[11] सच्चे दरवेश को कोई भी बुरा या छोटा दिखाई नहीं देता।

'फरीदा बुरे दा भला करि'

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥[12]

संसार में 'जैसे को तैसा' और 'ईंट का जवाब पत्थर' (Tit for tat) से देने का रिवाज है। लोग तो भला करनेवाले का भी बुरा करने से नहीं चूकते। बाबा फ़रीद साधक के नज़रिये को बदलना चाहते हैं। आप कहते हैं कि उसे अच्छे और बुरे हर इनसान के अन्दर कुल मालिक का नूर नज़र आना चाहिये। एक मालिक के सिवाय कुछ और देखना, सबसे बड़ा कुफ़्र है। क़ुरान शरीफ़ के पहले पृष्ठ पर ही उस कुल मालिक को रब्बुल आलमीन कहा गया है। वह ख़ुदा जो सारी कायनात का है। वह सिर्फ़ हिन्दुओं, मुसलमानों या सिर्फ़ इनसानों का ही नहीं, पशु-पक्षियों और पौधों का भी क़ादिर और राज़िक है। कायनात की कोई चीज़ उसके नूर से ख़ाली नहीं। जब साधक सारी सृष्टि को कुल मालिक का रूप समझकर उसका प्रेमी, सेवक और हमदर्द बन जाता है तो वह ख़ुद-ब-ख़ुद हिंसा, ईर्ष्या, नफ़रत,

दुश्मनी, स्वार्थ, बदले की भावना आदि अनेक नीच मनोवृत्तियों से आज़ाद हो जाता है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि॥
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि॥[13]

सच्चा परमार्थी बदले की भावना से मुक्त होता है। अच्छे से तो हर कोई अच्छा व्यवहार कर सकता है, लेकिन सच्चा भक्त निन्दा, ईर्ष्या और दुश्मनी करनेवालों से भी प्रेम और आदर का व्यवहार करता है। तुलसीदास भगवान शिव और पार्वती के आपसी संवाद द्वारा समझाते हैं, 'उमा संत की एह बड़ाई। मंद करत जो करई भलाई॥'[14] महात्मा बुद्ध, हज़रत ईसा, कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब आदि सब सन्तों-महात्माओं ने बदले की भावना से मुक्त होने और दुश्मनों से भी दोस्ती का व्यवहार करने का उपदेश दिया है। गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'ब्रहम गिआनी कै मित्र सत्रु समानि॥ ब्रहम गिआनी कै नाही अभिमान॥'[15]

'रुखां दी जीरांदि'

फरीदा साहिब दी करि चाकरी दिल दी लाहि भरांदि॥
दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि॥[16]

कुल मालिक की भक्ति (साहिब दी चाकरी) करनेवाले दरवेशों में वृक्षों जैसी सहनशीलता (जीरांदि) होती है। जिस तरह वृक्ष गर्मी, सर्दी, आंधी, वर्षा, तूफ़ान, धूप आदि सब को चुपचाप सहन करता है, उसी तरह सच्चा दरवेश ख़ुदा की रज़ा की मूर्ति होता है। पेड़ की शाख़ाओं को काटकर दातुन बना लें या उसे आग में जला दें, पेड़ चूँ तक नहीं करता। उसे पत्थर मारो तो फल देता है। यही अवस्था ख़ुदा के सच्चे दरवेशों की होती है।

बाबा फ़रीद के जीवन वृत्तान्त में देखा जा चुका है कि जिन लोगों ने आपका विरोध किया या आपसे दुश्मनी की, आपने कभी भी उनसे बदला लेने की सोची तक नहीं। जिस जादूगर ने आपको तंग करने और हानि पहुँचाने की कोशिश की, आपने उसे माफ़ कर दिया। जिस श्रद्धालु ने किसी अमीर व्यक्ति द्वारा आपको भेंट के रूप में भेजी गई रकम में से आधी ख़ुद रख ली, आपने बाक़ी की रकम भी उसे दे दी। जब आपके बेटे ने आपसे झगड़ा करने के लिये

आये एक व्यक्ति पर हाथ उठाया तो आप अपने बेटे से बहुत नाराज़ हुए और जब तक उसने उस व्यक्ति की सेवा करके और उससे माफ़ी माँगकर उसे प्रसन्न न कर लिया, आपने अपने बेटे को माफ़ नहीं किया। जब आपके परम प्रिय शिष्य निज़ामुद्दीन औलिया ने वाद-विवाद के लिये आये एक विद्वान को अपनी दलीलों से हरा दिया तो बाबा फ़रीद इस बात पर बहुत नाराज़ हुए। आपने उसे समझाया कि दरवेश कभी किसी को नीचा दिखाने की कोशिश नहीं करता।

दरवेश की गर्दन पर चाहे कोई तलवार भी रख दे, तो भी वह न बद-दुआ (श्राप) देता है और न ही बदले की भावना रखता है। हज़रत ईसा ने उनको सूली पर चढ़ाने वालों के लिये भी विनती की, 'हे पिता, तू इनको बख़्श देना क्योंकि इनको पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।'[17]

कबीर संतु न छाडै संतई जउ कोटिक मिलहि असंत॥
मलिआगरु भुयंगम बेढिओ त सीतलता न तजंत॥[18]

ज़हर और तपिश से भरा साँप चन्दन के वृक्ष से लिपट जाता है। चन्दन, उसके ज़हर और तपिश के प्रभाव को ग्रहण किये बिना, उसे शीतलता और सुगन्ध देता है। इसी तरह सच्चा दरवेश या साधु बड़े से बड़े पापी का भी उद्धार कर देता है।

'निवणु सु अखरु'

1. कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु॥
   कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु॥[19]
2. निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु॥
   ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु॥[20]

बाबा फ़रीद पहले श्लोक में सवाल करते हैं कि किस तरह की भाषा अपनाई जाये, किस तरह के गुण धारण किये जायें, कौन-से मन्त्र का उच्चारण किया जाये और कौन-सा लिबास पहना जाये जिससे वह प्रीतम वश में आ जाये। दूसरे श्लोक में आप ख़ुद ही जवाब देते हैं कि उस प्रीतम का प्यार पाने के लिये नम्रता, सहनशीलता और मीठी बोली के गुण अपनाने चाहिये। स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद ने सच्चा दरवेश बनने के लिये कोई ख़ास बाहरी भेष या

पहरावा धारण करने पर नहीं बल्कि नम्रता, प्रेम और सहनशीलता के गुण धारण करने पर बल दिया है।

'जिधरि रब रजाइ'

1. कंधी वहण न ढाहि तउ भी लेखा देवणा॥
   जिधरि रब रजाइ वहणु तिदाऊ गंउ करे॥[21]

2. फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु॥
   अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु॥[22]

आप सच्चे साधकों के दो और गुण बता रहे हैं, (i) 'जिधरि रब रजाइ वहणु तिदाऊ गंउ करे।' और 'अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु।' सच्चा परमार्थी अपनी ख़्वाहिशों को ख़ुदा की रज़ा में मिटा देता है। वह ख़ुदा की रज़ा की मूर्ति बन जाता है। (ii) 'फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु'— ख़ुदा का आशिक़ दुःख और सुख के द्वैत से ऊपर उठ जाता है। वह दुःख और सुख दोनों को उस प्रभु की दात मानता हुआ दोनों को एक नज़र से देखता है। इस तरह वह द्वैत और ख़ुदी से आज़ाद होकर ख़ुदा के दरबार में परवान हो जाता है। राबया बसरी कहती है कि सच्चा दरवेश वही है जो दुःख और सुख में फ़र्क़ नहीं करता।[23] गुरु तेग़ बहादुर साहिब कहते हैं, 'पर निंदा उसतति नह जा कै कंचन लोह समानो॥ हरख सोग ते रहै अतीता जोगी ताहि बखानो'॥[24]

'सभना मै सचा धणी'

सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा॥
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥[25]

'सभना मन माणिक'— सबके दिल हीरे-मोतियों की तरह बेशक़ीमती हैं। 'ठाहणु मूलि मचांगवा'—किसी का दिल तोड़ना अच्छा नहीं। 'जे तउ पिरीआ दी सिक'— अगर तेरे अन्दर उस महबूब से मिलाप की तड़प है तो किसी का दिल न दुखा— 'हिआउ न ठाहे कही दा'।

इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे॥[26]

'इकु फिका न गालाइ'— किसी से कड़वा या फीका न बोल क्योंकि हरएक के अन्दर वह सच्चा धनी बस रहा है— 'सभना मै सचा धणी'।

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि॥
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि॥[27]

ख़ालिक ख़लकत में समाया हुआ है और ख़लकत ख़ालिक में। किसी को बुरा कहना ख़ालिक को बुरा कहने के समान है।

ऊपर दिये गए तीनों श्लोकों में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि सच्चे साधक को हर जीव के अन्दर एक ही ख़ुदा का नूर दिखाई देता है। वह क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों के भेद-भाव से ऊपर उठ जाता है। वह सारी कायनात को समान रूप में अपने प्रेम और सेवा का अधिकारी मानता है। वह किसी का दिल नहीं दुखाता क्योंकि उसे हरएक के अन्दर ख़ुदा नज़र आता है और इस तरह उसे उसके अन्दर बैठे कर्ता को चोट पहुँचती महसूस होती है।

बाबा फ़रीद और कामिल दरवेश क्या उपदेश देते हैं और हमारा क्या व्यवहार है? सभी धर्म मानते हैं कि सारी सृष्टि और सृष्टि के सभी जीवों का कर्ता एक है। वह कर्ता सृष्टि के कण-कण में और हर जीव के अन्दर समाया हुआ है। इनसानों में ही नहीं, पशु-पक्षियों और पौधों में भी उसका ही नूर है। जो कुछ है, उसका पैदा किया हुआ है, जो कुछ है, उसके सहारे क़ायम है और जो कुछ है, उसमें उसका प्रकाश समाया हुआ है। इसके बावजूद अलग-अलग धर्मों के लोग आपस में लड़-झगड़ रहे हैं और वह भी धर्म के नाम पर! एक तरफ़ धर्मों की अगुवाई करनेवाले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि इनसान का शरीर परमात्मा द्वारा सृजित सच्चा मन्दिर, मसजिद, गिरजा और गुरुद्वारा है, पर दूसरी तरफ़ लोग ईंटों-पत्थरों के बने धर्म-स्थानों के नाम पर हज़ारों इनसानों को क़त्ल कर रहे हैं। क्या यह परमात्मा द्वारा सृजित मन्दिरों-मसजिदों, गुरुद्वारों को गिराने के तुल्य नहीं है?

इसी तरह अपने आपको धार्मिक और धर्म-ग्रन्थों के अनुयायी कहलाने वाले लोग यह भी कहे जाते हैं कि हर जीव के अन्दर परमेश्वर बैठा हुआ है और फिर निडर होकर जीव-हत्या भी किये जा रहे हैं। कोई कलमा पढ़

कर जीवों के गलों पर छुरी चला रहा है, कोई मन्त्रों का उच्चारण करके जीवों के गले काट रहा है तो कुछ लोग धर्म-स्थानों पर जीवों की बलि चढ़ाकर देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का यत्न करते हैं। कबीर साहिब ख़बरदार करते हैं:

जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरमु कहहु कत भाई॥
आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई॥[28]

आप कहते हैं कि अगर जीवों की हत्या करना धर्म है तो अधर्म क्या है और अगर जीव-हत्या करनेवाले लोग ऋषि-मुनि हैं, तो कसाई कौन हैं? आप दलील देते हैं:

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै॥
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै॥[29]

आप अपने आपको परमात्मा और शास्त्रों के ज्ञाता कहलाने वाले लोगों को कहते हैं कि जब तुम हिन्दुओं के चारों वेदों, यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों की चार किताबों- तौरेत, जंबूर, बाइबल और क़ुरान के हवाले देते हुए यह सिद्ध करने का यत्न करते हो कि सब जीवों के अन्दर एक कर्ता के नूर का ज़हूर है तो फिर जीव-हत्या की वकालत कैसे कर सकते हो? इसका यह अर्थ हुआ कि तुम धर्म-ग्रन्थों का सहारा लेकर अपने ग़लत कार्यों को सही सिद्ध करने का यत्न करते हो। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि हर धर्म के लोग अपने-अपने धर्म के अनुयायियों को तो बड़ा और ऊँचा मानते हैं, पर दूसरे धर्मों के अनुयायियों को छोटा और बुरा समझते हैं। वह केवल अपने धर्म के लोगों को मालिक की ख़ास रहमत के हक़दार, मालिक के चुने हुए या बख़्शे हुए (chosen or blessed) तथा स्वर्गों, बैकुण्ठों के अधिकारी समझते हैं, पर दूसरे धर्मों के लोगों को सावधान करते हैं कि तुम नरक की आग में जलोगे। कितनी आश्चर्यजनक बात है! हिन्दुओं के हिसाब से मुसलमान और मुसलमानों के हिसाब से हिन्दू और ईसाइयों के हिसाब से मुसलमान और हिन्दू नरकों में जायेंगे तो इसका अर्थ यह हुआ कि सारे ही नरक में पहुँचेंगे। बाबा फ़रीद और दूसरे सन्त-महात्मा सावधान करना चाहते हैं कि जब वह एक ही क़ादिर हर इनसान के अन्दर बैठा हुआ है तो

क़ौम, मज़हब, मुल्क, जाति आदि के आधार पर भेद-भाव करना और लोगों का दिल तोड़ना उचित नहीं।

एक सूफ़ी दरवेश ने कहा है कि शराब पीना, क़ुरान शरीफ़ को जलाना और नमाज़ पढ़ने का मुसल्ला शराब में भिगोना बहुत बड़े गुनाह हैं। इन गुनाहों की तो शायद माफ़ी मिल जाये पर किसी का दिल दुखाने के गुनाह की कभी माफ़ी नहीं मिल सकती।* किसी दरवेश का कथन है, 'मंदर ढाह दे मसजिद ढाह दे, ढाह दे जो कुछ ढहिंदा। पर इक न ढाहीं दिल बंदे दा, जिस विच दिलबर रहिंदा।'[31]

'ना तरसाए जीउ'

रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ॥
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ॥[32]

प्रभु का भक्त सन्तोष की मूर्ति होता है। वह रूखी-सूखी खाकर ख़ुदा की बन्दगी करता है। वह दूसरों के छत्तीस प्रकार के पदार्थ देखकर न ही उनसे ईर्ष्या करता है और न ही ख़ुद इन पदार्थों की इच्छा से मन को तरसाता है। जिस हालत में वह मौला उसे रखता है, उसमें रहते हुए, वह उसकी इबादत में लगा रहता है।

'देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ'— इस नसीहत पर एक विस्तृत नज़रिये से सोचने की ज़रूरत है। बाबा फ़रीद कहना चाहते हैं कि सच्चा साधक वह है, जो मिली हुई चीज़ों के लिये शुक्र करता है, पर जो कुछ उसे नहीं मिला उसकी शिकायत नहीं करता। एक विद्वान के मन में नाराज़गी पैदा हुई कि उसे पैरों में डालने के लिये जूते भी नसीब नहीं हैं। जब उसकी नज़र ऐसे शख़्स पर पड़ी जिसके दोनों पैर ही नहीं थे, तब वह कुल मालिक का लाख-लाख शुक्र करने लगा कि जूते न सही तूने पैर तो दिये हैं। ज़रूरत सिर्फ़ मन को समझाने की है। हम गिनती के अमीर, तन्दुरुस्त या सुखी लोगों को देखकर दिन-रात ठण्डी आहें भी भर सकते हैं और अपने से कहीं ज़्यादा ग़रीबों, दुखियों और लाचारों को देखकर ख़ुदा का शुक्र भी कर सकते हैं। अपनी

* मैख़रो मसहफ़ बसोज़ो आतश अंदर काअबा ज़न,
हर किह ख़्वाही कुन व लेकिन मरदम आज़ारी मकुन।[30]

हालत में सुधार लाने के लिये भरपूर कोशिश करना और बात है तथा हर लम्हा गिला-शिकवा करते रहना और बात है।

कामिल दरवेश दुनिया में रहते हैं, लेकिन दुनिया के नहीं बन जाते। वे सांसारिक ज़िम्मेदारियां पूरी करते हैं और देश के नागरिक की हैसियत से अपने फ़र्ज़ भी पूरे करते हैं, पर ख़ुदा की इबादत और रूहानी फ़र्ज़ को अदा करने में कभी ग़फ़लत नहीं करते।

सच्चे दरवेश दुनियादारी के हर फ़र्ज़ को लगन और मेहनत के साथ पूरा करते हैं। वे उद्यम और मेहनत की ज़िन्दा तस्वीर होते हैं। इसके साथ ही वे सदा कुल मालिक की रज़ा में राज़ी रहते हैं। मालिक उनके मेहनत रूपी पेड़ पर जो भी फल लगाता है उस पर वे कनायत (सन्तोष) करते हैं।

फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख॥
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख॥[33]

यहाँ काठ की रोटी का आन्तरिक भाव सादा और रूखा-सूखा भोजन है। सच्चा साधक हमेशा सन्तोष की मूर्ति होता है। उसे जो मिल जाता है, उसी में ही सन्तोष करता है। वह न यह शिकायत करता है कि अमुक चीज़ क्यों नहीं मिली तथा न ही कभी यह आशा रखता है कि अमुक चीज़ मिल जाये। दरवेश बन्दगी के लिये खाता है, खाने के लिये नहीं खाता। महात्मा सुपच के बारे में प्रसिद्ध है कि जब द्रोपदी ने उनके सामने अनेक प्रकार के व्यंजन परोसे तो उन्होंने सब खाने मिला लिये ताकि उनका ज़ायका ख़त्म हो जाए। किसी महात्मा के एक सेवक ने ग़लती से खीर में चीनी की बजाय नमक डाल दिया। महात्मा ने चुपचाप खाना खा लिया। जब सेवक ने खीर खाई तो हैरान रह गया। जब उसने क्षमा माँगी तो महात्मा ने कहा कि ख़ुदा के सेवक स्वाद के लिये खाना नहीं खाते।

फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखीआ जंगलि जिन्हा वासु॥
ककरु चुगनि थलि वसनि रब न छोडनि पासु॥[34]

बाबा फ़रीद के अनुसार वे दरवेश रूपी पक्षी धन्य हैं जो रूखे-सूखे टुकड़ों (ककरु) के सहारे ज़िन्दगी गुज़ार लेते हैं, पर कभी भी ख़ुदा की बन्दगी को नहीं छोड़ते—'रब न छोडनि पासु।'

रूखा-सूखा खाना और जीवन के हर प्रकार के उतार-चढ़ाव और तंगियों में सन्तोष करना ही काफ़ी नहीं, हर किस्म के विरोधी हालात में ख़ुदा की इबादत में मग्न रहना भी ज़रूरी है। अगर कहो गर्मी न आये, गर्मी तो बेशक आनी है। अगर कहो कि सर्दी न आये, सर्दी को भी ज़रूर आना है। इसलिये सच्चा साधक जीवन के सुखदायक या दु:खदायक हालात को कुल मालिक की बन्दगी न करने का बहाना नहीं बनने देता। सुख-दु:ख ज़िन्दगी के अटूट अंग हैं। अगर सुखों में खोकर या दु:खों से घबराकर कुल मालिक की बन्दगी नहीं करेंगे तो कभी बन्दगी कर ही नहीं सकेंगे।

'कंनी बुजे दे रहां'

फरीदा इहु तनु भउकणा नित नित दुखीऐ कउणु॥
कंनी बुजे दे रहां किती वगै पउणु॥[35]

'फरीदा इहु तनु भउकणा'— हमारे मन के अन्दर लोभ रूपी कुत्ता सदा भौंकता रहता है। नफ़्स का कुत्ता हमेशा नई इच्छाएँ पैदा करके इनसान को ख़ुदा की इबादत से गुमराह करने की कोशिश करता है। मन, लोभ-लालच और आशा-तृष्णा की जितनी मर्ज़ी तरंगें पैदा करे (किती वगै पउणु), सच्चा साधक मन की एक नहीं सुनता (कंनी बुजे दे रहां) और सन्तोष का पल्ला पकड़े रहता है। हमारी क्या हालत है? तृष्णाएँ हमारा मन पैदा करता है और पूरी हम परमात्मा से करवाना चाहते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि हम अपने मन को परमात्मा की रज़ा के अधीन करने के बजाय, परमात्मा को अपने मन की मर्ज़ी के अधीन करना चाहते हैं। दरवेशी मन की मर्ज़ी त्यागकर परमात्मा के ऊपर पूरा भरोसा रखने का मार्ग है।

'सबर संदा बाणु'

सबर मंझ कमाण ए सबरु का नीहणो॥
सबर संदा बाणु खालकु खता न करी॥[36]

कुल मालिक के सच्चे आशिक़ सब्र-शुक्र की मूर्ति होते हैं। वे सब्र की कमान बनाते हैं और उस पर सब्र की डोरी (नीहणो) चढ़ाते हैं और सब्र से

ही तीर निशाने पर चलाते हैं। कुल मालिक परम दयालु है। वह अपने प्यारे भक्तों द्वारा सब्र-सन्तोष के साथ की गई कोशिश को ज़ाया नहीं जाने देता। वह उनकी सब्र के साथ की गई मेहनत को फल ज़रूर लगाता है।

बाबा फ़रीद समझा रहे हैं कि रूहानी साधना को रातों-रात फल नहीं लगता। रूहानी अभ्यास में सफलता के लिये समय लगता है। इन्तिज़ार लम्बा हो सकता है। शुरू में रूहानी अभ्यास बिना नमक के पत्थर के समान होता है, जिसे चाटने से न स्वाद आता है, न कुछ फल ही मिलता है। मेहनत को फल लगे या न लगे, साधक अभ्यास जारी रखता है। साईं बुल्लेशाह इशारा करते हैं:

पहले उखली साफ़ कराईं। रोड़ा मिट्टी धूड़ हटाईं।
फिर उखली विच चीना पाईं। छज्ज सबर दा रक्खीं तिआर।
चीना ईं छड़ींदा यार।[37]

आप कहते हैं कि ख़ुदा की भक्ति का चीना झाड़ने के लिये पहले मन की ओखली में से विषयों-विकारों, आशा-मनसा आदि की धूल दूर करो। इसके बाद इसे सब्र के छाज से झाड़ो। आपका मतलब है कि ख़ुदा की बन्दगी में कामयाबी के लिये सब्र की ज़रूरत है। यह 'झट मंगनी पट व्याह' वाली बात नहीं है। रूहानियत में सफलता के लिये वर्षों की लम्बी मेहनत दरकार होती है। सच्चा साधक बिना फल की इच्छा के धैर्यपूर्वक ख़ुदा की इबादत में लगा रहता है।

सबरु एहु सुआउ जे तूं बंदा दिड़ु करहि॥
वधि थीवहि दरिआउ टुटि न थीवहि वाहड़ा॥[38]

आप कहते हैं कि अगर इनसान अपने सब्र को पक्का कर ले तो ज़्यादा फ़ायदा (सुआउ) होगा। सब्र से किया गया अभ्यास फैलकर समुद्र बन जाता है, मामूली नाला (वाहड़ा) नहीं रहता। आप समझाना चाहते हैं कि साधक को ज़िन्दगी के हर तरह के हालात में कामयाबी की फ़िक्र किये बिना सब्र और धीरज के साथ अभ्यास में जुटे रहना चाहिये। इस तरह किये गए अभ्यास में बरकत होती है। यह अभ्यास एक दिन अभ्यासी को उसकी मंज़िल पर पहुँचा देता है।

'बोलीऐ सचु धरमु'

'बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ'॥[39] बाबा फ़रीद की वाणी के इस छोटे-से सूत्र को अच्छी तरह समझ लें तो आपके द्वारा साधक के लिये बनाई गई रहनी की पूरी तस्वीर सामने आ जाती है। आपने धर्म और अधर्म, दीन और दुनिया, कुफ़्र और ईमान, सच और झूठ के आपसी विरोध के आधार पर अपनी बात समझाई है। आप कहते हैं कि तुम मोमिन, दीनदार, परमार्थी यानी ख़ुदा के सच्चे आशिक़ बनो; काफ़िर, दुनियादार या स्वार्थी मत बनो। तुम्हारी ज़िन्दगी में से ख़ुदा के सच्चे आशिक़ की सी सुगन्ध आनी चाहिये, झूठी और फ़ना दुनिया के प्रेम की दुर्गन्ध नहीं। तुम अपने जीवन को भक्ति, प्रेम, सच, संयम, सन्तोष, क्षमा, विवेक, नम्रता, त्याग, सेवा, अहिंसा और रज़ा के साँचे में ढालो, इसे नफ़रत, झूठ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ, हिंसा, ज़ुल्म, ज़बर, अन्याय आदि के कुमार्ग पर न चलाओ। तुम वहदतुल-वुजूद या हमाओस्त के राज़ को समझते हुए, सारी कायनात में एक ख़ुदा का नूर झलकता देखो। तुम कुल मालिक की सृष्टि के सच्चे प्रेमी और सेवक बन कर जगत को प्रेम की सूई द्वारा एकता की डोर से सिलने का यत्न करो। द्वैत की तलवार से इसके टुकड़े-टुकड़े मत करो। इस तरह तुम रचना के मोह से मुक्त होकर रचियता के प्रेम में परिपक्व हो जाओगे और तुम्हें परमात्मा के सच्चे भक्त या दरवेश जैसी अवस्था प्राप्त हो जायेगी।

पुनः अवलोकन

बाबा फ़रीद ने नैतिकता का उपदेश रूहानी तरक़्क़ी में सहायता के लिये दिया है, पर आपकी असल मंज़िल ख़ुदा का विसाल है। नैतिकता इस मंज़िल पर पहुँचने में सहायता करती है। बाबा फ़रीद एक श्लोक में कहते हैं:

1. फरीदा थीउ पवाही दभु॥ जे सांई लोड़हि संभु॥
इकु छिजहि बिआ लताड़ीअहि॥ तां साई दै दरि वाड़ीअहि॥[40]

यानी साधक को घास की तरह निमाना बन जाना चाहिये क्योंकि इससे मालिक की दरगाह में दाख़िल होने में सहायता मिलती है। आप कहते हैं:

2. फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥[41]

यानी बुरे का भला करो और क्रोध से बचो क्योंकि इससे तुम तन, मन और आत्मा के रोगों से बचे रहोगे और उस कर्ता से तुम्हारा मिलाप हो जायेगा। आप अन्य श्लोक में कहते हैं:

3. सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा॥
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥[42]

यानी अगर प्रीतम से मिलना चाहते हो तो किसी का दिल न दुखाओ। फिर फ़रमाते हैं:

4. फरीदा गरबु जिन्हा वडिआईआ धनि जोबनि आगाह॥
खाली चले धणी सिउ टिबे जिउ मीहाहु॥[43]

यानी धन, यौवन और बड़ाई का अभिमान मत करो क्योंकि इस तरह करने से तुम कुल मालिक की रहमत से ख़ाली रह जाओगे। बाबा फ़रीद की वाणी है:

5. निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु॥
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु॥[44]

यानी मीठे वचन बोलो, नम्रता और सहनशीलता धारण करो क्योंकि यह गुण धारण करने से वह प्रीतम तुम पर ख़ुश होगा।

6. फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु॥
अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु॥[45]

यानी मन में से विकार दूर करो और सुख-दुःख को समान दृष्टि से देखो क्योंकि यह गुण धारण करने से ही तुम ख़ुदा की दरगाह में दाख़िल हो सकोगे।

ऊपर की गई सारी चर्चा और विशेषकर अन्त में दिये गए प्रसंगों से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि बाबा फ़रीद सच्चे परमार्थी से जिस उत्तम रहनी की आशा रखते हैं, उसका मूल आधार ख़ुदा का इश्क़ है और उसका आदर्श ख़ुदा से मिलाप है। सच्चे भक्त के संकल्प, उसके विचार और यत्न सिर्फ़ एक दिशा की ओर चलते हैं और वह दिशा है, वह कुल मालिक, वह परवरदिगार।

8. 'अमल जि कीतिआ दुनी विचि'

फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा॥
अगै दोजकु तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा॥
इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा॥
अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा॥[1]

यहाँ आप कई प्रकार से चेतावनी देते हैं:

1. 'फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा' नदी के पल-पल ढह रहे किनारे की तरह ज़िन्दगी भी पल-क्षण का खेल है।
2. 'अगै दोजकु तपिआ' मौत के बाद जीव को बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये दोज़ख़ (नरक) की आग में जलना पड़ता है।
3. 'अगै दोजकु तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा' नरकों की आग में जल रहे जीवों की दर्दनाक चीख़ो-पुकार सहन नहीं की जा सकती।
4. 'इकना नो सभ सोझी आई' कुछ लोग कर्म और फल के नियम की अटलता को समझते हुए अपना परलोक सँवारने में लगे हुए हैं।
5. 'इकि फिरदे वेपरवाहा' कुछ लोग इस कार्य की ओर से बिलकुल ग़ाफ़िल या अचेत हैं। उन्होंने संसार और इसकी ऐशो-इशरत को सच माना हुआ है। उन्हें परलोक की कोई परवाह नहीं।
6. 'अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा' लोग भूले हुए हैं कि उन्हें अन्त में उस सच्ची दरगाह में अपने किये हुए कर्मों का हिसाब देना पड़ेगा, क्योंकि ख़ुदा की बन्दगी के नेक अमल को भुलाकर हम जो कुछ भी करते हैं, उसके लिये हमें कुल मालिक के आगे जवाब देना पड़ता है।

पुस्तक के अध्याय 'तू आंहो केहें कंमि' में बाबा फ़रीद का यह उपदेश पढ़ चुके हैं कि केवल यह भरोसा कर लेना काफ़ी नहीं कि परमात्मा सचमुच

है और वह संसार का कर्ता भी है। यह बात दृढ़ कर लेनी भी ज़रूरी है कि उस कर्ता ने जीव को यहाँ एक ख़ास मक़सद को पूरा करने के लिये भेजा है। ऊपर दिये गए श्लोक के ज़रिये आप एक और राज़ ज़ाहिर कर रहे हैं और एक चेतावनी भी दे रहे हैं कि यह कह देना काफ़ी नहीं कि वह ख़ुदा दुनिया को अपनी रज़ा के अनुसार चला रहा है, यह समझ लेना भी ज़रूरी है कि उसने दुनिया के संचालन के लिये कर्म और फल का कानून लागू किया हुआ है। तुलसीदास जी फ़रमाते हैं, 'कर्म प्रधान बिस्व रच राखा। जो जस करई सो तस फल चाखा॥'[2] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, यह संसार 'करमा संदड़ा खेतु'[3] है। यहाँ ख़ुद बोये गए कर्मों की फ़सल ख़ुद को ही काटनी पड़ती है। बाबा फ़रीद भी यही समझा रहे हैं कि मौत अटल है, पर मौत से शरीर का अन्त होता है, आत्मा का नहीं। अन्त समय आत्मा को उस द्वारा किये गए अच्छे और बुरे कर्मों के भुगतान के लिये मृत्युलोक, स्वर्ग या नरक में भेजा जाता है। स्वर्ग और नरक पहले रूहानी मण्डल से नीचे हैं। कर्मों के भुगतान की दृष्टि से यह एक प्रकार से इस मृत्युलोक का ही विस्तार (extension) हैं।

दोज़ख़ (नरक)

नरक अनेक प्रकार के हैं। जितने घोर पापों का मैल आत्मा पर चढ़ा होता है, उतने घोर नरक में इसे सफ़ाई के लिये भेजा जाता है। हम देखते हैं कि अस्पतालों में 'इन्टैंसिव केअर यूनिट' (intensive care unit) होते हैं जहाँ बहुत सख़्त बीमारी वाले रोगी रखे जाते हैं। तपेदिक के रोगियों के लिये अलग से टी. वी. सैनिटोरियम बने होते हैं। पाग़लपन और कैंसर के रोगियों के लिये अलग अस्पतालों का प्रबन्ध होता है।

पाग़लपन के रोगियों को बिजली के झटके दिये जाते हैं। कैंसर के रोगियों के पीड़ित भाग में से रेडियाई किरणें गुज़ारी जाती हैं। कई धातुएँ बहुत ऊँची डिग्री के तापमान पर पिघलती हैं। उनको पिघलाने के लिये ख़ास तरह की भट्ठियाँ बनाई जाती हैं। उसी प्रकार नरक ऐसे अस्पताल और ऐसी भट्ठियां हैं, जिनमें बहुत बुरे कर्मों का फल भुगताया जाता है। आत्मा पर जितना अधिक पापों का मैल चढ़ता है, उतने अधिक भयानक नरक में उसे भेजा

जाता है। पाप कर्मों की बहुत-सी मैल उतरने पर आत्मा को फिर से मृत्युलोक में भेज दिया जाता है।

नरक असल में जीवात्मा को केवल सज़ा देने के लिये नहीं, इस पर चढ़ी मलिनताओं को उतारने और इसकी मलिन वृत्तियों को सुधारने का साधन भी है। आजकल जेलों को सुधार-घर कहा जाने लगा है। जिस तरह घोर अपराधियों का समाज में रहना ख़तरनाक होता है, उसी तरह घोर पापियों का संसार में रहना ठीक नहीं होता। नरक सजा-घर ही नहीं, सुधार-घर भी है। इनका असल ध्येय यह है कि घोर पापों के पर्दे उतर जायें और इनके नीचे दबा हुआ आत्मा का प्रकाश पुनः प्रकट हो जाये।

बहिश्त (स्वर्ग)

एक व्यक्ति मेहनत करके अपने देश में बहुत-सा धन कमा लेता है। वह सैर के लिये विदेश चला जाता है। वहाँ उसे कुछ काम नहीं करना पड़ता, वह अपने देश में से लाये धन के सहारे वहाँ ख़ूब मौज करता है। जब धन ख़त्म हो जाता है, तो उसे अपने देश लौटना पड़ता है। स्वर्ग, ऐसे अर्ध-सूक्ष्म मण्डल हैं जिनमें जीव इस दुनिया में किये हुए बहुत अच्छे कर्मों का फल भोगने के लिये जाता है। वहाँ इसे इच्छा-मात्र से मन-वांछित वस्तु मिल जाती है, पर जब मृत्युलोक में किये पुण्यों का फल समाप्त हो जाता है तो जीव को फिर इस मृत्युलोक में भेज दिया जाता है।

बाबा फ़रीद कहते हैं, 'इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा'। कुछ लोगों को समझ आ गई है कि न केवल मौत अटल है, बल्कि इस ज़िन्दगी में किये गए बुरे कर्मों का फल भोगने के लिये मौत के बाद नरकों की आग में भी जलना पड़ेगा। उनको ज्ञान हो गया है कि 'अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा'। इसलिये वे बुरे कर्मों से परहेज़ करते हैं। 'इकि फिरदे वेपरवाहा'। शैतान के बहकावे में आकर कई लोग नरकों और स्वर्गों को कपोल कल्पना बताते हैं और हमेशा इस भ्रम का शिकार रहते हैं कि हम जो मर्ज़ी करते जायें, हमसे हिसाब पूछने वाला कोई नहीं है। संसार के सब अत्याचारी, चोर, डाकू, ठग, लुटेरे, जेब-कतरे, रिश्वतख़ोर आदि इस भ्रम या

अज्ञानता का शिकार हैं कि हम सिर्फ़ दुनिया की ही नहीं, विधाता की आँखों में भी धूल झौंकने में कामयाब हो जायेंगे। बाबा फ़रीद ने अपने एक श्लोक में जीव को सावधान किया है, 'जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि॥'[4] भले मानस, अगर तूने ख़ुदा की ओर पीठ कर रखी है तो इसका यह मतलब नहीं कि वह भी तुझे नहीं देख रहा है। वह परमात्मा जो हर जगह मौजूद है, तेरे अन्दर है और तेरी हर करतूत को देख रहा है और तुझे अपने किये हर कर्म का फल ज़रूर भुगतना पड़ेगा।

'लोड़ै दाख बिजउरीआं'

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु॥[5]

बाबा फ़रीद उन लोगों की अक़्ल और सोच पर हैरानी ज़ाहिर करते हैं जो कर्म तो बुरे करते हैं, पर फल अच्छा चाहते हैं। उनकी हालत उस मूर्ख जैसी है जो कीकर (बबूल) बोता है और उससे बिजौर के सुन्दर अंगूर (दाख बिजउरीआं) खाने की उम्मीद रखता है। इसकी हालत उस बेसमझ जैसी है जो कात तो मोटी ऊन रहा है, पर पहनना रेशम चाहता है। कबीर साहिब कहते हैं:

करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय॥[6]

गुरु अंगद देव जी कहते हैं:

जो जीइ होइ सु उगवै मुह का कहिआ वाउ॥
बीजे बिखु मंगै अंम्रितु वेखहु एहु निआउ॥[7]

फल हृदय की भावना को लगता है, ज़बानी बातों से कुछ प्राप्त नहीं होता। आप हैरानी प्रकट करते हैं कि संसार की अजीब अवस्था है कि लोग बीज तो ज़हर के बोते हैं, पर आशा अमृत की रखते हैं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ॥

जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ॥
किछु लाहे उपरि घालीऐ॥[8]

गुरु साहिब दलील देते हैं कि जब हमें पता है कि हमें अपने किये हुए कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है, तो बुरे कर्मों से बचने में ही समझदारी और भलाई है। क्षणिक लोभ में पड़कर ग़लत काम नहीं करने चाहिये, बल्कि दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये। मन में ऐसे ग़लत कर्मों का लालच नहीं होना चाहिये, जिनसे दुनिया में तो सफलता मिल सकती हो, पर परमात्मा की दरगाह में सज़ा भोगनी पड़े। हमेशा ऐसी उत्तम रहनी अपनानी चाहिये जिससे कुल मालिक की दरगाह में मंज़ूर हो सकें। हर कर्म, आत्मा की अन्तिम भलाई को मुख्य रखकर करना चाहिये। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा वेखु कपाहै जि थीआ जि सिरि थीआ तिलाह॥
कमादै अरु कागदै कुंने कोइलिआह॥
मंदे अमल करेदिआ एह सजाइ तिनाह॥[9]

जिस प्रकार कपास बेली जाती है, तिल और गन्ना पेले जाते हैं, लकड़ी को जलाकर उसके कोयले बनाये जाते हैं या उसे घोट कर उसकी लुगदी द्वारा काग़ज़ बनाया जाता है और पतीला आग पर चढ़ता है, उसी तरह इस संसार में बुरे कर्म करनेवालों को दरगाह में कई प्रकार की सख़्त सज़ाएँ दी जाती हैं। बाबा फ़रीद ने एक अन्य उदाहरण द्वारा यही भाव समझाने का यत्न किया है:

1. फरीदा दरि दरवाजै जाइ कै किउ डिठो घड़ीआलु॥
   एहु निदोसां मारीऐ हम दोसां का किआ हालु॥[10]
2. घड़ीए घड़ीए मारीऐ पहरी लहै सजाइ॥
   सो हेड़ा घड़ीआल जिउ डुखी रैणि विहाइ॥[11]

आप हमारा ध्यान शहर के मुख्य द्वार पर लटकाये गए घण्टे पर ले जाते हुए कहते हैं कि उस निर्दोष पर बिना किसी क़ुसूर के बार-बार हथौड़ा मारा जाता है। जब उस निर्दोष की इतनी बुरी हालत होती है तो घोर पाप करनेवालों की क्या हालत होगी।

उपरोक्त श्लोकों से पहले बाबा फ़रीद ने दो और श्लोक लिखें हैं, जो सूक्ष्म ढंग से इसी विषय पर प्रकाश डालते हैं। आप कहते हैं:

1. फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि॥
   इकि रोहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि॥[12]

2. फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
   लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहे कंमि॥[13]

आप पहले श्लोक में इशारा कर रहे हैं कि कुछ लोग अपने साथ लाई शुभ कर्मों की पूंजी को इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों में फँसकर व्यर्थ नष्ट कर लेते हैं और कुछ लोग शुभ कर्मों द्वारा अपना जीवन सुधारने का यत्न करते हैं। आप दूसरे श्लोक में कहते हैं कि अधिकतर लोग अपना सारा जीवन सांसारिक कार्य-व्यवहार रूपी निद्रा तथा ग़फ़लत में व्यर्थ गँवा देते हैं। वे यह सोचने का यत्न नहीं करते कि परमात्मा द्वारा सौंपे गए कार्य की ओर ध्यान न देने के कारण उन्हें दरगाह में अपने किये हुए कर्मों का हिसाब देना पड़ेगा।

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि कर्म और फल का सिलसिला मृत्युलोक से नरक और स्वर्ग तक फैला हुआ है। आप कहते हैं कि जब एक बार कर्म कर लिये जाते हैं तो फिर उनके फल से किसी हालत में नहीं बचा जा सकता। गुरु अर्जुन देव जी ने भी जीव को सावधान किया है:

पाप करेदड़ सरपर मुठे॥ अजराईलि फड़े फड़ि कुठे॥
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ॥
संगि न कोई भईआ बेबा॥ मालु जोबनु धनु छोडि वञेसा॥
करण करीम न जातो करता तिल पीड़े जिउ घाणीआ॥
खुसि खुसि लैदा वसतु पराई॥ वेखै सुणे तैरै नालि खुदाई॥
दुनीआ लबि पइआ खात अंदरि अगली गल न जाणीआ॥[14]

'अगली गल न जाणीआ'— आप कहते हैं कि पाप वे लोग करते हैं जो इस भ्रम का शिकार हैं कि न उन्हें कोई देख रहा है और न ही किसी ने उनसे हिसाब पूछना है। असलियत क्या है? 'वेखै सुणे तैरै नालि खुदाई'। देखने

और सुनने वाला ख़ुदा कहीं दूर नहीं, हमारे अन्दर बैठा है। वह हमारे हर ख़याल से वाक़िफ़ है और हमारे हर कर्म को देख रहा है। उससे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। 'पाप करेदड़ सरपर मुठे'— पापियों को किये हुए पापों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। वे क्या फल भोगेंगे? 'अजराईलि फड़े फड़ि कुठे'; 'दोजकि पाए सिरजणहारै'; 'तिल पीड़े जिउ घाणीआ'; 'दुनीआ लबि पइआ खात अंदरि' और 'लेखा मंगै बाणीआ'। यहाँ तक कि छोटे-से-छोटे कर्म का भी हिसाब माँगा जायेगा।

'काले लिखु न लेख'

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं:

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख॥
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु॥[15]

'लतीफु' कहते हैं सूक्ष्म या बारीक को। गिरेबान में सिर नीचा करके देखने का अर्थ है अपने दोष देखना। बाबा फ़रीद ने हमें बुरे कर्मों के ख़िलाफ़ होशियार किया है। आप हमें सूक्ष्म बुद्धि से काम लेते हुए, मन से गहन विचार करके इस बारे में ख़ुद सही नतीजे पर पहुँचने का सुझाव दे रहे हैं।

कहने को तो हम भी कह देते हैं कि कुल मालिक सर्वव्यापक है, वह सबकुछ देख रहा है। अगर हमें सचमुच यह भरोसा है तो हम अपने मन में बुरे संकल्प, बुरे ख़याल कैसे ला सकते हैं? हम किसी को कड़वे वचन कैसे बोल सकते हैं? हम लोगों को लूटने, लोगों के गले काटने की योजनाएँ कैसे बना सकते हैं? संसार में चोर-बाज़ारी, रिश्वतख़ोरी, मार-काट क्यों हो रही है? हमारे अन्दर यह वहम घर कर गया है कि हमें अपने कर्मों का फल नहीं भुगतना पड़ेगा।

फिर हम कहते हैं कि वह परमात्मा रब्बुल-आलमीन[16] है। वह सबका ख़ालिक, क़ादिर और राज़िक है। वह कर्तापुरुष एक है जिसने सारी सृष्टि की रचना की है और वही एक ख़ुदावंद करीम हरएक के अन्दर बैठा हुआ है।

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि।
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि॥[17]

अगर सचमुच वह ख़ुदा रब्बुल आलमीन है, हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों का कर्ता है और सबके अन्दर बैठा हुआ है तो एक मज़हब दूसरे मज़हब के लोगों और एक इनसान दूसरे इनसान के गले काटने की योजनाएँ कैसे बना सकता है या किसी की हत्या को सही कैसे कह सकता है? हम क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों को बड़ा समझते हैं, कुल मालिक को छोटा समझते हैं। हम अपने आपको उसके बनाये उसूलों के अधीन करने की बजाय उसे अपनी मर्ज़ी के अधीन करना चाहते हैं, इससे अधिक मूर्खतापूर्ण 'काले लेख' और क्या हो सकते हैं?

बाबा फ़रीद हमें सावधान करते हैं कि भले लोगो, अपने गिरेबान में झाँको, कुछ सोच-विचार और विवेक से काम लो। पहले तो यह सोचो कि कुल मालिक सिर्फ़ क़ादिर और राज़िक ही नहीं है, वह मुन्सिफ़ (न्याय-कर्ता) भी है। वह बग़ैर तअस्सुब (निष्पक्ष होकर) के इनसाफ़ करता है। जब हर कर्म का फल देर-सवेर ख़ुद भोगना पड़ता है तो पाप कर्मों से बचने में ही समझदारी है। जब अपनी ही छुरी है और अपनी ही गर्दन है तो अच्छा होगा कि छुरी को दूर ही फैंक दें। एक ओर परमात्मा में विश्वास रखना और दूसरी ओर मन को गुनाहों से नापाक करना कहाँ की समझदारी है? 'मैं खुदा में ईमान लाता हूँ' कह देना काफ़ी नहीं। ख़ुदा में ईमान लाने का असल भाव यह है कि उसे सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और न्यायकर्ता मानने के साथ-साथ सारी कयानात का क़ादिर, राज़िक और मालिक भी माने। ऐसी अवस्था में इनसान कायनात में किसी दूसरे का बुरा कैसे सोच सकता है, किसी का बुरा कैसे कर सकता है?

'काले लिखु न लेख'— काले लेख कहते हैं गुनाहों को, पापों को। गुनाह दो प्रकार के हैं। सृष्टि के किसी जीव, किसी व्यक्ति को दुःख, अज़ाब, कष्ट पहुँचाने का गुनाह और अपने क़ादिर, ख़ालिक, राज़िक और माबूदे-हक़ीक़ी (सच्चे इष्ट) को भूल जाने का गुनाह। इन दो तरह के गुनाहों को शैतान (काल) के विरुद्ध किये गए गुनाह और रहमान (दयाल) के विरुद्ध किये गए गुनाह कहा जाता है। हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं, 'जो दम ग़ाफ़िल सो दम काफ़िर, मुर्शिद एह पढ़ाया हू।'[18] पल-भर के लिये भी ख़ुदा को भुला देना

उस रहमानुल-रहीम, दयालु ख़ुदा के ख़िलाफ़ किया गया गुनाह है। यह गुनाह किसी दूसरे के नहीं हमारे अपने विरुद्ध है। हज़रत ईसा कहते हैं, "हे दयालु पिता, इनको और सज़ा न देना, ये पहले ही सज़ा भुगत रहे हैं।"* हम पहले ही सज़ा कैसे भुगत रहे हैं? हम परमात्मा से बिछुड़कर इस दुःखों की नगरी में भटक रहे हैं। कोई राजकुमार अपने पिता से बिछुड़कर दर-ब-दर ठोकरें खा रहा हो तो क्या वह पहले ही सज़ा नहीं भुगता रहा है? परमात्मा के वियोग में तड़प रही आत्मा को और कौन-सा कष्ट देने की ज़रूरत है? परमात्मा की ओर पीठ कर लेने के कारण हमने अपने आपको ख़ुद ही ऐसी सज़ा दे रखी है कि किसी दूसरे को हमें और सज़ा देने की ज़रूरत ही नहीं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'नामु न जपहि ते आतमघाती॥'[20] सबसे बड़ा पाप अपनी आत्मा को परमात्मा से दूर रखना है।

जहाँ तक शैतान या काल के विरुद्ध किये गए पाप का सम्बन्ध है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'खंड पताल दीप सभि लोआ॥ सभि कालै वसि आपि प्रभि कीआ॥'[21] कुल मालिक ने सारी सृष्टि पैदा करके इसका प्रबन्ध काल या शैतान के सुपुर्द किया हुआ है, जिसने यहाँ कर्म और फल का कानून लागू किया हुआ है। काल के पास जीवात्मा को संसार में क़ैद रखने का एक ही साधन आत्मा द्वारा किये गए अपने कर्म हैं। कर्म और फल का नियम ही आवागमन को जन्म देता है। जब तक आत्मा संसार में किये गए हर कर्म के प्रभाव से मुक्त नहीं होती, यह कभी भी काल के दायरे से बाहर नहीं जा सकती और परमात्मा से मिलाप नहीं कर सकती।

तीन प्रकार के कर्म

कर्म तीन प्रकार के हैं— मन के द्वारा किसी का बुरा सोचना, जिह्वा द्वारा किसी को बुरा कहना, शरीर के द्वारा किसी का बुरा करना। इन्हें मन, वचन और कर्म का पाप कहा जाता है। इसी प्रकार मन, वचन और कर्म से किसी का भला सोचना, किसी को भला कहना और किसी का भला करना, पुण्य है।

---

* He that believeth on him is not condemned : but he that believeth not is already condemned.[19]

हम संसार में जो भी पुण्य-पाप, अच्छे-बुरे कर्म करते हैं, उनको शैतान, काल या धर्मराय हमारे खाते में जमा करता जाता है और देर-सवेर दुःख या सुख के रूप में हर कर्म का फल देता है। जब हर कर्म का फल हम को ख़ुद ही भोगना पड़ता है, तो काले लेख क्यों लिखे जायें?

इस समस्या का इससे भी अधिक एक और भयानक पहलू है, जिसकी ओर शायद ही कोई जीव ध्यान देता हो। यह बात तो सहज ही समझ में आ सकती है कि जब अपने हर कर्म का फल ख़ुद हमें ही भोगना पड़ेगा तो पाप कर्मों से बचना चाहिये। सन्त-महात्मा इससे आगे जाते हैं। गुरु नानक साहिब का कथन है, 'मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥ केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥'[22] आप जप-तप, पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, पुण्य-दान, तीर्थ-व्रत आदि अनेक प्रकार के पुण्य कर्मों का ज़िक्र करते हुए इन्हें भी आत्मा को बन्धन में डालने वाली ज़ंजीरें कहते हैं।

यह बात खुले दिल से विचार करने योग्य है कि संसार के हर धर्म के मुल्ला, पादरी, पण्डित, भाई आदि पुण्य और नेक कर्म करने का प्रचार करते हैं। वे अपने-अपने धर्म के अनुयायियों के सामने स्वर्ग, बैकुण्ठ और जन्नत की प्राप्ति का आदर्श रखते हैं, जब कि कामिल दरवेश जीव के सामने सतलोक रूपी अमर-अनादि परम-धाम की प्राप्ति का ध्येय रखते हैं। स्वर्ग, बैकुण्ठ या जन्नत क्या हैं? ये वे स्थान हैं, जहाँ केवल इच्छा-मात्र द्वारा ही मन-चाहे भोग मिल जाते हैं। संसार में किये गए श्रेष्ठ कर्मों के फलस्वरूप इनसान को स्वर्गों में भेजा जाता है। जब श्रेष्ठ कर्मों का फल पूरा हो जाता है तो जीव को स्वर्गों से फिर इस मृत्युलोक में वापस भेज दिया जाता है।

स्वर्गों के सुख मृत्युलोक के सुखों से सूक्ष्म और अधिक समय तक रहनेवाले हैं, पर एक तरह से ये भी इन्द्रियों के भोगों के समान ही हैं। ये सुख प्रभु की प्राप्ति के परम आनन्द की तुलना में तुच्छ और निरर्थक हैं। अलग-अलग धर्मों के धर्म-ग्रन्थों में लिखित स्वर्गों का हाल पढ़ने से पता चलता है कि उनमें दूध और शहद की नदियों, अप्सराओं, कल्प-वृक्षों (इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला वृक्ष) आदि का ही वर्णन है। स्वर्गों के सुख भी असल में दुःख हैं, क्योंकि ये हमें परमात्मा के मिलाप के परम सुख से दूर रखने के

लिये शैतान, काल या धर्मराय द्वारा रचा गया प्रपंच हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि ये सुख स्थायी नहीं हैं। ये सांसारिक सुखों से अधिक समय रहनेवाले हैं, पर सांसारिक सुखों के समान ही नाशवान हैं। तीसरे, इनको भोगने के बाद आत्मा को मृत्युलोक में वापस आना पड़ता है। चौथे, ये सुख हमें कर्म-जाल से बाँधकर रखते हैं। इसलिये गुरु साहिब ने इनको 'केते बंधन जीअ के' यानी आत्मा को कर्म और फल के दायरे में क़ैद रखने वाले बन्धन कहा है।

शैतान या काल के पास केवल एक हथियार है, जिसे वह हमें इस रचना में क़ैद रखने के लिये हमारे विरुद्ध प्रयोग कर सकता है। वह हथियार है हमारे ख़ुद किये हुए कर्म— अच्छे भी और बुरे भी। काल या शैतान बहुत चतुर है। वह हरएक कर्म का फल देता है, अच्छे का अच्छा और बुरे का बुरा। सावधान रहने की ज़रूरत है कि अच्छे कर्म, बुरे कर्मों का नाश नहीं कर सकते। पुण्य, पुण्य कर्मों के लेखे में और पाप, पाप कर्मों के हिसाब में जमा होते हैं। पाप लोहे की बेड़ियाँ हैं, तो पुण्य सोने की, मगर दोनों ही आत्मा को रचना से बाँधकर रखने के लिये समान रूप में समर्थ हैं। हम जो भी कर्म करते हैं, वह हमें या तो परमात्मा के नज़दीक ले जाता है या दूर। ध्यानपूर्वक देखा जाये तो पता लगेगा कि पुण्य और पाप दोनों तरह के कर्म हमें परमात्मा से दूर ले जाते हैं क्योंकि इनका फल भोगने के लिये हम रचना से बँधे रहते हैं। साराँश यह है कि शैतान या काल हमारे किये हुए कर्मों के हथियार के सहारे हमें परमात्मा से दूर रखने और रचना से बाँधकर रखने की साज़िश में लगा हुआ है। सिवाय ख़ुदा की सच्ची भक्ति, नाम की कमाई, इस्मे-आज़म की साधना के, कोई दूसरा अमल कर्मों की ज़ंजीर को नहीं तोड़ सकता। कर्म, कर्म की जड़ नहीं काटता। केवल नाम की कमाई ही कर्मों का नाश करके आत्मा को परमात्मा से मिलाप के क़ाबिल बनाती है।

बाबा फ़रीद के कलाम को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो स्पष्ट संकेत मिलेगा कि आपने कहीं भी हज्ज, रोज़े, नमाज़, ज़कात आदि नेक अमलों को ख़ुदा से मिलाप का साधन नहीं माना। शरीअत और नेक कर्मों का मुख्य उद्देश्य हमारी वृत्ति को परमार्थी बनाना और हमें नेक-पाक जीवन व्यतीत करने में सहायता देना है। पर ख़ुदा से मिलाप का साधन उसका इश्क़ और उसका नाम है। जब

तक हम कर्मों के दायरे में हैं, पापों की जगह पुण्य कर्म करने चाहियें क्योंकि हर कर्म का फल हमें ख़ुद भोगना पड़ता है। पर कामिल दरवेशों की यह चेतावनी हमेशा याद रखनी चाहिये कि जहाँ तक अल्लाह-तआला से मिलाप का सम्बन्ध है, गुनाह और सवाब या पाप और पुण्य दोनों ही हमें उससे दूर रखने का कारण हैं। नेक अमल या सवाब रूहानियत की नींव है, पर इसका महल ख़ुदा का इश्क़, उसकी बन्दगी, इबादत या रिआज़त है, जिसे कामिल दरवेशों ने नाम की कमाई कहा है। नाम की कमाई ही हर प्रकार के कर्मों का नाश कर सकती है और यही रूह के ख़ुदा से विसाल का सामान तैयार कर सकती है।* इसलिये जीव को पाप कर्मों से भी बचकर रहना चाहिये और नाम की कमाई द्वारा पहले किये हुए कर्मों का नाश करने का प्रयत्न भी करना चाहिये।

---

* नाम की कमाई के सम्बन्ध में देखें अध्याय 'विसरिआ जिन्ह नामु' और 'नमाज़े-माअकूस।'

9. 'जो गुरु दसै वाट'

बाबा फ़रीद कहते हैं:

बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ॥
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥[1]

'बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ'—बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं कि झूठी दुनिया का मोह त्यागकर सच्चे परमात्मा से प्रेम करना और अधर्म का मार्ग छोड़कर धर्म के मार्ग पर चलना ज़रूरी है। 'जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ'—यह कार्य किसी मुर्शिद की सहायता से पूर्ण हो सकता है। धर्म और अधर्म का अन्तर समझने के लिये और अधर्म का मार्ग छोड़कर धर्म के मार्ग पर चलने के लिये ऐसे कामिल मुर्शिद की मदद चाहिये, जो ख़ुद यह सफ़र तय करके मंज़िल पर पहुँच चुका हो। हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं, 'मुर्शिद बाझों फ़क़र कमावे, विच कुफ़र दे बुड्डे हू।'[2] यानी कामिल मुर्शिद के बिना की गई बन्दगी कुफ़्र या अधर्म में शामिल है।

बाबा फ़रीद की तरह मुर्शिद की ज़रूरत की दृष्टि से गुरु अर्जुन देव जी ने भी दो बातों पर ज़ोर दिया है- (i) 'संत का मारगु धरम की पउड़ी को वडभागी पाए॥'[3] (ii) 'भूले कउ गुरि मारगि पाइआ॥ अवर तिआगि हरि भगती लाइआ॥'[4] भाव यह है कि हर तरह की इबादत रूह को ख़ुदा से नहीं मिला सकती और हर रास्ता ख़ुदा तक नहीं पहुँचा सकता। मुर्शिद रास्ता तय करके ख़ुदा से मिलाप कर चुका है। मुरीद भी मुर्शिद के बताये हुए मार्ग पर चल कर ही मंज़िल पर पहुँच सकता है। सूफ़ीमत या सन्तमत जीवात्मा को मनचाही इबादत से हटाकर ख़ुदा को मंज़ूर सच्ची इबादत से जोड़ता है।

'जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ' का दूसरा पहलू यह है कि साधक का यत्न केवल गुरु द्वारा बताये गए परहेज़ों और अभ्यास तक ही सीमित नहीं है। उसका सम्बन्ध अन्दरूनी सफ़र तय करने से भी है। यह सफ़र जिस्मानी नहीं,

रूहानी है। आन्तरिक मार्ग गुप्त है, इस मार्ग पर सफ़र का साधन भी गुप्त है और अन्दर की मंज़िल भी गुप्त है। आन्तरिक मार्ग की रुकावटें और कठिनाइयाँ अति सूक्ष्म और जटिल हैं, इसलिये सिर्फ़ ऐसा कामिल मुर्शिद ही इस राह पर जीव की रहनुमाई कर सकता है, जो ख़ुद रास्ता तय करके मंज़िल पर पहुँच चुका हो। मौलाना रूम का कथन है, "नूरानी शेख़ (मुर्शिद) रास्ते से वाक़िफ़ करवाता है और अपनी तालीम के साथ नूर भी देता है।"* वह ख़्वाजा जो ख़ुद ख़ुदा के इश्क़ की मंज़िल पर नहीं पहुँचा, वह दूसरे को उस मंज़िल का रास्ता कैसे दिखा सकता है।† गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'दीपक ते दीपकु परगासिआ त्रिभवण जोति दिखाई॥'[7] मुरीद की सोई हुई रूह, मुर्शिद की जाग्रत रूह के स्पर्श से जाग उठती है। हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं, 'की होया जे रातीं जागें, मुर्शिद जाग न लाई हू।'[8] अपनी बुद्धि से रात को जाग कर इबादत करने से, न ही रूह की ऊपर की ओर चढ़ाई शुरू होती है और न ही इसका ख़ुदा से विसाल होता है। जब हम किसी से जाग लेकर दूध को लगा देते हैं, तो दूध दही में बदल जाता है। फिर उसी दही में से मक्खन भी निकाल लेते हैं और घी भी प्राप्त कर लेते हैं। जब से रचना बनी है, न कोई जीव बिना मुर्शिद की सहायता से ख़ुदा से विसाल कर सका है और न कर ही सकेगा। इसका कारण बाबा फ़रीद आगे बयान करते हैं।

'करि किरपा प्रभि'

करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥
जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥[9]

'काली कोइल तू कित गुन काली' नामक अध्याय में देखा जा चुका है कि ख़ुदा द्वारा संसार की रचना किये जाने से पहले, रूह उसमें अभेद थी। रचना के समय से ही यह उस कर्ता के हुक्म से इस रचना में आ गई है। इसके सब दुःखों का मूल कारण अपने स्रोत का वियोग है। यह अपने देश वापस पहुँचकर ही सच्चा सुख प्राप्त कर सकती है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि

* शैख़े-नूरानी ज़ि रहि आगाह कुनद। बा-सुख़न हम नूर रा हमराह कुनद।[5]

† ख़ामाने-रहि नरुफ़्ता चिह दानंद ज़ौके-इश्क़।[6]

प्रभु के हुक्म से संसार रूपी अन्धे कुएँ में गिरी बेसहारा और निर्बल आत्मा इस कुएँ में से कैसे निकल सकती है और वापस अपने देश पहुँचकर अपने प्रीतम से कैसे मिल सकती है? 'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली। जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥' उस प्रीतम से मिलाप का केवल यही एक साधन है कि वह ख़ुद रहमत करके इसका किसी कामिल मुर्शिद से मिलाप करवा दे। यहाँ बाबा फ़रीद यह गूढ़ रहस्य खोल रहे हैं कि जीव ख़ुद ख़ुदा से नहीं मिलता, ख़ुदा ही जीव को अपने साथ मिलाता है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं, 'अपणे जीअ तै आपि सम्हाले आपि लीए लड़ि लाई॥'[10] 'जिस के जीअ तिनि कीए सुखाले भगत जना कउ साचा ताणु॥'[11] जिस परमेश्वर ने जीव पैदा किये हैं, वह ख़ुद उनका सहारा बन कर उनको रचना से मुक्त करता है। वह उनको मुक्त कैसे करता है? 'प्रभि साधसंगि मेली'— जिस जीव को वह अपने साथ मिलाना चाहता है, उसे पूर्ण साधु से मिला देता है। 'जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली'— जब पूर्ण साधु मिल जाता है, तो परमेश्वर भी मिल जाता है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

अंध कूप ते काढनहारा॥ प्रेम भगति होवत निसतारा॥
साध रूप अपना तनु धारिआ॥ महा अगनि ते आपि उबारिआ॥[12]

'साधसंगि मेली'

'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली'— साधु की संगति में जीव को आत्मा और परमात्मा के असल रिश्ते का ज्ञान होता है; उसे शरीर, संसार और इसके शक्लों-पदार्थों की असलियत का ज्ञान होता है; जीव को ख़ुदा द्वारा संसार में भेजे जाने का असल राज़ समझ में आता है और मनमर्ज़ी की झूठी भक्तियों और परमात्मा द्वारा अपने साथ मिलाप के लिये स्वयं मंज़ूर की गई सच्ची भक्ति का फ़र्क समझ में आता है। परमात्मा के सच्चे भक्तों की संगति में ही जीव को ख़ुदा की इबादत के असली तरीक़े का पता लगता है और ऐसा माहौल मिलता है, जिसमें वह अन्तर्मुख रूहानी सफ़र तय करने की कोशिश करता है। साधु या वली-अल्लाह की सोहबत में ही रूहानियत की शुरुआत होती है और यह सोहबत ही रूहानियत में पूर्णता की प्राप्ति का साधन बनती

है। यही वजह है कि मौलाना रूम इशारा करते हैं कि वली-अल्लाह की घड़ी, दो घड़ी की सोहबत, मन-बुद्धि की सौ साल की बन्दगी से बेहतर है।*

'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥'

इस पंक्ति के दो तरह से अर्थ किये जा सकते हैं:

1. जब परमात्मा ने कृपा करके साधु से मिला दिया तो मैं (आत्मा) क्या देखती हूँ कि मेरा दोस्त अल्लाह (बेली) मुझे मिल गया है।
2. जब परमात्मा ने कृपा करके साधु से मिला दिया तो मैं (आत्मा) क्या देखती हूँ कि यह तो मेरा बेली अल्लाह ही है।

ये दोनों अर्थ सतही या ऊपरी स्तर से अलग-अलग मालूम हो सकते हैं, पर वास्तव में दोनों ही यह सरल-सा भाव प्रकट कर रहे हैं कि कामिल मुर्शिद का मिलाप ख़ुदा के मिलाप का कारण बनता है और कामिल मुर्शिद असल में ख़ुदा का ही रूप होता है।

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥[14]

यहाँ बाबा फ़रीद कामिल दरवेश के बारे में कुछ बहुत ख़ूबसूरत इशारे कर रहे हैं:

1. कामिल दरवेश ख़ुदा के इश्क़ की जीती-जागती तस्वीर होता है। उसके अन्दर ख़ुदा की मुहब्बत इस तरह समाई होती है कि उसके मन में दुनिया की मुहब्बत के लिये कोई जगह ही नहीं होती। जो लोग मुँह से ख़ुदा के आशिक़ होने का दावा करते हैं, मगर उनके मन में दुनिया की प्रीति समाई होती है, वह सच्चे दरवेश कहलवाने के हक़दार नहीं हैं।
2. सच्चे दरवेश को ख़ुदा के इश्क़ और ख़ुदा के दीदार के सिवाय किसी दूसरी चीज़ की तमन्ना नहीं होती। वह हमेशा ख़ुदा के नाम के रंग में मस्त रहता है। जिसके हृदय में ख़ुदा और उसके नाम का इश्क़ नहीं है, वह सच्चा दरवेश नहीं है, वह तो धरती पर बोझ है।

* यक ज़माना सोहबते-बा औलीआ। बेहतर अज़ सद साला ताअत-बे-रिया।[13]

3. जिसे ख़ुदावंद करीम ने अपनी रहमत से अपने साथ मिला लिया है, वह सच्चा दरवेश ख़ुद भी धन्य है, उसकी माता भी धन्य है और उसका संसार में आना भी धन्य है। स्पष्ट है कि दरवेशी ख़ुदा की मुहब्बत और ख़ुदा के नाम से हासिल होती है। मगर इसके लिये ख़ुदा की रहमत ज़रूरी है। बिना ख़ुदावंद करीम की रहमत के और बिना ख़ुदा के इश्क़ और ख़ुदा के नाम की कमाई के कोई भी सच्चा दरवेश नहीं बन सकता। इसी बात को दूसरी तरह देखें तो यह कह सकते हैं कि जिस पर ख़ुदा की रहमत होती है, उसका ही सच्चे दरवेश से मिलाप होता है और जिसका सच्चे दरवेश से मिलाप होता है उसे ही ख़ुदा के इश्क़ और ख़ुदा के नाम की कमाई की दौलत नसीब होती है।

'आइ उलथे हंझ'

कुल मालिक, मालिक की ही दया-मेहर से मिलता है, पर मिलता है किसी साधु के ज़रिये। किस प्रकार के साधु या मुर्शिद के ज़रिये? इस बारे में बाबा फ़रीद अपने श्लोकों में कई सूक्ष्म संकेत करते हैं:

कलर केरी छपड़ी आइ उलथे हंझ॥
चिंजू बोड़न्हि ना पीवहि उडण संदी डंझ॥[15]

'आइ उलथे हंझ' अत्यन्त भावपूर्ण महावाक्य है। 'हंझ' का मतलब हंस है; 'उलथे' का अर्थ है उतरे। कहा जाता है कि हंस मानसरोवर से आता है। वह दूध जैसा सफ़ेद होता है। इसी प्रकार कामिल दरवेश मुक़ामे-हक़ या सतलोक से इस मायावी संसार (कलर केरी छपड़ी) में जन्म लेते हैं। उनकी आत्मा, मन और माया की मलिनता से पूरी तरह मुक्त होती है। वे इस जगत में मायावी भोग भोगने के लिये नहीं, कुल मालिक की ओर से सौंपा गया कार्य पूरा करने के लिये उतरते हैं।

कामिल दरवेश आम जीवों की तरह कर्मों से बँधकर संसार में नहीं आते। वे कुल मालिक के हुक्म से काल (शैतान) और माया द्वारा कर्मों के जाल में बँधे हुये जीवों को छुड़ाने के लिये सतलोक से इस लोक में उतरते हैं। कामिल दरवेश निराकार प्रभु की दया का साकार रूप होता है। एक राजा जेल में जाता है। वह वहाँ क़ैदी नहीं होता, बल्कि क़ैदियों पर दया करके उनको

जेल से आज़ाद करने का हुक्म दे देता है। इसी तरह वह कर्ता, कामिल दरवेश का रूप धारण करके इस रचना में आता है तो रहमत का रूप होकर विचरता है तथा जीवों को रचना से मुक्त करके अपने साथ मिलाने का कार्य करता है।

हंसु उडरि कोध्रै पइआ लोकु विडारणि जाइ॥
गहिला लोकु न जाणदा हंसु न कोध्रा खाइ॥[16]

'उडरि' शब्द भी वली-अल्लाह या सन्त द्वारा मुक़ामे-हक़ से उड़ान भर कर मृत्युलोक में आने का भाव प्रकट करता है। कामिल मुर्शिद का एक पाँव दुनिया में और दूसरा कुल मालिक की दरगाह में होता है। लोग डरते हैं कि कहीं सन्त-महात्मा हमारी धन-दौलत न छीन लें। अज्ञानी लोग यह समझने की कोशिश नहीं करते कि कामिल मुर्शिद मायावी पदार्थों की परवाह नहीं करते। वे किसी से कोई सेवा, भेंट या दक्षिणा नहीं लेना चाहते। वे तो केवल अपने कर्ता के हुक्म का पालन करने के लिये संसार में आते हैं। जिन आत्माओं को चिताने का कार्य कुल मालिक किसी कामिल मुर्शिद को सौंपते हैं, उस कार्य को पूरा करके वह दरवेश इस झूठी दुनिया से सच्चे निज-घर वापस चला जाता है। 'उडण संदी डंझ'— कामिल दरवेश दुनिया में रहता है, पर दुनिया का होकर नहीं। उसके अन्दर हमेशा अपने असल देश वापस जाने की तड़प समाई रहती है। आप उपदेश देना चाहते हैं कि केवल वही पीर, मुर्शिद या साधु रूह का ख़ुदा से विसाल करवा सकता है, जो सीधा मुक़ामे-हक़ से उतरा हो या अपने मुर्शिद की दया-मेहर से अपनी रूह कुल मालिक में जज़्ब कर चुका हो।

परमार्थी साहित्य में एक दृष्टान्त आता है कि किसी बादशाह ने अपने वज़ीर से पूछा कि मैं बन्धन-मुक्त कैसे हो सकता हूँ? वज़ीर तो उसका जवाब न दे सका पर वज़ीर की बेटी ने राजा और मन्त्री दोनों के हाथ-पैर वृक्ष से बाँधकर उनसे कहा कि आप एक-दूसरे को आज़ाद करो। वे ऐसा न कर सके। वज़ीर की बेटी ने दोनों की रस्सी खोलते हुए कहा कि आपके प्रश्न का उत्तर यही है कि जो ख़ुद बँधा हुआ हो, किसी दूसरे के बन्धन नहीं खोल सकता; कोई बन्धन-रहित ही किसी बँधे हुए को बन्धन-मुक्त कर सकता है। इसी भाव को कबीर साहिब प्रकट करते हैं:

बंधे को बंधा मिले, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय॥[17]

बाबा फ़रीद ने 'करि किरपा' के साथ 'प्रभि साधसंगि मेली' का भाव जोड़ा है। मौलाना रूम कहते हैं कि औलिया-ए-अल्लाह (सन्त-जन) वे पाक रूहें हैं जो धुर-धाम से आकर शरीर के पिंजरे में क़ैद होकर मृत्युलोक की रूहों को वापस ख़ुदा के पास ले जाने का व्यापार करती हैं।* तुलसी साहिब समझाते हैं कि कामिल दरवेश सतलोक से परमात्मा के नाम का मेवा मृत्युलोक में लानेवाले और मृत्युलोक की आत्माओं को सतलोक वापस पहुँचाने वाले व्यापारी हैं:

ऐसे हृदय संत सुभावा। भौजल पार लगावें थावा॥
जहाज़ सुरत उनकी नित चालें। समुंदर पार भरावें मालें॥
भरति भरें सुरत की डोरी। पहुँचे पार जहाज़ को छोड़ी॥
माल वलायत में जा बेचें। मेवा आन ख़रीदें खैंचें॥[19]

जौहरी हीरों का व्यापार करता है, कोयले का नहीं। कामिल दरवेश का काम सिर्फ़ ख़ुदा से बिछुड़ी रूहों को ख़ुदा की इबादत के ज़रिये उससे विसाल करने में मदद करना होता है। इससे छोटा कोई मक़सद, उनकी शान के अनुकूल नहीं होता।

'होनि नजीकि खुदाइ दै'

सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेन्हि॥
होनि नजीकि खुदाइ दै भेतु न किसै देनि॥[20]

'सबर अंदरि साबरी'— कुल मालिक के सच्चे भक्त सन्तोष की मूर्ति होते हैं। 'तनु एवै जालेन्हि'— अपना तन इस तरह जला देना काव्यमय वर्णन है। आप समझाना चाहते हैं कि कामिल दरवेश सब्र-शुक्र से काम लेते हुए अपना आप ख़ुदावंद करीम की इबादत के लेखे लगा देते हैं। दरवेश होना जवानी की मौत मरना है। सब्र और रज़ा से बड़ी कोई तपस्या नहीं क्योंकि तन को मारना सरल है, पर मन को मारना कठिन है। दरवेश अपने नफ़्स (मन) को जलाकर अपना वजूद उस क़ादिर में फ़ना कर देता है।

---

* चीस्त रूह आं ताइरे क़ुदसी सिफ़त, दरकफ़स महबूब बहिरे-मारिफ़त।
आमदा बहरे-तजारत अज़ अदम, रू बदां सू बाशद ऊ रा दम बदम।[18]

बाबा फ़रीद के यह वचन ऊपर दिये जा चुके हैं, 'आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से' और 'जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली।' कुल मालिक अपनी दया-मेहर द्वारा अपने सच्चे भक्तों को अपनी दरगाह में दाख़िल करके उन्हें अपने सच्चे दोस्त (बेली) बना लेता है। पलटू साहिब कहते हैं, 'राम के घर के बीच काम सब संतै करते।'[21] गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं, 'रूड़ो ठाकुरु कितै वसि न आवै॥ हरि सो किछु करे जि हरि किआ संता भावै॥'[22] वह सुन्दर, बेपरवाह, अगम, अथाह ठाकुर अपने सन्तों और भक्तों के वश में होता है। उसके सन्त उससे जो चाहें करवा सकते हैं, 'अनिक रंग करहि बहु भाती जिउ पिता पूतु लाडाइदा॥'[23] जैसे पिता अपने प्यारे पुत्र की हर बात प्रेमपूर्वक मान लेता है, उसी तरह परमात्मा अपने पुत्र समान भक्तों की कही हर बात पूरी कर देता है।

'होनि नजीकि खुदाइ दै भेतु न किसै देनि॥' बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि कामिल मुर्शिद अथाह रूहानी शक्ति के मालिक होने के बावजूद नम्रता के पुँज होते हैं। वे कभी अपनी रूहानी शक्ति का दिखावा नहीं करते। गुरु तेग़ बहादुर साहिब से कहा गया कि करामात दिखाओ या क़त्ल हो जाओ। गुरु गोबिन्द सिंह जी लिखते हैं, 'सीस दीओ पर सिरर न दीओ'।[24] 'सिरर' फ़ारसी शब्द है, जिसका अर्थ है, राज़, भेद या रहस्य। गुरु साहिब ने सीस दे दिया, पर अपनी अनुपम रूहानी अवस्था का भेद प्रकट न किया। भीखा साहिब की वाणी है, 'भीखा बात अगम की, कहन सुनन में नाहिं। जो जाने सो कहे ना, कहे सो जाने नाहिं॥'[25] कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

राम पदारथु पाइ कै, कबीरा गांठि न खोल्ह॥
नही पटणु नही पारखू, नही गाहकु नही मोलु॥[26]

'मति होदी होइ इआणा'

मति होदी होइ इआणा॥ ताण होदे होइ निताणा॥
अणहोदे आपु वंडाए॥ को ऐसा भगतु सदाए॥[27]

आप पिछले श्लोक में प्रकट किये गए भाव का ही दूसरी तरह से बयान करते हुए कहते हैं कि सबसे ऊँचे रूहानी ज्ञान के मालिक होने के बावजूद

कामिल मुर्शिद भोले-भाले बने रहते हैं। सात समुद्र पीकर भी उनके होंठ ख़ुश्क रहते हैं। 'कहु कबीर छूछा घटु बोलै॥ भरिआ होइ सु कबहु न डोलै॥'[28]

'ताण होदे होइ निताणा॥' गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'गुरु करता गुरु करणै जोगु॥ गुरु परमेसरु है भी होगु॥'[29] 'ब्रहम गिआनी सगल की रीना॥'[30] कामिल मुर्शिद उस कर्तापुरुष में समाकर उसका ही रूप बन जाता है, पर वह संसार में बिलकुल निमाणा, बल-हीन और आजिज़ बनकर रहता है। नम्रता कामिल दरवेश का सच्चा श्रृंगार है। पूर्ण नम्रता, पूर्ण दरवेश की सबसे बड़ी पहचान है।

'अणहोदे आपु वंडाए॥ को ऐसा भगतु सदाए॥'— कामिल मुर्शिद सच्चा परोपकारी होता है। 'वंडाए'— वह कुछ बाँटने और कुछ देने के लिये आता है, लेने के लिये नहीं। वह दाता होता है, भिखारी नहीं। वह परोपकार की मूर्ति होता है। सारा संसार स्वार्थी है। केवल परमात्मा का भक्त ही परमात्मा की तरह निस्वार्थ होता है। वह सांसारिक धन भी दूसरों के साथ बाँटकर इस्तेमाल करता है और कड़ी मेहनत से इकट्ठी की हुई अपनी परमार्थी पूंजी भी दोनों हाथों से मुफ़्त लुटाता है।

बाबा फ़रीद के जीवन वृत्तान्त में पढ़ चुके हैं कि आपने कितनी अधिक तपस्या की, किस तरह भूखे रहकर, रातों को जागकर परमात्मा की भक्ति का भण्डार इकट्ठा किया। वह भण्डार आपने केवल दया और परोपकार की भावना से लोगों में बाँटा। जगत का कर्ता मनुष्य को बख़्शी अपनी अनन्त दातों का कोई मोल नहीं माँगता। अपने आपको कुल मालिक में अभेद कर चुका कामिल मुर्शिद भी इनसानों को ख़ुदा की सच्ची इबादत की युक्ति सिखाने का कोई मूल्य नहीं लेता। वह केवल दया और उपकार की भावना से लोगों की सेवा करता है। परमात्मा का भक्त दीन, दुखियों और बेसहारों का सहारा होता है। लोगों का दुःख उसका दुःख होता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'ब्रहम गिआनी परउपकार उमाहा॥'[31] परमात्मा से अभेद हो चुके साधु, भक्त या दरवेश की एकमात्र इच्छा दूसरे जीवों को अपने जैसी ऊँची और निर्मल अवस्था का अधिकारी बनाना होता है। संसार का कोई दूसरा परोपकारी इस तरह का ऊँचा और निर्मल उपकार नहीं कर सकता।

'बारि पराइऐ बैसणा'

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि॥
जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि॥[32]

बाबा फ़रीद के अनुसार कामिल मुर्शिद वह है जो एक ख़ुदा के सिवाय किसी दूसरे के आसरे न हो। दरवेश इलाही दौलत का दाता होता है, दुनियावी चीज़ों का भिखारी नहीं। अगर कोई दरवेश होने का दावा करे, पर अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिये अमीरों, वज़ीरों या बादशाहों के पास रुपये-पैसे के लिये जाये तो समझ लो कि वह दरवेश नहीं है।*

बाबा फ़रीद के प्रमुख शिष्य और जानशीन हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया फ़रमाया करते थे कि बाबा फ़रीद घण्टों तक खजूर के पत्तों के थैले बुनते रहते थे। ज़ंबील की आय से उनके लिये दो रोटियाँ बनाई जाती थीं। आप एक रोटी के बहुत-से टुकड़े करके, उस समय हाज़िर लोगों में बाँट देते और एक रोटी आप ख़ुद खा लेते। कई बार इस एक रोटी में से भी आधी या चौथाई लोगों में बाँट देते थे।† गुरु अमरदास जी कहते हैं:

दरवेसी को जाणसी विरला को दरवेसु॥
जे घरि घरि हंढै मंगदा धिगु जीवणु धिगु वेसु॥
जे आसा अंदेसा तजि रहै गुरमुखि भिखिआ नाउ॥
तिस के चरन पखालीअहि नानक हउ बलिहारै जाउ॥[33]

इनसान भीख माँगने और ख़ास तरह के वस्त्र धारण करने से नहीं, मन को ख़ुदा के इश्क़, ख़ुदा के नाम के रंग में रँगने से सच्चा दरवेश बनता है।

'खड़ा पुकारे पातणी'

फरीदा डुखा सेती दिहु गइआ सूलां सेती राति॥
खड़ा पुकारे पातणी बेड़ा कपर वाति॥[34]

'खड़ा पुकारे पातणी'— कामिल मुर्शिद दयालु और बख़्शिन्द होते हैं। संसार के लोगों को दु:खों की चक्की में पिसता देखकर सन्त-महात्मा उन पर तरस

* विस्तार के लिये देखें: हसत बहिशत-उस्त-औलिया, पृ. 151

† विस्तार के लिये देखें: शबीर हसन चिश्ती निज़ामी, बाबा फ़रीद गंज शक्कर, पृ. 451

खाकर उनको सावधान करते हैं कि तुम्हारे जीवन का बेड़ा बुरी तरह भँवर में फँसा हुआ है—'बेड़ा कपर वाति'। तुम जल्दी से जल्दी बेड़े के बचाव के लिये सामान तैयार करो। पर कामिल मुर्शिद जीव को आनेवाले संकट से सावधान करके ही चुप नहीं हो जाते, वे इस संकट का हल भी बताते हैं जिसके बारे में बाबा फ़रीद अगले श्लोक में संकेत करते हैं:

लंमी लंमी नदी वहै कंधी केरै हेति॥
बेड़े नो कपरु किआ करे जे पातण रहै सुचेति॥[35]

आप कहते हैं कि संसार रूपी सागर की थाह पा सकना नामुमकिन है। इसकी तूफ़ानी लहरें ज़िन्दगी का किनारा (कंधी) ढाहने में लगी हुई हैं। जीवात्मा का इसमें डूब जाना क़ुदरती और यकीनी है। 'जे पातण रहै सुचेति'— अगर मल्लाह (पातण) होशियार (सुचेति) हो तो विकराल समुद्र और इसके भयानक तूफ़ान भी जीवात्मा की नाव का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। बिना होशियार मल्लाह के बेड़ा समुद्र से पार नहीं जा सकता। आपका भाव है कि भवसागर से पार जाने के लिये कामिल मुर्शिद की मदद ज़रूरी है। गुरु नानक साहिब भी कहते हैं:

पतणि कूके पातणी वंञहु ध्रुकि विलाड़ि॥
पारि पवंदड़े डिठु मै सतिगुर बोहिथि चाड़ि॥[36]

अपनी कोशिश से ख़ुद संसार रूपी समुद्र से पार जाने की अज्ञानता के कारण गोते खा रहे लोगों के लिये चेतावनी है कि अगर पार जाना चाहते हो तो दौड़कर सतगुरु रूपी खेवट (मल्लाह) के बेड़े में चढ़ जाओ। सूफ़ी दरवेश शाह हुसैन का कलाम है:

1. नदीओं पार मुलक सज्जन दा लहर लोभ ने घेरी।
   सतगुरु बेड़ी फड़ी खलोते तैं क्यों लाईआ देरी।[37]
2. नदीओं पार रांझन दा ठाणा। कीता कौल ज़रूरी जाणा।
   मिणतां करां मलाह दे नाल।[38]

'मैं जाणिआ वड हंसु है'

मैं जाणिआ वड हंसु है तां मै कीता संगु॥
जे जाणा बगु बपुड़ा जनमि न भेड़ी अंगु॥[39]

आपने 'हंसु' शब्द दरवेश, वली-अल्लाह, साधु या सन्त के लिये प्रयोग किया है। 'वड हंसु' का अर्थ परम सन्त, पूर्ण सन्त या कामिल मुर्शिद है। आप कहते हैं कि सिर्फ़ कामिल मुर्शिद या पूर्ण सन्त का संग करना चाहिये, अधूरे, भेषी या दम्भी साधु के निकट भूलकर भी नहीं जाना चाहिये।

'फरीदा गलीं सु सजण वीह इकु ढूंढेदी न लहां॥'[40] कबीर साहिब कहते हैं, 'तेरा जनु एकु आधु कोई॥'[41] गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'कोटि मधे कोई संतु दिखाइआ॥ नानकु तिन कै संगि तराइआ॥'[42] संसार में सच्चे सन्त थोड़े हैं और बगुले-भक्त अनेक हैं। बगुला एक टाँग पर खड़ा होकर भक्त होने का पाखण्ड करता है तो संसार में अनेक दम्भी साधु या दरवेश जप-तप, पूजा-पाठ, ग्रन्थों-शास्त्रों के ज्ञान, हठ-कर्मों की कठोर साधना आदि का आडम्बर रच कर जीवों को अपनी ओर खींचते हैं। जिस तरह बगुले की नज़र सदा मछली पर रहती है, उसी प्रकार इन अधूरे, दम्भी या कपटी साधुओं का ध्यान शिष्यों की धन-दौलत और सांसारिक मान-बड़ाई पर होता है। बाबा फ़रीद के अनुसार कभी भूले-भटके भी ऐसे पाखण्डी मुर्शिदों के निकट नहीं जाना चाहिये।

हंसा देखि तरंदिआ बगा आइआ चाउ॥
डुबि मुए बग बपुड़े सिरु तलि उपरि पाउ॥[43]

बाबा फ़रीद समझाते हैं कि कामिल दरवेशों की देखा-देखी बगुले-भक्त भी अपनी ताक़त से भवसागर से तरने की कोशिश करते हैं, पर वे ग़ोते खाते हुए इसमें ही डूबकर मर जाते हैं। वे ख़ुद तो डूबते ही हैं, उनका सहारा लेनेवाले उनके मुरीद भी साथ ही डूब जाते हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं:

1. बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ॥
   जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥[44]
2. छैल लंघंदे पारि गोरी मनु धीरिआ॥
   कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ॥[45]

आपने ऊपर दिये गए श्लोक में सच्चे गुरु और पीर की 'वड हंसु' कहकर सराहना की है। यहाँ आप कामिल मुर्शिद को 'छैल' कह रहे हैं। 'छैल' के

शाब्दिक अर्थ हैं— बाँका, जवान, शक्तिमान। 'गोरी मनु धीरिआ'— आप समझाते हैं कि संसार में जो जीवात्माएँ समर्थ सन्तों पर भरोसा करके भवसागर पार करने का साहस करती हैं, वे अपनी कोशिश में सफल भी हो जाती हैं। 'कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ' वे जीवात्माएँ जिनका सारा ध्यान सोने (कंचन) भाव संसार की ओर (वंने) रहता है, उनकी क्या दशा होती है। 'कलवति चीरिआ'— उनको आरे से चीरा जाता है भाव वे मौत के बाद नरकों में अनेक कष्ट सहती हैं। बाबा फ़रीद इसी शब्द में आगे संकेत करते हैं:

जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किंनि गए॥
जालण गोरां नालि उलामे जीअ सहे॥[46]

'खेवट' का अर्थ है मल्लाह। पूर्ण सन्त सच्चे नाविक और बड़े तैराक़ हैं, पर संसार में ऐसे बनावटी या तथाकथित लोगों की भी कमी नहीं जो सच्चे मल्लाह या 'खेवट' होने का दावा करते हैं, पर वास्तव में वे न ख़ुद भवसागर से पार जा सकते हैं और न ही किसी दूसरे को पार लगा सकते हैं। मौत के बाद ऐसे अधूरे, कच्चे या भेषी साधुओं की क्या हालत होती है? 'जालण गोरां नालि उलामे जीअ सहे'— उनके शरीर तो क़ब्रों में दबाये जाते ही हैं, उनकी आत्मा को भी किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। आपका भाव है कि अधूरा गुरु तो ख़ुद ही कर्मों के बन्धन में है, वह किसी दूसरे की मुक्ति का साधन कैसे बन सकता है।

इस चर्चा से स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद ने एक ओर इस बात पर ज़ोर दिया है कि मुर्शिद कामिल होना चाहिये और दूसरी ओर यह समझाने की कोशिश की है कि वह कुल मालिक ख़ुद कामिल मुर्शिद का रूप धारण करके आत्मा के उद्धार के लिये संसार में आता है।

साईं बुल्लेशाह संकेत करते हैं, 'बिन मुर्शिद कामल बुल्लिया तेरी ऐंवें गई इबादत कीती'[47], आपका भाव है कि मन-बुद्धि से की गई भक्ति कभी किसी को परमात्मा से मिलाप की मंज़िल पर नहीं पहुँचा सकती। परमात्मा से मिलाने वाली सच्ची भक्ति का ज्ञान केवल वक़्त के कामिल मुर्शिद से मिलता है। आप दूसरा संकेत यह देते हैं कि मुर्शिद को इनसान समझना ग़लती है।

वक़्त के मुर्शिद के ज़रिये दरअसल वह दयालु प्रभु ख़ुद जीवात्मा के उद्धार के लिये संसार में प्रकट होता है।

1. रांझा जोगीड़ा बन आया, वाह सांगी सांग रचाया।[48]
2. चूचक दा उस चाक सदाया, ओह आहा साहिब सफ़ाई।[49]
3. मौला आदमी बण आया।[50]
4. लोकां दे भाणे चाक चकेटा साडा रब ग़फ़ूर।[51]

हज़रत सुलतान बाहू फ़रमाते हैं:

1. बाझ मुरब्बी किसे न लद्धी, गुज्झी रमज़ अन्दर दी हू।[52]
2. मुर्शिद कामिल ओह मिलया, जिस दिल दी ताकी लाही हू।
   मैं क़ुरबान उस मुर्शिद तों, जिस दसया भेत इलाही हू।[53]
3. बाझों मुर्शिद कामिल बाहू, होंदी नहीं तसल्ला हू।[54]

आप समझा रहे हैं कि कामिल मुर्शिद आन्तरिक राज़ का जानकार होता है। उसे ख़ुदा की निकटता प्राप्त होती है। ऐसे मुर्शिद के बिना न तो कोई आन्तरिक भेद समझा सकता है और न ही ख़ुदा का दीदार करवा सकता है। पूरी तसल्ली जब भी होती है, कामिल मुर्शिद के ज़रिये होती है।

ज़िन्दा मुर्शिद का हाथ पकड़ो

यह बात कहने की ज़रूरत नहीं कि मुर्शिद से बाबा फ़रीद का भाव वक़्त के ज़िन्दा मुर्शिद से है। आपको जो कुछ मिला अपने मुर्शिद की रहमत से मिला और आपने शरीर त्यागने से पहले हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को अपना जानशीन मुक़र्रर किया। सूफ़ियों के सभी सिलसिलों में पीर-दर-पीर गद्दी चलती है और कामिल मुर्शिद जीते-जी अपनी जगह अपने किसी मुरीद को मुर्शिद स्थापित करके जाता है।

बाबा फ़रीद की चिश्ती सिलसिले को देन के प्रसंग में देख चुके हैं कि बाबा फ़रीद के एक बेटे ने आपके मुर्शिद बख़्तियार काकी के मज़ार पर जाकर ऐलान कर दिया कि मैं हज़रत काकी से बैअत (दीक्षित) हो गया हूँ। इस बात का पता लगने पर बाबा फ़रीद ने कहा कि बैअत होने का यह तरीक़ा सही

नहीं। मुरीद को जीवित मुर्शिद का हाथ पकड़ना चाहिये।* बाबा फ़रीद के श्लोकों के साथ शामिल अपने एक श्लोक में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

फरीदा भूमि रंगावली मंझि विसूला बाग॥
जो जन पीरि निवाजिआ तिंन्हा अंच न लाग॥[56]

'जो जन पीरि निवाजिआ तिंन्हा अंच न लाग॥' 'निवाजिआ' से संकेत मिलता है कि मुर्शिद मुरीद को अपनी रहमत से निवाज कर उसे अपनी पनाह (शरण) में ले लेता है। मुरीद, मुर्शिद का चुनाव नहीं करता। मुर्शिद जिसे चाहता है, अपना मुरीद बनाता है। मुरीद का चयन भी मुर्शिद करता है और उसे रहमत का पात्र भी वह ख़ुद बनाता है। यह तभी हो सकता है जब मुरीद और मुर्शिद दोनों एक समय एक-दूसरे के सामने मौजूद हों। जिसे हम मुर्शिद धारण करना चाहते हैं, जब तक वह हमें अपना मुरीद मंज़ूर नहीं करता, रिश्ता क़ायम नहीं होता। जब हम अपनी धारणा के अनुसार पिछले समय के किसी वली, पैग़म्बर, गुरु, पीर या अवतार को अपना पथ-प्रदर्शक, रक्षक या मुर्शिद मानते हैं तो हमें उस वली, गुरु, पीर या अवतार से कोई स्वीकृति नहीं मिलती। हम अपनी ख़ुशी के लिये जिसे मर्ज़ी अपना रहबर (मार्ग-दर्शक) मानते रहें, पर जब तक दूसरी ओर से स्वीकृति नहीं मिलती, हमें कोई परमार्थी लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। जब हम अपने समय के किसी गुरु या पीर को अपना मुर्शिद बनने के लिये मजबूर नहीं कर सकते तो परमात्मा में समा चुके पुराने समय के गुरुओं, पीरों, पैग़म्बरों, अवतारों आदि को अपना मुर्शिद बनने के लिये कैसे मजबूर कर सकते हैं? कामिल दरवेश कहते हैं कि हम केवल उस मुर्शिद से फ़ायदा उठा सकते हैं, जो एक ही समय में हमारे जैसा भी हो और ख़ुदा जैसा भी। जो ख़ुदा जैसा नहीं, वह हमें कुछ नहीं दे सकता और जो हमारे जैसा नहीं, उससे हम कुछ नहीं ले सकते। हम केवल उस मुर्शिद की रहमत से फ़ायदा उठा सकते हैं जो न सिर्फ़ अपनी रूह ख़ुदा में जज़्ब कर चुका हो बल्कि इनसानी चोले में हमारे सामने मौजूद हो।

---

* देखो पुस्तक का पृ. 53 और रिज़वी: ए हिस्टरी ऑफ़ सूफ़ीज़्म इन इंडिया पार्ट I पृ. 148।[55]

मुर्शिदः ज़िन्दा मिसाल

'राहतुल-क़ुलूब' के अनुसार बाबा फ़रीद ने अपने वक़्त के कामिल मुर्शिद की बड़ाई इस तरह की है:

पीर में इतनी रूहानी ताक़त होनी चाहिये कि वह मुरीद की रूह के सब ज़ंग उतार सके और उसके दिल के शीशे को पूरी तरह साफ़ कर सके। जो ऐसी ताक़त का मालिक नहीं उसके लिये अच्छा है कि किसी को अपना मुरीद न बनाये। जो ख़ुद भटका हुआ है, वह दूसरों को रास्ता कैसे दिखा सकता है? यदि पीर ख़ुद दुनियादार हो, पर मुरीदों को दुनिया के त्याग की नसीहत दे तो उसकी नसीहत का कोई असर नहीं होगा। जब तक कोई अपनी ख़ुद की मिसाल पेश न करे, सिर्फ़ प्रचार से किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।[57]

कामिल मुर्शिद अपने मुरीदों के सामने इनसानियत और रूहानियत की ज़िन्दा मिसाल होता है। वह नैतिक गुणों का भी पुँज होता है और उसकी रूह भी ख़ुदा में अभेद होती है। वह भाई, बाप, पति, दोस्त, बेटे आदि के रूप में भी अपने शिष्यों के लिये आदर्श होता है और ख़ुदा की इबादत की भी जीवित मिसाल होता है। वह शिष्यों के लिये प्रेरणा का ज्योति-स्तम्भ होता है। उसके शिष्य अपनी समस्याएँ उसके पास ले जा सकते हैं और उससे अपनी त्रुटियों और निर्बलताओं को दूर करने के उपाय पूछ सकते हैं। इस बात की कल्पना कर सकना असम्भव है कि कोई शिष्य कामिल मुर्शिद की ज़िन्दा अगुवाई के बिना कभी रूहानियत में तरक़्क़ी कर सकता है।

विचार करने योग्य बात है कि बीते समय में हुए कामिल मुर्शिद आज कहाँ हैं? वे कुल मालिक में समा चुके हैं। आज उन पर भरोसा करने की बजाय सीधा कुल मालिक पर भरोसा क्यों न किया जाये जिसमें वे महापुरुष समा चुके हैं और हमारा असल उद्देश्य भी उसी में समाना है। अगर आज हम कुल मालिक से सीधी सहायता प्राप्त कर सकते हैं, तो पिछले समय में हुए लोग क्यों नहीं कर सकते थे? उस समय किसी पीरो-मुर्शिद के आने की क्या ज़रूरत थी, जिस पर हम आज भरोसा कर रहे हैं? किसी एक समय में बादलों द्वारा वर्षा होने का अर्थ है कि वर्षा केवल बादलों द्वारा ही हो सकती है और किसी एक समय किसी रूहानी रहबर की ज़रूरत का अर्थ है कि इनसान सिर्फ़ अपने समय के रूहानी रहबर से ही लाभ उठा सकता है।

कामिल मुर्शिद की हस्ती उसके शरीर और दूसरे भौतिक हालात तक सीमित नहीं हैं। उसकी असलियत उसके अन्दर काम कर रहा इलाही नूर है, जो किसी समय, किसी जगह, किसी भी इनसानी वजूद में बैठकर अपना काम कर सकता है। इसलिये या तो हमें मुर्शिद की ज़रूरत नहीं, अगर है तो केवल अपने वक़्त के प्रत्यक्ष मुर्शिद की है। यही कारण है कि पीर शरीर त्यागने से पहले अपना रूहानी जानशीन तय करता था और उसे अपना सज्जादा (आसन), असा (डण्डा), ख़िरका (चोला) निशानी के तौर पर देता था।[58] उसकी जगह बैठने वाला पीर सज्जादानशीन (गद्दीनशीन) कहलाता था।

मौलाना रूम का कथन है कि मुर्शिद की ज़ात (हस्ती) के अन्दर ही ख़ुदा और रसूल की ज़ात शामिल है। मुर्शिद और ख़ुदा को दो न समझो, दो न देखो और दो न कहो; मुर्शिद को ख़ुदा में ज़ज्ब हुआ देखो।* अगर मुर्शिद को कुल मालिक से अलग देखोगे तो तुम्हारी रूहानियत की पुस्तक की भूमिका और मूल लेख दोनों खो जायेंगे।† आपका भाव है कि जो मुर्शिद की ज़ात से इनकार करता है, असल में रसूल और ख़ुदा की ज़ात से भी इनकार करता है क्योंकि रसूल और ख़ुदा दोनों से मिलाप का ज़रिया मुर्शिद है।

'जो गुरु दसै वाट'

बाबा फ़रीद ने एक और संकेत 'जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ' का दिया है। इस उपदेश के दो भाग हैं। पहला भाग यह है कि मुर्शिद शिष्य को रास्ता बताता है। शिष्य मन-मर्ज़ी का रास्ता छोड़ देता है और मुर्शिद का बताया हुआ रास्ता अपना लेता है। मौलाना रूम कहते हैं कि तू ऐसे मुर्शिद की अगुवाई में रूहानी सफ़र तय कर जो ख़ुद सफ़र तय करके मंज़िल पर पहुँच चुका है। आप ख़बरदार करते हैं कि अगर बिना जानकार के अन्दरूनी रास्ते पर चलेगा तो शैतानी ताक़तें तुझे गुमराह करके गहरे कुएँ में फैंक देंगी।‡

---

* चूंकिह् करदी ज़ाते-मुरशिद रा क़बूल। हम ख़ुदा दर ज़ातश आमद हम रसूल।[59]

† दो मदां ओ दो मबीन ओ दो मखां। ख़्वाजा रा दर ख़वाजाए-ख़ुद महव दां।
गर जुदा बीनी ज़ि हक ईं ख़्वाजा रा। गुंम कुनी हम मतन ओ हम दीबाजा रा।[60]

‡ पीर रा बगुज़ीं किह् बेपीर ईं सफ़र, हसत बस पुर आफ़तो-खौफ़ो-ख़तर।
हर किह् ऊ बे-मुरशिदे दर राह शुद, ऊ ज़ि ग़ूलां गुमरह-ओ दर चाह शुद।[61]

उपदेश का दूसरा भाग है, 'जोलीऐ'—भाव मुर्शिद से रूहानी अभ्यास की युक्ति सीख लेना ही काफ़ी नहीं, मुर्शिद की समझाई गई विधि के अनुसार रूहानी अभ्यास करके सफ़र तय करना भी ज़रूरी है। गुरु अर्जुन साहिब इन दोनों नुक़्तों को इस तरह समझाते हैं, 'भूले कउ गुरि मारगि पाइआ॥ अवर तिआगि हरि भगती लाईआ॥ जनम मरन की त्रास मिटाई॥ गुर पूरे की बेअंत वडाई॥'[62] भाव मुर्शिद भक्ति के ग़लत रास्ते पर भटक रहे शिष्य को भक्ति का ठीक रास्ता दिखाता है और उस रास्ते पर सफ़र करने में सहायता करता है जिससे शिष्य परमात्मा के साथ मिलाप की मंजिल पर पहुँच जाता है और आवागमन के दुःखों से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। ये दोनों काम केवल अपने वक़्त के ज़िन्दा मुर्शिद की रहनुमाई में ही हो सकते हैं। स्पष्ट है कि सिर्फ़ मुर्शिद का होना काफ़ी नहीं, मुर्शिद की हिदायत पर अमल करना भी ज़रूरी है। हर प्रकार की विद्या केवल ज़िन्दा उस्ताद की सहायता से ही प्राप्त की जा सकती है। पी-एच. डी. की उपाधि वक़्त के विद्वान की देख-रेख में निजी यत्न द्वारा प्राप्त करनी पड़ती है। शिष्य को जो कुछ मिलता है, मुर्शिद की रहनुमाई द्वारा मिलता है, मगर मुर्शिद की तालीम पर अमल करने से मिलता है। अगर कोई व्यक्ति सिर्फ़ अपने वक़्त के या पूर्व समय के किसी मुर्शिद पर भरोसा रखने से ही मंज़िल पर पहुँच सकता हो तो संसार के सारे रूहानी साहित्य में से मुर्शिद की रहमत और मुरीद की कोशिश के सिद्धान्त ख़ारिज करने पड़ेंगे।

'बेड़े नो कपरु किआ करे'

बाबा फ़रीद ने एक और संकेत 'बेड़े नो कपरु किआ करे जे पातण रहै सुचेति'[63] में दिया है। किश्ती का मल्लाह या जहाज़ का कप्तान निजी तौर पर अपनी अगुवाई और सूझ-बूझ से नाव या जहाज़ को किनारे लगाता है। आज समुद्र के भँवर में फँसे बेड़े को आज के खेवट की अगुवाई और सहायता की आवश्यकता है, पूर्व समय में हुआ कोई कप्तान आज बेड़े को पार नहीं लगा सकता। आज के अन्धकार को आज का सूर्य ही प्रकाश में बदल सकता है, सैंकड़ों वर्ष पहले चमका सूर्य नहीं।

सिरदार इक़बाल अली के अनुसार सूफ़ी दरवेशों का विश्वास है कि जिस क़ादिर ने संसार के हर समय के लोगों को बिना किसी भेद-भाव के हवा,

पानी, धरती, आकाश, प्रकाश जैसी दातें बख़्शी हैं, वह उनके रूहानी विकास के लिये भी अपनी दया-मेहर समान-रूप में बाँटता है। 'जिस प्रकार स्थूल संसार की समस्याओं के हल के लिये अनेक महापुरुष समय-समय पर जन्म लेते रहते हैं, उसी तरह लोगों की रूहानी ज़रूरतों की पूर्ति के लिये समय-समय पर पीर-पैग़म्बर संसार में आते रहते हैं।'[64]

सिरदार इक़बाल अली के अनुसार कई सूफ़ी दरवेशों ने अपने विचारों के समर्थन में क़ुरान शरीफ़ की उन आयतों के हवाले दिये हैं, जिनमें कहा गया है कि ख़ुदा ने सब क़ौमों के रूहानी कल्याण के लिये अपने पैग़म्बर भेजे हैं। क़ुरान शरीफ़ में हिदायत दी गई है कि उस ख़ालिक द्वारा अलग-अलग क़ौमों और वक़्तों के लिये भेजे गए पैग़म्बरों में किसी तरह का भेद-भाव न करो और अपनी बुद्धि तथा तर्क को छोड़कर इलाही हुक्म के अनुसार उसकी खोज करो। अली बिन-अल हुसैन अल हकीम अलतिरमीज़ कहते हैं कि कोई कारण नहीं है कि ख़लीफ़ा अबूबक्कर और अली के बाद आनेवाले वली (सन्त) उन जैसे या उनसे ऊँचे न हो सकें। ख़ुदा की रहमत को आज के वक़्त के लोगों पर बरसने से कौन रोक सकता है? लोग यह क्यों समझते हैं कि आज कोई सिद्दीक़, मुक़र्रब, मुजतज़ा या मुस्तफ़ा दुनिया में नहीं है।[65]

इश्क़े-मजाज़ी

'राहतुल-क़ुलूब' के अनुसार बाबा फ़रीद ने मुर्शिद के देह-स्वरूप की बड़ाई इस प्रकार की है कि जब तक कोई किसी को देखता नहीं, उससे उसका इश्क़ पैदा नहीं होता। इसी तरह जब तक औलिया-अल्लाह से इश्क़ पैदा नहीं होता, ख़ुदा की इबादत में भी कभी सच्चा इश्क़ पैदा नहीं हो सकता।[66] आप कहते हैं, 'पीरों की दोस्ती रसूले-ख़ुदा की दोस्ती है। उलमा (विद्वान) नबियों यानी अवतारों-पैग़म्बरों के वारिस हैं और शेख़ (पीर) ख़ुदा के ख़ास बन्दे हैं। हज़रत मुहम्मद साहिब ने अपनी उम्मत यानी अनुयायियों में से सिर्फ़ इन दो पर फ़ख़्र किया है। ये दोनों धर्म के स्तम्भ हैं।'[67] जो साधक सात दिन पीरों की सेवा करता है, ख़ुदा उसके हिसाब में सात सौ साल की बन्दगी का फल लिख देता है और उसे क़दम-क़दम पर हज्ज का फल

मिलता है।[68] जब तक कोई पीरों-फ़क़ीरों की सेवा नहीं करता, कभी कुल मालिक की दरगाह में नहीं पहुँच सकता।[69]

बाबा फ़रीद का कथन है कि बैअत का मतलब मुर्शिद का इश्क़ और भरोसा प्रीति और प्रतीति है। जिसके दिल में मुर्शिद का पूरा इश्क़ और यकीन नहीं, वह सच्चा मुरीद नहीं।[70] मुरीद को चाहिये कि पीर के हुक्म को रसूल और ख़ुदा का हुक्म समझे।[71] आप मिसाल देते हैं कि एक बार हज़रत मुहम्मद साहिब ने एक मोमिन को आवाज़ दी। वह उस समय नमाज़ पढ़ रहा था। उसने जवाब न दिया। जब नमाज़ पढ़कर आपके सामने हाज़िर हुआ तो आपने फ़रमाया कि जब रसूले-ख़ुदा आवाज़ दें तो नमाज़ छोड़कर उसी वक़्त जवाब दो क्योंकि ऐसा करना नमाज़ से बहुत ऊँचा दर्जा रखता है। बाबा फ़रीद ने हज़रत बख़्तियार काकी के हवाले से फ़रमाया कि जब पीर आवाज़ दे तो मुरीद को नमाज़ छोड़कर भी जवाब देना चाहिये क्योंकि इसका फल कई साल की बन्दगी के बराबर है। मुफ़्त में मिलने वाला यह फल हाथ से नहीं खोना चाहिये।[72]

सूफ़ी सन्तों ने मुर्शिद के लिये गुरु, योगी, रांझा, आरिफ़ (ज्ञानी), मल्लाह, तबीब (हकीम), वैद्य, बिचोला, वकील, धोबी, लुहार वग़ैरह कई लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करते हुए उसकी अनेक सिफ़तों का संकेत दिया है। ये सब गुणगान वक़्त के पीर की ओर इशारा करते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं:

जिचर न इश्क़ मजाज़ी लागे, सूई सीवे ना बिन धागे।
इश्क़ मजाज़ी दाता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।
इश्क़ जिन्हां दी हड्डी पैंदा, सोई नर जीवत मर जाता।
इश्क़ पिता ते माता है, जिस पिच्छे मस्त हो जाता है।*

आप इश्क़े-मजाज़ी को इश्क़े-हक़ीक़ी से जोड़ने वाला पुल कहते हैं। इश्क़े-मजाज़ी का अर्थ मुर्शिद के रूप में मजाज़ या देह का चोला पहनकर आई हक़ीक़त का इश्क़ है। आप बहुत सुन्दर ढंग से कहते हैं कि जब तक रूप का प्रेम न हो, अरूप का प्रेम कैसे जागे? साकार के प्रेम का धागा न हो

* अनवर अली रोहतकी ने अपनी पुस्तक 'क़ानूने-इश्क़' में इश्क़े-मजाज़ी और इश्क़े हक़ीक़ी की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है।[73]

तो सूई निराकार के प्रेम का जामा कैसे सिले? जब तक मजाज़ (देह-स्वरूप सतगुरु) दाता बन कर न आये, इलाही प्रेम की दात किस तरह मिले? कामिल मुर्शिद की ज़ात का इश्क़ ही इलाही इश्क़ का बीज है।

सूफ़ी दरवेश अत्तार का कथन है कि अगर दिल में कामिल मुर्शिद के वजूद (देह) का प्यार जाग उठे तो बड़ी ख़ुशकिस्मती की बात है क्योंकि इश्क़े-हक़ीक़ी तक पहुँचने का ज़रिया इश्क़े-मजाज़ी ही है।*

'करि किरपा प्रभि'

मुर्शिद की ज़रूरत के बारे में उपरोक्त चर्चा को बाबा फ़रीद की वाणी के इस अंश से मिलाना ज़रूरी है, जिसमें आप कहते है, 'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥'[75] ख़ुदा रहमत करके मुर्शिद से मिलाता है और मुर्शिद रहमत करके ख़ुदा से मिलाता है। बाबा फ़रीद कहते हैं, 'तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥ सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥'[76] भाव कि सच्चा मुर्शिद ख़ुदा की रहमत से मिलता है और ख़ुदा से मिलाने वाली सच्ची इबादत की दात भी ख़ुदा की रहमत से हासिल होती है। जो कुछ होता है, ख़ुदा की रहमत से होता है और यह रहमत वक़्त के कामिल दरवेश के रूप में प्रकट होती है।

बाबा फ़रीद की तरह ही संसार के हर कामिल दरवेश ने सच्चे मुर्शिद और सच्ची इबादत दोनों की प्राप्ति को ख़ुदा की रहमत पर आधारित माना है। अगर हर कोई पुराने समय में हुए अपनी पसन्द के सन्त, महात्मा, गुरु, पीर, अवतार, पैग़म्बर आदि में विश्वास करके अपनी मनचाही इबादत द्वारा ख़ुदा से मिलाप कर सकता तो ख़ुदा की रहमत की क्या ज़रूरत है? किस जीव को, किस समय, किस कामिल मुर्शिद की शरण द्वारा सच्ची इबादत में लगकर ख़ुदा से विसाल करना है, इसका फ़ैसला ख़ुदा करता है, जीव नहीं। पुराने समय में हुए मन-पसन्द के मुर्शिद और मनचाही भक्ति का उसूल स्वीकार कर लेना, संसार के सब धर्म-ग्रन्थों और सभी कामिल दरवेशों के उपदेश में से ख़ुदा की रहमत द्वारा ख़ुदा से मिलाप होने के सिद्धान्त को ख़ारिज कर देने

* ग़नीमत दां अगर इश्क़े मजाज़ीस्त। किह् अज़ बहिरे-हक़ीक़ी कारसाज़ीस्त।[74]

के समान है। बाबा फ़रीद के जीवन-वृत्तान्त में हम देख चुके हैं कि उनकी बन्दगी पर ख़ुश होकर हज़रत मुईनुद्दीन के हुक्म से हज़रत बख़्तियार काकी ने अपनी रहमत द्वारा बाबा फ़रीद का पर्दा खोल दिया था। इससे आप एकदम आन्तरिक रूहानी मण्डलों में पहुँच गये और आपको कामिल दरवेश की ऊँची और निर्मल रूहानी अवस्था प्राप्त हो गई। ऐसी रहमत सिर्फ़ अपने समय के मुर्शिद से ही हासिल हो सकती है। ख़ुदा की रहमत का ज़रिया ज़िन्दा मुर्शिद है। स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद का मुर्शिद से भाव अपने समय का वह कामिल दरवेश है जो अपनी रूह ख़ुदा में जज़्ब करके ख़ुदा का रूप हो चुका हो और अपनी रहमत, अपने प्रेम और अपनी रहनुमाई द्वारा अपने मुरीद को भी अपनी रूह ख़ुदा में जज़्ब करने के क़ाबिल बना सकता हो।

10. 'विसरिआ जिन्ह नामु'

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥
तिन धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तू॥
जिना पछाता सचु चुमां पैर मूं॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥[1]

ऊपर दिये गए पद से कुछ विचार स्पष्ट होते हैं:

1. बाबा फ़रीद ने ख़ुदा के इश्क़ और नाम के इश्क़ को समान अर्थों में इस्तेमाल किया है और सच्ची दरवेशी का आधार ख़ुदा के इश्क़ और नाम के इश्क़ को माना है।

2. आप लोक और परलोक दोनों में सफलता का आधार ख़ुदा के नाम को मानते हैं।

3. आप इनसान के अच्छे या बुरे होने को इस नज़र से देखते हैं कि वह ख़ुदा के नाम से जुड़ा हुआ है या नहीं।

4. आप ख़ुदा के इश्क़, ख़ुदा के नाम और सच्ची दरवेशी—तीनों को ख़ुदा की रहमत पर आधारित मानते हैं।

स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद के अनुसार ख़ुदा का नाम ही उसकी इबादत और उसकी प्राप्ति का सच्चा साधन है।

'तिना मुख डरावणे'

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥[2]

बाबा फ़रीद का सारा कलाम 'ऐथै' और 'अगै' 'दीन' और 'दुनिया', 'दुनिया' और 'दरगह' के विशाल परिपेक्ष्य को लेकर चलता है। आप फ़रमाते हैं कि लोक और परलोक दोनों को सुखी बनाने का साधन 'नाम' है। जिन अभागे जीवों को ख़ुदा के सच्चे नाम की बेशक़ीमती दौलत हासिल नहीं हुई, वे यहाँ भी दु:ख की चक्की में पिसते हैं और आगे भी यमदूतों की मार खाते हैं।

आपने पिछले प्रसंग में कहा था, 'विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥' यहाँ कह रहे हैं, 'फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥' आप दोनों शब्दों में नाम 'विसारने' (भुलाने) की बदक़िस्मती को जीव के लोक और परलोक दोनों में विनाश का कारण बता रहे हैं। 'जिनी नामु विसारिआ से मुए मरि जाहि॥ हरि रस सादु न आइओ बिसटा माहि समाहि॥'[3] 'नामु विसारि चलहि अन मारगि अंत कालि पछुताही॥'[4] इससे पता चलता है कि बाबा फ़रीद और गुरु साहिबान ख़ुदा की सच्ची इबादत या ख़ुदा से मिलाप का सच्चा साधन भी नाम की कमाई को मानते हैं और लोक तथा परलोक दोनों में सफलता को भी नाम की कमाई पर आधारित करते हैं। स्पष्ट है कि आप 'नाम' का प्रयोग बहुत गूढ़ अर्थों में कर रहे हैं।

बाबा फ़रीद के कलाम में नाम के बारे में सीधा ज़िक्र बहुत कम है, पर नाम आपके द्वारा अपनाई और सिखाई गई रूहानी साधना की बुनियाद है। यहाँ यह बात याद रखनी ज़रूरी है कि सूफ़ी दरवेश और अन्य सन्त-महात्मा केवल वाणी या कलाम द्वारा ही नहीं, कथा या सत्संग द्वारा भी अपने विचारों को प्रकट करते हैं। असल में उनका कलाम उनके सत्संग में प्रकट किये गए विचारों का पूरक होता है, बदल नहीं। उनका सत्संग व्याख्यामय होता है, पर कलाम सांकेतिक होता है। उदाहरण के लिये उनके कलाम में नाम, शब्द, हुक्म, रज़ा, मन, माया, काल आदि अनेक पारिभाषिक या संकल्पवाचक पद आते हैं। कामिल दरवेशों का सत्संग सुनने वाले जिज्ञासु और उनके उपदेश के

अनुसार रूहानी साधना करनेवाले अभ्यासी, इन लफ़्ज़ों के रहस्यमय भाव को आसानी से समझ लेते हैं, पर साधारण लोगों को इन्हें समझाने के लिये इनकी सविस्तार व्याख्या करनी पड़ती है।

'जो गुरु दसै वाट'

'जो गुरु दसै वाट' नामक अध्याय में देखा जा चुका है कि मुर्शिद अभ्यासी को बैअत (नामदान) के समय रूहानी अभ्यास की पूर्ण युक्ति सिखाता है। मुर्शिद मुरीद को समझाता है कि ख़ुदा का नाम दो तरह का है। एक ख़ुदा की सिफ़्तों के आधार पर रखे गए कई नाम हैं और दूसरा वह नाम है जो रूह को रूहानी अभ्यास द्वारा आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करने से ध्वनि और प्रकाश के रूप में प्राप्त होता है। परमात्मा की सिफ़्तों के आधार पर रखे गए नाम ख़ुदा, रहीम, करीम, बख़्शिन्द, खालिक, राज़िक आदि को सिफ़ाती नाम कहा जाता है। ये नाम लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं। इन नामों का प्रयोग समय-समय पर हुए महापुरुषों से शुरू होता है, इसलिये इन नामों का इतिहास खोजा जा सकता है। इसके विपरीत, ध्यान को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करने पर ध्वनि और प्रकाश के रूप में प्राप्त किया जाने वाला नाम न इन्द्रियों का विषय है और न ही मानव-कृत है। सिफ़ाती नामों के विपरीत यह नाम केवल एक है और आत्मा के अनुभव में आनेवाला परम सत्य या हक़ीक़त है। यह सृष्टि की रचना और सँभाल करनेवाली शक्ति है। यह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। यह हर इनसान के अन्दर है और यही रूह को ख़ुदा से मिलाने का सच्चा साधन है।

कामिल मुर्शिद द्वारा साधक को समझाई जानेवाली रूहानी साधना के तीन अंग हैं— ज़िक्र (सिमरन), तसव्वुर (ध्यान) और इस्मे-आज़म, शब्द या नाम से लिव जोड़ना। ज़िक्र और तसव्वुर रूह को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करने के साधन हैं। मुर्शिद,मुरीद को बैअत करते वक़्त उसे ख़ुदा के नाम के ज़िक्र, मुर्शिद की सूरत के तसव्वुर और रूह को इस्मे-आज़म से जोड़ने की अमली रूहानी युक्ति सिखलाता है, जिसे इल्मे-सीना कहा गया है। जब मुर्शिद की हिदायत के मुताबिक़ किये गए ज़िक्र और तसव्वुर के अभ्यास से रूह आँखों के पीछे एकाग्र होती है तो यह अपने आप अन्तर में

ख़ुदा की दरगाह से आ रहे कलमे, कलाम, शब्द, नाम, या इस्मे-आज़म से जुड़ जाती है।

ज़िक्र (सिमरन)

ज़िक्र मन का मैल उतारता है और आत्मा को आँखों के पीछे एकाग्र करने में सहायता करता है। बाबा फ़रीद ने अपने मुर्शिद हज़रत बख़्तियार काकी के हवाले से फ़रमाया है कि जब तक इनसान अपने दिल के शीशे को ख़ुदा के ज़िक्र से साफ़ नहीं करेगा और ख़ुदा के इश्क़ के ज़रिये मन के ज़ंग और द्वैत के मैल को दूर नहीं करेगा, वह परमात्मा में अभेद नहीं हो सकता।[5] 'राहतुल-क़ुलूब' के कर्ता के अनुसार बाबा फ़रीद ने ख़ुदा के नाम के ज़िक्र (सिमरन) की महिमा इस प्रकार की है:

1. ज़िक्र ज़िन्दगी है, ज़िक्र को भूल जाना मौत है।[6]
2. दुनिया के ज़िक्र से मर चुके मन को ख़ुदा के ज़िक्र से ज़िन्दा करो। जब दुनिया के बन्धन टूट जाते हैं और मन में से सभी ख़्वाहिशें निकल जाती हैं तो साधक सच्चा ज़ाकिर (ज़िक्र या सिमरन करनेवाला) बन जाता है और तब उसका दिल ज़िक्र के नूर से ज़िन्दा हो जाता है।[7]
3. इनसान को दिन-रात, उठते-बैठते, सोते-जागते, गन्दगी में या सफ़ाई में ख़ुदा की याद से ग़ाफ़िल नहीं होना चाहिये। ज़िक्र करते समय ख़याल केवल ज़िक्र में होना चाहिये, यहाँ तक कि किये हुए गुनाहों की तरफ़ भी ख़याल न जाये। दुनिया का कोई काम ज़िक्र से बड़ा नहीं। ज़िक्र का फल हर किस्म की सेवा से बड़ा है। जो ज़िक्र को दोस्त बना लेता है, वह ख़ुदा को भी दोस्त बना लेता है।[8]
4. ख़ुदा के आशिक़ पल-भर के लिये भी ख़ुदा की याद से ग़ाफ़िल हो जायें तो वे कहते हैं कि हम मुर्दा हो गये हैं, अगर ज़िन्दा होते तो ख़ुदा की याद से मुर्दा न होते। ख़ुदा का ज़िक्र ख़ुदा में यकीन होने की निशानी है। ज़िक्र रूह को शैतान और दोज़ख़ की आग से बचाता है। भूत-प्रेत ज़िक्र करनेवाले के नज़दीक नहीं आ सकते।[9]
5. जब ख़ुदा किसी को अपना दोस्त बनाना चाहता है तो उस पर अपने ज़िक्र का दरवाज़ा खोल देता है।[10]

हज़रत बख़्तियार काकी ने अपने पीर ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के हवाले से समझाया है कि दिल मुर्दा भी होता है और ज़िन्दा भी। संसार की लज़्ज़तों और इन्द्रियों के भोगों से दिल काला हो जाता है। जिस प्रकार धरती में कल्लर बढ़ जाये तो उसमें बीज अंकुरित नहीं होता और कहा जाता है कि धरती मुर्दा है, इसी तरह जो दिल विषयों-विकारों से काला हो चुका है, वह मुर्दा है। यह मुर्दा दिल सिर्फ़ ज़िक्र के नूर से रोशन और ज़िन्दा हो सकता है।[11] चिश्ती सिलसिले में ज़िक्र की महत्ता के बारे में मुहम्मद हसन सफ़दर लिखता है कि ज़िक्र के सम्बन्ध में यह ख़याल रखना ज़रूरी है कि शुरू में दो-तीन वर्ष यह तयशुदा (नियत की गई) एक ही जगह पर बैठकर किया जाये; हो सके तो कमरा बन्द करके ज़िक्र करना चाहिये। इससे ज़िक्र के लिये सही माहौल तैयार होता है और ध्यान नहीं टूटता।[12]

टाइटस बरखर्द ने सूफ़ियों की रूहानी साधना में सिमरन के महत्त्व के बारे में संकेत किया है कि जब साधक नाम के सिमरन में लीन हो जाता है और उसके मन में सब संकल्प-विकल्प उठने बन्द हो जाते हैं तब उसके अन्दर नाम का दिव्य स्वरूप प्रकट हो जाता है तथा इस नाम का मिलाप ही परमात्मा के मिलाप में बदल जाता है।[13] जान सुबहान ने कहा है कि ख़ुदा के नाम के ज़िक्र से साधक सुलतानुल-अज़कार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, यानी उसे अन्तर में ख़ुदा के कलमे, शब्द या नाम की ध्वनि सुनाई देने लगती है।[14]

कामिल दरवेशों के कलाम में जहाँ भी नाम, शब्द या कलमे की कमाई का उपदेश दिया जाता है, वहाँ सिफ़ाती नामों के ज़िक्र के ज़रिये ख़याल को अपने अन्दर इस्मे-आज़म से जोड़ने की ओर इशारा होता है। कलमे के इस रूहानी अभ्यास को ही शग़ले-सुलतानुल-अज़कार कहा जाता है। शबीर हसन चिश्ती निज़ामी लिखता है कि इस अभ्यास के लिये ज़रूरी है कि अभ्यासी किसी एकान्त जगह में पैरों के बल बैठकर हाथों के अंगूठों से दोनों कान बन्द कर ले। इससे उसे कानों में आवाज़ सुनाई देगी। जिस समय यह आवाज़ सुनाई देने लगे तो अभ्यासी अपना पूरा ध्यान इस आवाज़ में लगा दे। यह आवाज़ धीरे-धीरे इतनी तेज़ हो जायेगी कि फिर बाज़ार में और भीड़ में भी

सुनाई देने लगेगी। इस शग़ल (अभ्यास) का तरीक़ा अपने मुर्शिद से सीखना चाहिये।[15]

तसव्वुर (ध्यान)

चिश्ती सिलसिले में तसव्वुर की महत्ता बताते हुए रिज़वी कहता है कि मुरीद के लिये ज़रूरी था कि वह ज़िक्र करते वक़्त ऐसा महसूस करे कि उसका मुर्शिद उसके सामने मौजूद है और ख़ुद उसके तस्सवुर (ध्यान) की अगुवाई कर रहा है।* भाव यह है कि सिमरन के साथ मुर्शिद का ध्यान भी जुड़ जाये तो रूह आसानी से अन्दर एकाग्र और स्थिर होकर इस्मे-आज़म से जुड़ जाती है।

शबीर हसन चिश्ती निज़ामी ने बाबा फ़रीद के मुर्शिद हज़रत बख़्तियार काकी और चिश्ती सिलसिले के दूसरे दरवेशों द्वारा अपनाये गए रूहानी अभ्यास में मुर्शिद के तसव्वुर की ओर, जिसे वह शग़ले-मुर्शिद कहता है, इशारा किया है। वह कहता है कि मुरीद को चाहिये कि दोनों आँखें बन्द करके मुर्शिद का तसव्वुर (ध्यान) करे। मुर्शिद का तसव्वुर हमेशा अन्दर बना रहना चाहिये। अभ्यासी इस हद तक मुर्शिद का तसव्वुर करे कि मुर्शिद का ही रूप हो जाये।[17]

डॉ. निसार अहमद फ़ारूकी ने अपनी पुस्तक 'चिश्ती तालीमात' में ख़ैरुल-मजालस, फ़वाइदुल-फ़ुवाद और सियरुल-औलिया के हवालों से तसव्वुरे-शेख़ (मुर्शिद के ध्यान) के महत्त्व पर ज़ोर दिया है। आपने हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया का हवाला देते हुए अभ्यासी को समझाया है कि वह शैख़ (मुर्शिद) की सूरत का ध्यान करे, चश्मे-बातिन (आन्तरिक आँख) को इस तरफ़ रखे और यह समझे कि मैं ख़ुद अल्लाह-तआला का दीदार कर रहा हूँ। नज़र बातिनी (अन्दर के) आसमान की ओर रहे और साधक ऐसा महसूस करे कि रूह जिस्म में से बाहर आ गई है और आसमानों में से गुज़र कर अल्लाह-तआला में जज़्ब हो रही है।[18]

---

* "The preliminary requirement for the **zikr**, of a Chisti disciple was to imagine that his Shaikh was personally present before him, directing his contemplation."[16]

इस्मे-आज़म (शब्द धुन)

ऊपर लिखी बातों से ज़ाहिर होता है कि सिफ़ाती नामों का ज़िक्र एकाग्रता की प्राप्ति और अन्तर में ज़ाती नाम के साथ जुड़ने का ज़रिया (साधन) है। इस चर्चा की पृष्ठभूमि में बाबा फ़रीद के कलाम में प्रकट हुए नाम के सम्बन्ध में संक्षिप्त परन्तु अति महत्त्वपूर्ण विचारों का मर्म समझना आसान हो जायेगा। आप संकेत करते हैं:

फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि ॥[19]

जो व्यक्ति रात के चौथे पहर में नहीं जागता, वह जीवित मुर्दे के समान है। चौथे पहर में जागकर साधक क्या करता है? परमात्मा की इबादत करता है। परमात्मा के नाम का सिमरन करता है और उसके नाम या इस्मे-आज़म से लिव जोड़ता है। आप कहते हैं:

पहिलै पहरै फुलड़ा फलु भी पछा राति ॥
जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति ॥[20]

रात्रि के पहले तीन पहरों में तो दुनियादार, कामी और चोर भी जागते हैं लेकिन परमात्मा के सच्चे दरवेश पूरी रात जागते हैं। पहले वे नाम का जाप करते हैं, जो फूलों के खिलने के समान है। चौथे पहर में पहुँचकर जब लिव अन्तर में नाम की ध्वनि और इसके प्रकाश से जुड़ती है तो रूह को वह उच्च व निर्मल लज़्ज़त प्राप्त होती है, जिसे मीठे मेवों की प्राप्ति का दर्जा दिया गया है। बाबा फ़रीद ने इसे 'फूल का फल में बदल जाना' का नाम दिया है। यह सुरत की अन्तर में पूरी तरह शब्द या नाम में लीन हो जाने की अनुपम अवस्था है, जिसे कामिल फ़क़ीरों और सन्तों ने पूर्ण एकाग्रता या यकसूई (समाधि) की अवस्था भी कहा है। इस अवस्था में पहुँचकर ही अन्दर नाम का गुलज़ार खिलता है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा राति कथूरी वंडीऐ सुतिआ मिलै न भाउ ॥
जिंन्हा नैण नींद्रावले तिंन्हा मिलणु कुआउ ॥[21]

रात के पिछले पहर उस ख़ुदा की दरगाह से नाम की कस्तूरी उतरती है। यह उन ख़ुशकिस्मत जीवों को मिलती है, जो उस वक़्त ख़ुदा के नाम के

ज़िक्र में लगे होते हैं। जो अभ्यासी होशियार और एकाग्रचित्त होकर ज़िक्र में लीन होते हैं, उनके अन्दर नाम की कस्तूरी के झरने फूट पड़ते हैं। जो लोग नींद में खोये रहते हैं, वे इस दौलत से ख़ाली रह जाते हैं। हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं:

1. अलिफ़-अल्ला चम्बे दी बूटी, मुर्शिद मन विच लाई हू।[22]
2. अंदर बूटी मुश्क मचाया, जां फुल्लां ते आई हू।[23]

कामिल मुर्शिद अपने मुरीद के दिल में नाम का बीज बोता है। जब मुरीद मुर्शिद की हिदायत के मुताबिक़ नाम का ज़िक्र करता है तो उसके अन्दर परमात्मा के सच्चे नाम का प्रवाह जारी हो जाता है। जिस तरह कस्तूरी की ख़ुशबू बहुत दूर से आनी शुरू हो जाती है, उसी तरह मुरीद के रोम-रोम में नाम की ख़ुशबू समा जाती है। गुरु रविदास जी फ़रमाते हैं:

फल कारन फूली बनराइ॥ फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥
गिआनै कारन करम अभिआसु॥ गिआनु भइआ तह करमह नासु॥
घ्रित कारन दधि मथै सइआन॥ जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग॥ रिदै रामु की न जपसि अभाग॥[24]

भाव फूल, फल के लिये होता है। फल निकल आता है तो फूल सूख जाता है। गृहिणी मक्खन के लिये दही बिलोती है। मक्खन आ जाता है तो वह मक्खन निकालने में लग जाती है। इसी प्रकार सिफ़ाती नामों के सिमरन का वास्तविक मनोरथ लिव को अन्दर नाम की ध्वनि से जोड़ना है। इसी को कामिल दरवेशों ने फूल के फल में बदल जाने, रात के चौथे पहर धुर-दरगाह से कस्तूरी की दात बाँटे जाने, दही से मक्खन निकल आने और चम्बे की बूटी में से अलौकिक सुगन्धि का झरना फूट पड़ने का नाम दिया है।

'आपु सवारहि मै मिलहि'

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥[25]

इन दो पंक्तियों में बाबा फ़रीद ने पूरी रूहानी साधना का सार बयान कर दिया है, जो आपने ख़ुदा से विसाल के लिये ख़ुद अपनाई और जिसकी

तालीम आपने अपने मुरीदों को भी दी। आपने 'आपु सवारहि' और 'मै मिलिआ' वर्णन 'आपे की पहचान' या सच्ची 'मैं' की पहचान के अर्थों में प्रयुक्त किये हैं। जीव का असल 'आपा' और उसकी असल 'मैं' या उसकी हस्ती का सच्चा आधार उसकी आत्मा है। वर्तमान अवस्था में जीव इन्द्रियों, मन और आत्मा का मेल है। इस समय मन, इन्द्रियों के और आत्मा मन के अधीन है। सन्त चरनदास जी के अनुसार, 'इन्द्रिन के बस मन रहै, मन के बस रहै बुद्ध। कहो ध्यान कैसे लगै, ऐसा जहाँ विरुद्ध।'[26] वह परम तत्त्व मन और इन्द्रियों का विषय नहीं, केवल आत्मा ही उसका अनुभव कर सकती है। पर जब तक आत्मा मन, इन्द्रियों और भोगों में लिप्त है, यह कभी भी उस परम चेतन और परम सूक्ष्म सार तत्त्व का अनुभव नहीं कर सकती।

इस विषय में बाबा फ़रीद समझा रहे हैं कि तुम मुर्शिद के बताये हुए रूहानी अभ्यास द्वारा मन और आत्मा को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करो। इससे शरीर का आँखों से निचला भाग सुन्न हो जायेगा। इस प्रकार मन और आत्मा से इन्द्रियों और भोगों की मलिनता दूर हो जायेगी। आँखों के पीछे एकाग्र होकर मन और आत्मा की कलमे, शब्द या नाम के सहारे अन्दर रूहानी मण्डलों में चढ़ाई शुरू हो जायेगी। मन का उद्य स्थान दूसरा रूहानी मण्डल है। जब आत्मा कलमे या शब्द के सहारे उस मण्डल को पार करके तीसरे मण्डल में पहुँचेगी तो मन दूसरे मण्डल में स्थित अपने स्रोत में लीन हो जायेगा। इससे आत्मा पर चढ़ी मन की मलिनता भी दूर हो जायेगी।

मन और इन्द्रियों के मैल से मुक्त हो चुकी निर्मल आत्मा को ही 'आपा सँवार चुकी आत्मा', 'आपा पहचान चुकी आत्मा', 'अपने सच्चे 'मैं' की पहचान कर चुकी आत्मा' या 'अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त कर चुकी आत्मा' कहा जाता है। इस प्रकार अपना असल आपा या असल स्वरूप प्राप्त कर चुकी आत्मा कलमे, शब्द या नाम के सहारे ऊपर चढ़ती हुई अन्त में उस परमपिता परमात्मा में समा जाती है, जिसका यह असल में अंश है। 'जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥'– कतरा समुद्र में समाकर समुद्र बन जाता है। आत्मा कुल मालिक में अभेद होकर कुल मालिक का रूप हो जाती है।

उस हालत में जो कुछ उस परमात्मा का है, आत्मा भी उसकी वारिस और मालिक बन जाती है।

बाबा फ़रीद कहते है, 'आजु मिलावा सेख फरीद टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥'[27]— आप का भाव है कि अगर तू मन को भोगों में लिप्त करनेवाली इन्द्रियों को वश में कर ले तो तेरा आज और अभी ख़ुदा से विसाल हो जाये। यहाँ भी आप यह सूक्ष्म संकेत कर रहे हैं कि तुम मुर्शिद द्वारा बताये गए रूहानी अभ्यास द्वारा मन और आत्मा को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करके अन्दर ख़ुदावंद करीम की दरगाह से आ रहे कलमे, शब्द या नाम से जोड़ो तो मन और इन्द्रियाँ वश में आ जायेंगी और तुम्हारा सहज ही ख़ुदा से विसाल हो जायेगा।

जीते-जी मरना

उपरोक्त दोनों प्रसंग बाबा फ़रीद के कलाम के निम्न प्रसंगों के साथ मिला कर पढ़ने ज़रूरी हैं:

1. फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु॥
   मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु॥[28]

2. फरीदा मंडप मालु न लाइ मरग सताणी चिति धरि॥
   साई जाइ सम्हालि जिथै ही तउ वंञणा॥[29]

बाबा फ़रीद पहले श्लोक में कहते हैं, 'एतु न लाए चितु'— कि तुम महल, सम्पति आदि में दिल न लगाओ। दूसरे श्लोक में संकेत करते हैं, 'मरग सताणी चिति धरि'— तुम मन में निश्चय कर लो कि मौत ज़ोरावर और अटल (सताणी) है। 'साई जाइ सम्हालि जिथै ही तउ वंञणा'— तू अभी से वह जगह सँभाल ले जहाँ तुझे मौत के बाद जाना (वंञणा) है। इसके साधारण अर्थ तो यह हैं कि तू परलोक सँवारने की ओर ध्यान दे। परन्तु इसके रूहानी साधना से सम्बन्धित रहस्यमय अर्थ भी हैं। बाबा फ़रीद यह नहीं कह रहे कि तू जीते-जी क़ब्र में चला जा। आप समझा रहे हैं कि मरने के बाद जो मुक़ाम हासिल करने की उम्मीद रखते हो, वह जीते-जी हासिल करो, जिसे भारतीय सन्तों और सूफ़ी दरवेशों ने 'जीते-जी मरने' की अवस्था कहा है।

जीते-जी मरना रूहानी अभ्यास की वह अवस्था है, जिसमें साधक परमात्मा के नाम के सिमरन द्वारा अपनी आत्मा को आँखों के पीछे और भौहों के बीच में एकाग्र और स्थिर कर लेता है। इससे शरीर का आँखों से नीचे का भाग सुन्न या मुर्दा हो जाता है और आत्मा अन्दर के रूहानी जगत में दाख़िल हो जाती है। इस अभ्यास में जीवन और मौत दोनों इकट्ठे चलते हैं। शरीर का निचला भाग अचेत होता है, पर आँखों से ऊपर आत्मा चेतन होती है। इसलिये इस अभ्यास को जीते-जी मरना कहा गया है।

मौत हमारी मर्ज़ी से नहीं आती और हमारा उस पर कोई ज़ोर नहीं चलता। एक बार मर चुका व्यक्ति उस शरीर में फिर वापस नहीं आ सकता। पर रूहानी अभ्यास द्वारा अपनी आत्मा को आँखों के पीछे एकाग्र करनेवाला व्यक्ति जितनी देर रूहानी अभ्यास जारी रखता है, उसका आँखों से नीचे का भाग सुन्न रहता है। जब वह अभ्यास बन्द कर देता है तो आत्मा शरीर के निचले भाग में उतर आती है और शरीर फिर पहले की तरह कार्य करना शुरू कर देता है।

जीते-जी मरने को ही पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था कहा जाता है जिसमें आत्मा को अन्दर कुल मालिक की दरगाह से आ रहे कलमे, कलाम, शब्द या नाम की आवाज़ सुनाई देने लगती है और आवाज़ में से निकल रहा प्रकाश दिखाई देने लगता है। इस आवाज़ को पकड़कर और इसके प्रकाश को देखती हुई आत्मा अपना अन्दर का रूहानी सफ़र तय करना शुरू कर देती है और अन्त में कुल मालिक की दरगाह में पहुँच जाती है, जहाँ से यह आवाज़ और प्रकाश आ रहे हैं।

बाबा फ़रीद के कथन 'साई जाइ सम्हालि जिथै ही तउ वंञणा' को गुरु नानक साहिब के निम्नलिखित वचन से मिलाकर पढ़ना लाभदायक होगा:

मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि॥
अनहद सबदि सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि॥[30]

भाव जब जीते-जी मरने की अवस्था में लिव अन्दर शब्द से जुड़ जाती है तो आत्मा वह 'घरि' या मुक़ाम हासिल कर लेती है, जहाँ वह मौत के बाद जाना चाहती है।

बाबा फ़रीद मौत की अटलता के भाव पर ज़ोर देते हुए रूहानी अभ्यास द्वारा जीते-जी अपना ध्यान आँखों के पीछे एकाग्र करके लिव को अन्दर परमात्मा के नाम से जोड़ने का उपदेश दे रहे हैं ताकि साधक मौजूदा ज़िन्दगी में ही आत्मा को परमात्मा में अभेद कर दे। सन्त नामदेव जी कहते हैं, 'मूए हूए जउ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला॥'[31] भाव तुम मौत के बाद निजात या मुक्ति प्राप्त करने की आशा न रखो। जो जीते-जी अनपढ़ है, मरने के बाद उसे बी. ए., एम. ए., की डिग्री नहीं मिल सकती। जो जीते-जी चोर और डाकू है, वह मौत के बाद सन्त-महात्मा नहीं बन सकता। हम जो भी प्राप्त करते हैं, जीते-जी करते हैं। इसलिये बाबा फ़रीद, गुरु नानक और सन्त नामदेव यह उपदेश देते हैं कि जो अवस्था तुम मौत के बाद हासिल करना चाहते हो, वह रूहानी अभ्यास के द्वारा जीते-जी मरकर हासिल करो।

हज़रत सुलतान बाहू जीते-जी मरने के बारे में कहते हैं, 'नाम फ़क़ीर तिन्हां दा बाहू, क़बर जिन्हां दी जीवे हू।'[32] 'क़बर जीवे' का इशारा जीते-जी मरने की अवस्था की तरफ़ है। इस अवस्था में शरीर का आँखों से नीचे का भाग मुर्दे या क़ब्र के समान हो जाता है, पर आँखों से ऊपर का भाग चेतन होता है। आप इस अवस्था को 'मृत्यु से पहले मरने' और 'हयाती में मरने' की अवस्था भी कहते हैं:

1. मरन तों अग्गै मर गए बाहू, तां मतलब नूं पाया हू।[33]
2. वाह नसीबा ओह्दा जेहड़ा, विच हयाती मरदा हू।[34]

साईं बुल्लेशाह ने रूह के जिस्म के निचले हिस्से में से सिमटकर आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर होने को सच्ची हिजरत और सच्चे इस्लाम में दाख़िल होने का नाम दिया है। सच्चा साधक अपनी लिव अन्दर जोड़कर रोज़ यह अनुपम अवस्था प्राप्त करता है:

बुल्लिया हिजरत विच इसलाम दे, मेरा नित्त है ख़ास मकान।
नित्त नित्त मरां ते नित्त नित्त जीवां, मेरा नित्त नित्त कूच मुक़ाम।[35]

'नित्त नित्त मरां ते नित्त नित्त जीवां' बहुत भावपूर्ण वर्णन है। जब ज़िक्र और तसव्वुर का अभ्यास पक्का हो जाता है तब साधक आसानी से सुरत को आँखों के पीछे एकाग्र करके संसार की तरफ़ से मर जाता है तथा अभ्यास की

समाप्ति पर सुरत के शरीर में वापस आ जाने पर फिर से संसार की तरफ़ से ज़िन्दा हो जाता है। यह अभ्यास दिन में अनेक बार किया जा सकता है। साईं बुल्लेशाह हदीस के हवाले से कहते हैं कि जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त करनेवाला साधक ही उस अल्लाह रूपी प्रीतम की हज़ूरी में पहुँचने के आनन्द का अनुभव कर सकता है:

मूतू कबल अनतमूतू होया, मोया नूं फेर जवाली ओ यार।
बुल्ला शहु मेरे घर आया, कर कर नाच वखालीं ओ यार।[36]

आप नसीहत करते हैं:

करां नसीहत वड्डी जे कोई, सुण कर दिल ते लावेंगा।
मोए तां रोज़े हशर नूं उट्ठन, आशिक़ न मर जावेगा।
जे तू मरें मरन तों अग्गे, मरने दा मुल्ल पावेंगा।[37]

आप कहते हैं कि साधक को जीते-जी मरने की अवस्था प्राप्त करने के लिये पूरी कोशिश करनी चाहिये क्योंकि इसके ज़रिये ही वह सच्चा आशिक़ बन सकेगा। इसके द्वारा ही उसकी रूहानी साधना को कामयाबी का फल लगेगा तथा वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर सच्ची निजात और अमर जीवन हासिल कर सकेगा।

बाबा फ़रीद और नाम की प्राप्ति

बाबा फ़रीद के जीवन-वृत्तान्त में देख चुके हैं कि आपने मुर्शिद की सोहबत में उनकी हिदायत के मुताबिक़ जी-जान से इबादत की। जब आपने मुर्शिद द्वारा बताये गए नाम या कलमे के अभ्यास में प्रगति कर ली तो एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। आपके गुरु, हज़रत बख़्तियार काकी के पीरो-मुर्शिद ख़्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर से दिल्ली आये हुए थे। उस समय फ़रीद इबादत करके बहुत कमज़ोर हो चुका था। ख़्वाज़ा चिश्ती ने उसकी हालत देखकर फ़रमाया, ''बख़्तियार! यह नौजवान कब तक इस तरह की सख़्त रिआज़त में लगा रहेगा। इसे कुछ दो। हज़रत काकी ने नम्रता के साथ कहा, हुज़ूर, आपके रहते हुए मैं इसे कुछ देनेवाला कौन होता हूँ। ख़्वाज़ा साहिब के हुक्म से हज़रत काकी ने फ़रीद का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और

दूसरा हाथ ख़्वाजा साहिब ने ख़ुद पकड़ लिया। दोनों पीरों ने ख़ुदा की दरगाह में दुआ की कि इस नौजवान पर कामिल दरवेश की अवस्था की रहमत हो।'' शबीर हसन चिश्ती निज़ामी लिखता है:

> इस पर आसमान से निदा हुई कि यह दुआ क़बूल हुई। यह ग़ैबी आवाज़ सुनकर हज़रत बाबा साहिब पर कैफ़ीयत तारी हो गई। हज़रत क़ुतुब साहिब (बख़्तियार काकी) ने बाबा साहिब को इस्मे-आज़म से तालीम फ़रमाया। तमाम इल्मे लुदंनी (आन्तरिक ज्ञान) मुनकशिफ़ (प्रकट) हो गए और इसके बाद सरकार ग़रीब निवाज (हज़रत मुईनुद्दीन) ने बाबा साहिब को ख़िरका-ए-ख़ास (ख़ास चोला) अता फ़रमाया। हज़रत क़ुतुब साहिब ने दस्तार और दीग़र लवाज़माते-ख़िलाफ़त (अन्य आवश्यक वस्तुएँ) देकर ख़िलाफ़त अता फ़रमाई।[38]

इस वर्णन से कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत मिलते हैं: (i) दो कामिल दरवेशों की रहमत से बाबा फ़रीद पर एक कैफ़ीयत या अवस्था तारी हो गई। (ii) उनके मुर्शिद ने उन्हें इस्मे-आज़म की तालीम दी। (iii) उन पर इल्मे लुदंनी के सब राज़ ज़ाहिर हो गये। (iv) यह रुतबा हासिल हो जाने पर उन्हें ख़िलाफ़त बख़्शी गई।

'कैफ़ीयत' का अर्थ पूर्ण एकाग्रता या समाधि की अवस्था है। इसे जीवित मरने की अवस्था भी कहा जाता है। यह अवस्था प्राप्त हो जाने पर रूह को अपने अन्दर ख़ुदा की दरगाह से आ रही एक निदा (आवाज़) सुनाई देती है, जिसे इस्मे-आज़म, प्रभु का नाम, ख़ुदा का कलाम, ख़ुदा का कलमा आदि कहा जाता है।

मुर्शिद द्वारा बाबा फ़रीद को इस्मे-आज़म की तालीम दिये जाने का मतलब है कि मुर्शिद ने आपकी रूह को अन्दर इस आवाज़ से जोड़ दिया। इस आवाज़ में लीन होने से ही आपको सच्चे दरवेश की वह ऊँची अवस्था और पाक दर्जा हासिल हुआ, जिसकी वजह से आपके गुरु और बाबा गुरु ने आपको ख़िलाफ़त, दरवेशी या पीरी के लायक़ समझा। डॉ. ज़हूर-अल-हसन ने इस घटना की ओर इस प्रकार संकेत किया है:

> हज़रत मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर से दिल्ली आये हुए थे। आपने अपने मुरीद, ख़्वाजा बख़्तियार काकी के सभी मुरीदों पर रहमत की नज़र डाली।

> फ़रीद एक हुजरे में इबादत में तल्लीन था। आप उस कोठरी में गये और फ़रीद को देखकर बहुत ख़ुश हुए और ख़ुदा की दरगाह में अर्ज़ किया, 'या ख़ुदा, हमारे फ़रीद को क़बूल कर ले और इसे कामिल दरवेश के दर्जे तक पहुँचा दे।' बशारत (आकाशवाणी) हुई, 'हमने फ़रीद को क़बूल कर लिया है।' इस पर ख़्वाजा साहिब ने हज़रत बख़्तियार काकी को हुक्म दिया, 'इस्मे-आज़म का जो राज़ चिश्ती दरवेशों में सीना-ब-सीना चला आ रहा है, फ़रीद को दे दो।' जब बाबा फ़रीद को इस्मे-आज़म का भेद दिया गया तो उनको इल्मे-लुदंनी प्राप्त हुआ और दुई के सारे पर्दे दूर हो गए।[39]

इस वर्णन से संकेत मिलता है कि इस्मे-आज़म इल्मे-सीना है, इल्मे-सफ़ीना नहीं। यह मन और इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाला बाहरी ज्ञान नहीं, अन्दर आत्मा के द्वारा प्राप्त होनेवाला अनुभव है। फ़वाइदुल-फ़ुवाद, सियरुल-औलिया, इसरारुल-औलिया, राहतुल-क़ुलूब और जवाहरे-फ़रीदी आदि मलफ़ूज़ात* में बार-बार वर्णन आता है कि जब बाबा फ़रीद पर यकसूई (एकाग्रता) की हालत पैदा हो जाती तो आप घण्टों और कभी-कभी कई-कई दिन बेसुध रहते। एक बार आप सात दिन तक आलमे-तहीयर (विस्माद की अवस्था) में रहे और आपको खाने-पीने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई।[40] यह यकसूई या समाधि की अवस्था है, जिसमें ध्यान आँखों के पीछे एकाग्र होकर अन्दर इस्मे-आज़म या नाम से जुड़ जाता है। यही बाबा फ़रीद और बाक़ी सब सूफ़ी दरवेशों की तालीम का असल आधार है।

ख़्वाजा मुईनुद्दीन और नाम

बाबा फ़रीद के दादा गुरु और भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के संचालक ख़्वाजा मुईनुद्दीन, नाम की महिमा करते हुए कहते हैं:

''ख़ुदा के नाम के नूर ने मेरी जान और मेरे दिल को लूट लिया। ख़ुदा का नाम मेरी प्यासी ज़ुबान के लिये आबे-हयात (अमृत) साबित हुआ।

---

* महात्माओं के जीवन के हालात, प्रवचनों आदि का संग्रह।

"अगर तू ख़ुदा से मिलना चाहता है तो नाम से जुड़ जा। तू नाम के विसाल में ही ख़ुदा का विसाल समझ।

"तू समझ ले कि ख़ुदा के नाम और ख़ुदा रूपी नामी में कोई फ़र्क़ नहीं है। ख़ुदा के नाम के कमाल से तू ख़ुदा के नूर में पहुँच जायेगा।

"तू यकीन कर कि तू दिन-रात ख़ुदा की हाज़िरी में होगा, अगर तू ख़ुदा के नाम से जुड़ा हुआ है।

"तू रूहानी मंज़िलों में परवाज़ (उड़ान) करने लगेगा, अगर तू ख़ुदा के नाम के पंखों का सहारा ले ले।

"अगर मैं उसका नाम सुन लूँ तो सैंकड़ों जानें उस पर क़ुर्बान कर दूँ। मैं ख़ुदा के नाम के नूर पर अपनी हस्ती क़ुर्बान कर दूँ।

"ऐ मुईअन, तू ख़ुदा के नाम से क्यों कतराता है, ख़ुदा के नाम की ओर से मुँह मोड़ना, ख़ुदा से मुँह मोड़ना है।"*

उपरोक्त प्रसंग से यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि आप नाम और नामी (ख़ुदा) को एक मानते हैं। आप नाम को अल्लाह से मिलाने वाला असल साधन बताते हैं और नाम से विसाल को ही अल्लाह से विसाल तस्लीम

---

* रबूद जान ओ दिलम रा जमाले-नामे-ख़ुदा।
नवाख़्त तिशना ज़बां रा ज़ुलाले-नामे-ख़ुदा।
विसाले-हक़्क़ तलबी हमनशीने-नामश बाश।
बिबीं विसाले-ख़ुदा दर विसाले-नामे-ख़ुदा।
मयाने-इसम ओ मुसम्मा चू फ़रक़ नीसत बिबीं।
तू दर तज्जलीऐ-असमा कमाले-नामे-ख़ुदा।
यकीं बदां किह् तू बा हक़्क़ निशस्ता-ऐ-शबो-रोज़।
चू हमनशीने-तू बाशद ख़्याले-नामे-ख़ुदा।
तुरा सजद ओ तैरां दर फ़ज़ाए-आलमे-क़ुदस।
बशर्ते-आं किह् ब परी बबाले-नामे-ख़ुदा।
चू नामे-ऊ शिनौम गर बुवद मरा सद जां।
फ़िदाए ऊसत ब-इज़्ज़ो-जलाले-नामे-ख़ुदा।
मुअईन ज़ि गुफ़्तने-नामश मलूल कै गरदद।
किह् अज़ ख़ुदास्त मलालत मलाले-नामे-ख़ुदा।[41]

(स्वीकार) करते हैं। नाम ही रूह को आन्तरिक रूहानी मण्डलों में खींचकर ले जाने वाला असल साधन है और नाम ही रूह को अपने में जज़्ब करके ख़ुदा में जज़्ब करता है। नाम की नज़दीकी, ख़ुदा की नज़दीकी है और नाम से दूरी ख़ुदा से दूरी है। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

"जब मैं शुरू से आख़िर तक उसका नाम लेता हूँ तो मेरे रोम-रोम और रूह में दूध की धाराएँ बहने लगती हैं।

"उसके दीदार की चाह से उसकी याद इस तरह रूह में घुल गई कि उसकी याद सदा के लिये उसका रूप हो गई।"*

"तू आँख खोलकर देख कि कुल आलम ख़ुदाई नूर से भरा पड़ा है, कायनात में ऐसी कौन-सी जगह है जो ख़ुदा के नूर से ख़ाली है।"

"इश्क़ का तबला तो दोनों जहानों में बज रहा है, अपने कानों में से रूई निकालकर सुन कि कौन-सी आवाज़ आ रही है।"†

आप फ़रमाते हैं:

"मेरी रूह के कानों में आलमे-ग़ैब से एक आवाज़ आ रही है, मानो वह मुझे महबूब से विसाल की सेज पर बुला रही हो।

"अगर तुझे उस लाबयान (अकथ) दुनिया की वह आवाज़ सुनाई नहीं देती तो तू मुर्शिद के कलमे के ज़िक्र के ज़रिये उसे पकड़।"‡

---

* नामे-ऊ मी बर दम अव्वल ता चुनां शुद आक़िबत।
किह चू शीर अंदर रगे-जानम रवां शुद आक़िबत।
यादे-ऊ बा जां चुनां आमेख़त कज़ फ़रते-तलब।
यादे-ऊ ऊ गश्त ऊ दर जां निहां शुद आक़िबत।[42]

† चशम बक़ुशाए किह् आफ़ाक़ पुर अज़ नूरे ख़ुदास्त।
ख़ाली अज़ नूरे-ख़ुदा दर हमा आफ़ाक़ कुजास्त।
तबले-इश्क़स्त किह् दर कौनो-मकां मी गोयंद।
पंबा अज़ गोशे-बरूं कुन बिशनौ कीं चिह् सदास्त।[43]

‡ बगोशे-जाने-मन आमद निदाऐ-आलमे-ग़ैब।
ज़ि ख़ुआने-वसल शनीदम सलाऐ आलमे-ग़ैब।
निदाऐ-आलमे-ग़ैब अर ज़ि हक़्क़ नमी शनवी।
शनौ ज़ि लफ़्ज़े-पैयंमबर सदाऐ-आलमे ग़ैब।[44]

आपका भाव है कि सिफ़ाती नाम का ज़िक्र इस्मे-आज़म और स्वयं ख़ुदा की जात की आनन्दमय प्राप्ति का साधन बन जाता है।

अमीर ख़ुसरो और नाम

बाबा फ़रीद के उत्तराधिकारी हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के प्रिय शिष्य अमीर खुसरो ने अन्तर में एकाग्रता की दशा में प्राप्त होनेवाले इस्मे-आज़म के अनुभव का उल्लेख इस प्रकार किया है:

एकी भंवर गुंजार सी दूजे घुंघरू होय।
तीजे शब्द संख का चौथे घंटा होय।
पाँचवें टाल जो बाजे। छटे सो मुरली नाथ।
सातवें भीर जो गाजे। अठवें शब्द मरदंग का।
नवें नफ़ीरी टाल। दसवें गरजे सिंध सास खुसरो को यह ताल।
दस प्रकार अनहद बजे जित जोगी हो लीन।
इंदरी थकी मनुवा थके खुसरो ने कहि दीन।
अनहद बाजे बाजन लागे। चोर नगरीआ तज तज भागे।
गुरु निज़ाम की भई दुहाई। खुसरो ने अंतर लिव लाई।[45]

सारी बात 'खुसरो ने अंतर लिव लाई' के गिर्द घूमती है। आप कहते हैं कि यकसूई की हालत में मन और आत्मा आँखों के पीछे स्थिर हो जाते हैं तो अन्दर अनहद शब्द की मीठी और प्यारी ध्वनियाँ सुनाई देने लगती हैं। इन आवाज़ों में अथाह शान्ति और आनन्द है। इन आवाज़ों के अमृत को पीकर मन और इन्द्रियों के सब विकार दूर हो जाते हैं और आत्मा निर्मल होकर परमात्मा में समाने के लायक़ बन जाती है।

हज़रत मुहम्मद साहिब, सूफ़ीमत और नाम

मुहम्मद दारा शिकोह लिखता है कि कलमे या शब्द का अभ्यास सबसे ऊँची रूहानी करनी है। वह हदीस, हज़रत मुहम्मद साहिब की आदरणीय धर्मपत्नी बीबी ख़दीजा, हज़रत गौस-उस-साकलैन और हज़रत मियाँ मीर के हवाले से कहता है कि हज़रत मुहम्मद, पैग़म्बर बनने से पहले और बाद में

शब्द या कलमे की आवाज़ का अभ्यास किया करते थे।* इसी अवस्था में आप पर 'वही' (आकाशवाणी या अल्लाह का हुक्म) उतरती थी।

कुछ अन्य सूफ़ी दरवेश और नाम

चिश्ती दरवेशों के पास ही नहीं, सभी कामिल मुर्शिदों के पास जो राज़े बातिन (आन्तरिक भेद) होता है, वह इस्मे-आज़म है। मुरीद की रूह को अन्दर इस्मे-आज़म से जोड़ना मुर्शिद की सच्ची रहमत है। ख़ुदा की हस्ती का सार इस्मे-आज़म मनुष्य के अन्दर है। हज़रत सुलतान बाहू कहते हैं, 'अंदर कलमा कल कल करदा।'[47] आपके अनुसार मुर्शिद अपने मुरीद को उस ज़ाती कलमे से जोड़ता है, जो ज़ुबान के बिना पढ़ा जानेवाला और कानों के बिना सुना जानेवाला पाठ है:

मुर्शिद हादी सबक़ पढ़ाया, पढ़यों बिना पढ़ीवे हू।
उंगलियां विच कंनां दित्तियां, सुणयों बिना सुणीवे हू।[48]

---

* "This practice of hearing the Voice of the Silence is path of the Faqirs, the Sultan-ul-azkar or the king of all practices.
"This sound existed from before the creation of the worlds, and exists even now and will continue to exist even when the worlds enter into non-existence. This sound is called the infinite and absolute sound. There is no practice higher than of hearing this sound.
"From many authentic traditions, collected in the six authentic Hadis Volumes, we learn that our Prophet (may the blessing and peace of God be on him) was devoted to this practice, both before and after his attaining the rank of the prophet-hood. But none of the learned men have found out the secret of this mystery, and have not consequently tried to practise it.
"Hazarat Mianji used to say that Ghau-us-Saqlain related, "Our Prophet was in the cave of Hurrah for six years plunged in this meditation of Sultan-ul-azkar, and I myself have been in that cave for twelve years engaged in the practice of this meditation, and many wonderful and mighty things have been revealed to me."[46]

वह सच्चा कलमा बेज़ुबानी की ज़बान है, उसका भेद केवल कामिल दरवेशों के पास है:

1. छोड़ सिफ़ाती जिस लधयोस ज़ाती।[49]
2. सिफ़त सनाई मूल न पढ़दे, जो पहुते विच ज़ाती हू।[50]
3. ज़े-ज़बानी कलमा हर कोई पढ़दा, दिल दा कलमा कोई हू।
   जित्थे कलमा दिल दा पढ़िये, मिले ज़बां न ढोई हू।
   दिल दा कलमा आरिफ़ पढ़दे, जाणे की गलोई हू।[51]

मनुष्य की मुक्ति का साधन यह ज़ाती कलमा है, साधक को कामिल वली या मुर्शिद बनाने वाली शक्ति यह कलमा है। सारे खण्डों-ब्रह्माण्डों, ग्रन्थों-शास्त्रों का आधार यही ज़ाती कलमा है:

1. कलमे लक्ख करोड़ां तारे, वली कीते सै राहीं हू।[52]
2. चौदां तबक़े कलमे अंदर, छड्ड कताबां इलमां हू।[53]

एकाग्रता की अवस्था में अन्दर सुने जानेवाले इस इस्मे-आज़म को कामिल फ़क़ीरों ने कलामे-इलाही, निदाए-सुल्तानी, सौते-सरमदी, आवाज़े-मुस्तक़ीम, कलामे-मजीद आदि अनेक नामों से पुकारा है। किसी सूफ़ी ने आन्तरिक पाँच आसमानों, किसी ने सात और किसी ने चौदह आसमानों (मण्डलों) का वर्णन किया है और हर मण्डल में शब्द की अलग-अलग ध्वनि का संकेत किया है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं:

इस बंसी दे पंज सत तारे। आपो अपणी सुर भरदे सारे।
इक्क सुर सब विच दम मारे। साडी इसने होश भुलाई।
बंसी काहन अचरज बजाई।[54]

भाव ख़ुदा की दरगाह में से आ रही शब्द या नाम की एक ही धुन अलग-अलग मण्डलों में अलग-अलग रूप में सुनाई देती है। मौलाना रूम कहते हैं:

ख़ामोश पंज नौबत बिश्नौ ज़ि आसमाने,
कां आसमां बेरूं ज़-आं हफ़्त शश ईं आमद।[55]

आप कहते हैं कि तू पूर्ण एकाग्रता द्वारा आन्तरिक आसमान से आ रही पाँच नौबतें सुन, उस आसमान से, जो छः दिशाओं और सातवें आसमान से ऊपर है। आप इस ख़याल को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ये पाँच नौबतें नश्वर संसार की छः दिशाओं से ऊपर आँखों के पीछे स्थित सातवें आकाश में ध्यान एकाग्र करने से सुनाई देती हैं।

बहफ़्तम चरख़ नौबत पंजयाबी,
चूं ख़ेमा ज़ि शश जहत बरकंदा बाशी।[56]

हाथरस के कामिल दरवेश हुज़ूर तुलसी साहिब एक मुसलमान जिज्ञासु शेख़ तकी को समझाते हुए कहते हैं:

1. क़ुदरती काबे की तू मेहराब में सुन ग़ौर से।
   आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥[57]
2. गोशे बातन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
   ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये॥[58]

आपका भाव है जो अभ्यासी मुर्शिद द्वारा समझाई गई युक्ति के अनुसार शरीर के आँखों से ऊपर के भाग में रूह को एकाग्र कर लेता है, जिसे आप क़ुदरती काअबा की मेहराब कहते हैं, उसे कुल मालिक की दरगाह से रूह को मुकामे-हक़ वापस ले जाने के लिये आ रही इस्मे-आज़म की आवाज़ सुनाई देने लगती है। यही उस अल्लाहू-अकबर से विसाल का असल साधन है।

बाबा फ़रीद ने ख़ुदा से विसाल के लिये इस्मे-आज़म, शब्द अथवा नाम रूपी इसी साधन का उपदेश दिया है। संसार में समय-समय पर हुए सभी कामिल दरवेशों ने भी ख़ुदा के विसाल के लिये इसी एक साधन का प्रचार किया है।

11. नमाज़े-माअकूस

कुछ जीवनीकारों ने लिखा है कि बाबा फ़रीद रात को नमाज़े-माअकूस अदा करते थे। 'माअकूस' अरबी का लफ़्ज़ है जिसका अर्थ है 'उलटा'। इसलिये उलटा लटक कर अदा की गई नमाज़ को नमाज़े-माअकूस कहा जाता है। पिछले अध्याय में जीते-जी मरने की अवस्था के बारे में पढ़ आये हैं। इस अवस्था में आत्मा आँखों से निचले भाग में से सिमटकर आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर हो जाती है और इस्मे-आज़म या नाम के साथ जुड़कर रूहानी सफ़र तय करना शुरू कर देती है। उपरोक्त वर्णन के प्रसंग में बाबा फ़रीद के जीवन के साथ जोड़े गए इस वृत्तान्त को ठीक रूप में समझना आसान हो जायेगा कि आप सारी रात नमाज़े-माअकूस अदा करते थे।

पिछले अध्याय में पढ़ आये हैं कि सूफ़ी साधक सुरत को शरीर के नौ द्वारों की ओर से उलटकर अन्दर आँखों के पीछे लाकर इसे इस्मे-आज़म या सच्चे शब्द से जोड़ते थे। इस साधन को निर्गुणधारा के सन्तों ने सुरत-शब्द योग कहा है। योगी इसे सुरत को उलटाने की साधना या 'उलटी साधना' का नाम देते हैं। चिश्ती सिलसिले के दरवेशों द्वारा अपनाये गए रूहानी अभ्यास के सम्बन्ध में सूफ़ी दरवेशों- शेख़ रुकनुद्दीन और शेख़ अब्दुल क़ुदस के हवाले से डॉ. रिज़वी ने एक महत्त्वपूर्ण विवरण दिया है, जिसका सार इस प्रकार है:

> चिश्ती सिलसिले के सूफ़ी दरवेश शाम की नमाज़ के बाद रात भर 'नमाज़े-माअकूस' में मग्न रहते थे, जिसे हज़रत मुहम्मद से विरासत में मिली साधना माना जाता है। बाबा फ़रीद भी वर्षों इस प्रकार की नमाज़ अदा करते रहे। आम लोग नमाज़े-माअकूस का मतलब उलटे लटक कर ज़िक्र करना समझते हैं, पर शेख़ अब्दुल क़ुदस ने इसे उस 'उलटी साधना' का नाम दिया है, जिसमें साधक के अन्दर सुलताने-ज़िक्र (सुलतानुल अज़कार या इस्मे-आज़म) की अवस्था पैदा हो जाती है। उसकी बाहर की ओर बह रही सुरत की धारा अन्दर की ओर उलट

> जाती है। इससे उसका शरीर सुन्न हो जाता है और उसे अन्दर नाद (शब्द, कलमा, इस्मे-आज़म) सुनाई देने लगता है। वह फ़ना-अल-फ़ना या जीवन-मुक्त की अवस्था प्राप्त कर लेता है।* हज़रत मुहम्मद को भी सुलताने-ज़िक्र की अवस्था में ही 'वही' (आकाशवाणी) उतरती थी। इस अवस्था में अभ्यासी को पहले अपने अन्दर घण्टी की हल्की-सी आवाज़ सुनाई देती है। धीरे-धीरे यह आवाज़ (घड़ियाल की आवाज़ की तरह) ज़ोरदार होती जाती है। शेख़ अब्दुल क़ुदस के अनुसार यह नाद

---

* "After performing the evening Namaz he would begin the zikr-i jahr. Those who joined him would tire, but the Shaikh's absorption in the Wahdat-al-Wujud failed to quench his enthusiasm. For years after the evening namaz he would perform the namaz-i-makus. Although Chishtis believed this type of namaz to be a legacy from the Prophet, as pointed out earlier, Shaikh abu Sa'id bin abi' al Khair was the first known to have practised it; the first Indian sufi to perform it was Baba Farid. Shaikh Abdu'l-Quddus considered it to be the counterpart of the ulti sadhna.[a] Continual performance of namaz-i-ma'kus produced in the Shaikh a condition he called sultan-i-zikr in which one experienced strange changes in the physical and spiritual condition including a deprivation of the senses and a lack of feeling of consciousness. Repeated appearances of the sultan-i-zikr led to the state of fana'alfana.' A description of this spiritual experience, given by Shaikh Ruknu'd-Din would tend to indicate that sultan-i-zikr was comparable to the Nath Siddha's nad[b], and that fana'al-fana' was state experienced by the jivan-mukta.[c]"[1]

a Going against the current (ujana sadhna) or a `regressive' process, implying a complete `inversion' of all psycho-physiological process.

b. A mystical voice.

c सुनहु पंडित अचारिज निसब्दै, सबद समाय।
सबदै रिद्धि सिद्धि सब्दै सुख मुकुति सबद अनूतर साय॥

(शब्द, कलमा, इस्मे-आज़म) की अवस्था है, जो सिर्फ़ ऊँचे दर्जे के गिने-चुने सूफ़ियों को प्राप्त होती थी।*

वर्तमान अवस्था में हमारे ख़याल की धारा ऊपर से नीचे और अन्दर से बाहर की ओर बह रही है। जब तक इसे उलटा कर अन्दर इस्मे-आज़म या ख़ुदा के सच्चे कलमे से नहीं जोड़ते, रूह मुक़ामे-हक़ में वापस नहीं पहुँच सकती।

आँखों के ऊपर से नीचे की तरफ़ और अन्दर से बाहर की तरफ़ बह रहे ध्यान को सन्तों-महात्माओं ने 'हृदय-कमल का उलटा होना' कहा है। इसे बर्तन के उलटा होने का नाम भी दिया गया है। जब तक बर्तन उलटा है, इसमें वर्षा की एक बूँद भी नहीं जा सकती। जब उलटे बर्तन को सीधा कर देते हैं, तो यह धीरे-धीरे अपने आप भरना शुरू हो जाता है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं, 'मिली है बांग रसूल दी फुल खिड़या मेरा। सद्दा होया मैं हाज़री हाँ हाज़र तेरा।'[2] आपने भारतीय सन्तों की तरह 'फुल खिड़या' द्वारा हृदय-कमल के सीधा होने की ओर संकेत किया है। जब हृदय-कमल सीधा होता है तो अभ्यासी को अन्तर में इस्मे-आज़म की आवाज़ सुनाई देनी शुरू हो जाती है, जिसे आप रसूल की बाँग कहते हैं। इससे मुरीद हमेशा के लिये मुर्शिद और ख़ुदा की हाज़री में पहुँच जाता है। यह बाँग मुर्शिद और रसूल द्वारा रूह को मुक़ामे-हक़ वापस पहुँचने के लिये दिया गया पैग़ाम है।

वास्तव में इस उलटी साधना या नमाज़े-माअकूस द्वारा संसार के कण-कण और शरीर के रोम-रोम में रमी हुई आत्मा को बाहर से अन्दर और शरीर के निचले भाग से ऊपर आँखों के पीछे उलटा कर ख़ुदा की दरगाह से आ रहे

---

* Shaikh Ruknu'd-Din then compared the condition of sultan-i-zikr with that experienced by the Prophet Muhammad when he received wahi.[a] In short, he added that at the commencement of sultan-i-zikr, the meditator felt as if he were listening to the humming of a bell whose sound then gradually became thunderous. According to Shaikh Abdu'l-Quddus this had special relevance to Nad and was a privilege of only a few outstanding sufis.

a. Inspiration received from the angel Gabriel by the ears of the Prophet Muhammad; the occasion engendered a supernatural condition in the Prophet.

सुलताने-ज़िक्र (सुलतानुल अज़कार, शब्द, नाद, कलमे) से जोड़ने का सम्बन्ध शरीर को उलटा करने से नहीं, ख़याल, ध्यान या सुरत को उलटा करने से है। शरीर की साधना हठ-कर्म है जबकि मन और आत्मा की साधना सहज-मार्ग है। उच्च कोटि के सूफ़ियों ने शरीर को कष्ट देने की वकालत नहीं की है, उनका सारा ज़ोर मन और आत्मा की साधना पर है। यह उलटी साधना सूफ़ी दरवेशों और भारत के सन्तों की रूहानी साधना को आपस में जोड़ने वाली एक मज़बूत कड़ी है। साईं बुल्लेशाह की एक काफ़ी इस तरह है:

उलटी गंग बहायो रे साधो, तब हरि दर्शन पाये।
प्रेम की पूणी हाथ में लीजे, गुज्झ मरोड़ी पड़ने न दीजै।
ज्ञान का तकला ध्यान का चरखा, उलटा फेर भवाये।
उलटे पाउं पर कुंभ करन जाये, तब लंका का भेद उपाये।
दहिसर लुटया हुण लछमन बाकी, तब अनहद नाद बजाये।
एह रात गुरु की पैरीं पावे, गुरु सेवक तभी सदाये।
अमृत मंडल मूं तब तारी दे के, हरि हर हो जाये।
उलटी गंग बहायो रे साधो, तब हरि दर्शन पाये।[3]

आप साध-भाषा का प्रयोग करते हुए, जिसमें योगियों की शब्दावली का भी रंग दिखाई देता है, आत्मा को बाहर से अन्दर और ऊपर से नीचे की ओर ले जाकर प्रभु से मिलाने के सारे अमल को 'उलटी गंग बहाना', 'उलटे फेर भुआना' और 'उलटे पांव कुंभ करना' कहते हैं। आप संकेत कर रहे हैं कि मुर्शिद के दिये हुए कलमे के ज़िक्र और मुर्शिद के तसव्वुर से संसार और शरीर में फैली हुई रूह को वापस अन्दर और ऊपर ले जाओ। यही सच्चा कुम्भ है, यही सच्ची तीर्थ-यात्रा है। इससे शरीर रूपी लंका में बैठा मन रूपी दहिसर (दस सिरों वाला रावण) मर जायेगा। इस प्रकार लंका पर विजय प्राप्त हो जायेगी। इससे आत्मा हौज़े-कौसर (अमृत मंडल) में नहा कर निर्मल हो जायेगी और हरि में समाकर हरि का रूप हो जायेगी। कबीर साहिब संकेत करते हैं:

सो गुरु करहु जि बहुरि न करना॥ सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना॥
सो धिआनु धरहु जि बहुरि न धरना॥ ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना॥
उलटी गंगा जमुन मिलावउ॥ बिनु जल संगम मन महि न्हावउ॥
लोचा समसरि इहु बिउहारा॥ ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा॥[4]

आप इशारा करते हैं कि जब सतगुरु के उपदेश के अनुसार सिमरन और ध्यान की सहायता से सुरत को शरीर के आँखों से नीचे के भाग से उलटा कर, आँखों के पीछे और बीच में एकाग्र और स्थिर करोगे तो जीते-जी मरने की वह अनुपम अवस्था प्राप्त हो जायेगी, जिससे जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिये छुटकारा मिल जायेगा। आप इसी भाव को दूसरी तरह बयान करते हुए कहते हैं:

तन महि होती कोटि उपाधि॥ उलटि भई सुख सहजि समाधि॥
आपु पछानै आपै आप॥ रोगु न बिआपै तीनौ ताप॥
अब मनु उलटि सनातनु हूआ॥ तब जानिआ जब जीवत मूआ॥
कहु कबीर सुखि सहजि समावउ॥ आपि न डरउ न अवर डरावउ॥[5]

आपने 'उलटि भई' और 'अब मनु उलटि सनातनु हूआ' का संकेत दिया है। आपका भाव है कि जब तक मन और आत्मा ऊपर से नीचे और अन्दर से बाहर की ओर बह रहे थे, शरीर, मन और इन्द्रियाँ अनगिनत विषयों-विकारों का अखाड़ा बने हुए थे। जब रूहानी अभ्यास द्वारा मन और आत्मा को अन्दर और ऊपर की ओर उलटाया तो मन 'सनातनु' हो गया भाव यह अपनी मूल अवस्था में लौट आया। इस पर चढ़ी हुई विषयों-विकारों, कर्मों, संस्कारों की सभी मलिनताएँ उतर गईं। यह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक मलिनताओं से मुक्त हो गया। इस तरह इसे सहज समाधि की वह अनुपम अवस्था प्राप्त हो गई, जिससे इसे आवागमन, मन, माया और काल के हर प्रकार के दुःखों से सदा के लिये छुटकारा प्राप्त हो गया। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ॥
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाइ॥
उलटि कमलु अंम्रिति भरिआ इहु मनु कतहु न जाइ॥
अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ॥[6]

आपने भी सारी रूहानी साधना को 'उलटि कमलु अंम्रिति भरिआ' के संकेत द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। आप कहते हैं कि जब आत्मा शाहरग (सुषम्ना नाड़ी) में पहुँचकर शब्द या कलमे से जुड़ जाती है तो निचले सारे

रूहानी मण्डल पार करती हुई परमात्मा रूपी अकथ-कथा में लीन हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं:

उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥[7]

आम लोग समझते हैं कि ऋषि बाल्मीकि ने 'राम-राम' के स्थान पर 'मरा-मरा' का जाप करके मुक्ति प्राप्त की। उलटे सिमरन का असल परमार्थी भाव यह है कि जब संसार और शरीर में फैली हुई सुरत की चेतन धारा को बाहर से अन्दर और नीचे से (शरीर के आँखों से निचले भाग से) उलटा कर अन्दर नाम की धारा (इस्मे-आज़म) से जोड़ते हैं तो नाम की धारा इसे परमात्मा से अभेद कर देती है। हाथरस के परम सन्त तुलसी साहिब स्पष्ट करते हैं:

उलट चढ़े सोई ब्रहम कहाई। बिन उलटे यह मान बड़ाई॥[8]

यानी सुरत को शरीर के निचले भाग से उलटा कर अन्दर आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करने से ही इसे ब्रह्म में अभेद किया जा सकता है।

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि जब तक तू तबीयत (इन्द्रियों और शरीर) की सराय से बाहर नहीं आता, तू हक़ीक़त की गली में किस तरह दाख़िल हो सकता है?* दरवेश अफ़सोस करता है कि शरीर के नौ द्वारों में बन्द होने के कारण मनुष्य अपने अन्तर (आँखों के पीछे) में हो रही उस दयालु प्रभु की पवित्र आवाज़ को नहीं सुन सकता।†

उपरोक्त सारे वर्णन ज़िक्र और तसव्वुर के अभ्यास द्वारा आत्मा को शरीर के आँखों के निचले भाग से उलटा कर अन्दर आँखों के पीछे लाकर कलामे-इलाही से जोड़ने की ओर संकेत करते हैं। यह अभ्यास ही चिश्ती, क़ादरी और सुहरावर्दी आदि सभी सम्प्रदाओं के कामिल सूफ़ी दरवेशों की रूहानी शिक्षा का असल सार है। बाबा फ़रीद द्वारा गुज़ारी जानेवाली नमाज़े-माअकूस का असल संकेत भी इसी साधना की ओर है। आपको इस साधना के द्वारा ही ख़ुदा के साथ मिलाप की बड़ाई हासिल हुई।

---

* तू कज़ सराऐ तबीयत नमे रवी बेरूं। कुजा बकूऐ हक़ीक़त गुज़र तवानी करद।[9]

† हैफ़ दर बंदे-जिस्मे-दरमानी। नशनवी सौते-पाके-रहमानी।[10]

12. 'बेड़ा बंधि न सकिओ'

बाबा फ़रीद का कलाम है:

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला॥
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला॥
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला॥
इक आपीन्है पतली सह केरे बोला॥
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला॥
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाइसी॥
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी॥[1]

उपरोक्त शब्द में बाबा फ़रीद होशियार करते हैं कि हरएक कार्य करने का एक समय होता है। नदी से पार जाने के इच्छुक को समय रहते नाव तैयार कर लेनी चाहिये। यदि नदी में बाढ़ आ जाये तो उस समय नाव कैसे तैयार की जा सकती है? इसी तरह बीती हुई जवानी भी वापस नहीं आ सकती। जब परलोक से बुलावा आ गया तो रूह रूपी हंस पछतायेगा पर उस समय शरीर मिट्टी की ढेरी बनकर रह जायेगा और जीवन का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकेगा। परलोक में पहुँचकर जब हिसाब पूछा जायेगा तो रूह से कोई जवाब नहीं बन पायेगा।

गुरु नानक साहिब का निम्नलिखित शब्द बाबा फ़रीद के ऊपर लिखे शब्द को ध्यान में रखकर लिखा गया प्रतीत होता है:

जप तप का बंधु बेडुला जितु लंघहि वहेला॥
ना सरवरु ना ऊछलै ऐसा पंथु सुहेला॥
तेरा एको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सद रंग ढोला॥
साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई॥
जे गुण होवहि गंठड़ीऐ मेलेगा सोई॥

मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिआ होई॥
आवा गउणु निवारिआ है साचा सोई॥
हउमै मारि निवारिआ सीता है चोला॥
गुर बचनी फलु पाइआ सह के अंम्रित बोला॥
नानकु कहै सहेलीहो सहु खरा पिआरा॥
हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा॥[2]

गुरु साहिब समझाते हैं कि अगर समय पर परमात्मा की भक्ति की नाव तैयार कर लें तो संसार-सागर और इसके तूफ़ानों का डर नहीं रहता। ऐसी स्थिति में मार्ग सुखमय और यात्रा सरल हो जाती है। इस प्रकार आत्मा रूपी प्रेमिका अपने प्रीतम से मिलकर सच्ची सुहागिन बन जाती है।

बाबा फ़रीद और गुरु नानक साहिब हमें सावधान करना चाहते हैं कि हमारे जीवन का वास्तविक उद्देश्य प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई द्वारा प्रभु से मिलाप करना है और इस कार्य में ढील नहीं करनी चाहिये। जीवन का कोई भरोसा नहीं। मृत्यु का कुछ पता नहीं कब आ जाये और कहाँ आ जाये। हम दुनिया के बाक़ी सब काम करने के लिये तत्पर रहते हैं, परन्तु प्रभु-भक्ति और नाम की कमाई को, जो हमारे जीवन का वास्तविक उद्देश्य है, सदैव टालते रहते हैं। हम लम्बी, चौड़ी स्कीमें बनाते हैं कि पहले बहुत-सा धन कमा लें, बच्चों की शादियाँ कर लें और संसार के दूसरे कार्य पूरे कर लें, फिर प्रभु-भक्ति की ओर ध्यान देंगे। महात्मा सावधान करते हैं कि जो कुछ करना है, आज और अभी करो, कल का भरोसा करोगे तो पछताओगे। बुढ़ापे में शरीर नकारा हो जाता है, उस समय प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई करना सम्भव न होगा। और इस बात का भी क्या भरोसा है कि हम बुढ़ापे में पहुँचेंगे भी या नहीं। ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं और कुछ पता नहीं कि कब उस दरगाह से बुलावा आ जाये और हमें संसार से कूच करना पड़े। इसीलिये प्रभु-भक्ति की ओर जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक ध्यान देना चाहिये।

'चले चलणहार'

कतिक कूंजां चेति डउ सावणि बिजुलीआं॥
सीआले सोहंदीआं पिर गलि बाहड़ीआं॥
चले चलणहार विचारा लेइ मनो॥

गंढदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो॥
जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किंनि गए॥
जालण गोरां नालि उलामे जीअ सहे॥[3]

आप फ़रमाते हैं कि हर चीज़ का समय होता है। कार्तिक के महीने में दूर से उड़कर आई कूंजें मन को मोहित करती हैं। चैत्र मास में जंगल में आग लगी दिखाई देती है। सावन में आसमान में बिजली चमकती दिखाई देती है। शरद ऋतु में प्रेमिका की सुन्दर बाँहें प्रियतम के गले में सुशोभित होती हैं। जिस प्रकार समय के साथ यह सब बदलाव होते हैं, उसी प्रकार संसार के सब लोग अपने-अपने समय पर यहाँ से कूच कर जाते हैं। जिस चीज़ को बनने और बढ़ने में लम्बा समय लगता है, उसका अन्त क्षण भर में हो जाता है। जीवन मृत्यु में बदल जाता है। जीव को क़ब्र में जाना पड़ता है और आत्मा को दु:खों का सामना करना पड़ता है। बाबा फ़रीद चेतावनी देते हैं कि न संसार में सदा रहने की आशा रखनी चाहिये, न बुरे कर्म करने की नासमझी का शिकार होना चाहिये और न ही कभी ज़िन्दगी के असल मक़सद को आँखों से ओझल करना चाहिये। आप कहते हैं:

जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईऐ॥
झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ॥[4]

'जे जाणा मरि जाईऐ'— अगर इनसान यह बात गाँठ-बाँध ले कि मौत अटल है और फिर पता नहीं मनुष्य जन्म का सुनहरी अवसर मिले या न मिले (घुमि न आईऐ) तो वह कभी भी नाशवान दुनिया के मोह में फँसकर (झूठी दुनिआ लगि) अपना अनमोल जन्म व्यर्थ में नष्ट नहीं करेगा—'न आपु वञाईऐ।' आप सावधान करते हैं:

फरीदा कालीं जिनी न राविआ धउली रावै कोइ॥
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ॥[5]

'कालीं जिनी न राविआ'— काले बाल जवानी के सूचक हैं और 'धउली' या सफ़ेद बाल बुढ़ापे के। आप सावधान करते हैं कि तुम इस भ्रम का शिकार न बने रहो कि जवानी को इन्द्रियों के भोगों में ख़र्च कर लें और बुढ़ापे को परमात्मा की भक्ति में लगा लेंगे। 'धउली रावै कोइ'—जिस प्रकार की मनोवृत्ति

जीवन भर बनेगी, उसी प्रकार की बुढ़ापे में क़ायम रहेगी। बुढ़ापे में पहुँचकर परमात्मा की भक्ति कर पाना अगर नामुमकिन नहीं तो मुश्किल ज़रूर है। इसलिये आज और अभी मन को प्रीतम के प्रेम के रंग में रँग लो।

फरीदा सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं॥
रे मन गहिले बावले माणहि किआ रलीआं॥[6]

आप समझाते हैं कि भले इनसान, तूने सारा समय इन्द्रियों के भोगों और संसार के रंग-तमाशों में नष्ट कर दिया है। अब जब जवानी बुढ़ापे में बदल गई है और अन्त समय निकट आ पहुँचा है तो कम से कम अब तो जीवन के मूल कार्य की पूर्ति की तरफ़ ध्यान दे।

'जां तउ खटण वेल'

फरीदा जां तउ खटण वेल तां तू रता दुनी सिउ॥
मरग सवाई नीहि जां भरिआ तां लदिआ॥[7]

'जां तउ खटण वेल'— मनुष्य निश्चित समय के लिये संसार में भेजा गया है। समय उतना ही है, चाहे हम मन को दुनिया के रंग में रँग लें, चाहे उसे मालिक के इश्क़ के रंग में रँग लें। महात्मा जल्हण के अनुसार, 'छोटे हुंदे ढग्गे चारे वड्डे हो के हल वाहया। बुड्डे हो के माला फेरी रब दा उलांभा लाहया।'[8] इस भ्रम का शिकार नहीं होना चाहिये कि जवानी में दुनिया भोग लें और बुढ़ापे में परमात्मा की भक्ति कर लेंगे। सांसारिक उन्नति के लिये जवानी का समय उत्तम है, तो प्रभु-भक्ति के लिये भी यही समय श्रेष्ठ है। यह फ़ैसला हमें करना है कि इसे स्वार्थ में उन्नति के लिये ख़र्च करना है कि परमार्थ में सफलता के लिये। 'मरग सवाई नीहि'— मौत बहुत बलवान है। वह बड़ी तेज़ी से मुँह फाड़े दौड़ी चली आ रही है। जीवन की नाव तेज़ी से भर रही है, पता नहीं किस पल डूब जाये। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं:

फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥[9]

इनसान ज़िन्दगी का मूल कार्य भूलकर सदा इस दुनिया के रंग-तमाशों, विषयों-विकारों और शराबों-कबाबों की लज़्ज़तों में उलझा रहता है। वह भूल जाता है कि एक दिन अचानक मौत रूपी बाज उस पर झपटकर उसकी ज़िन्दगी की सारी खेल बिगाड़ देंगें। फिर पछताने का कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये संसार में आने का असल मक़सद आज और अभी पूरा कर लेना चाहिये। बाबा फ़रीद ख़बरदार करते हैं:

जितु दिहाड़ै धन वरी साहे लए लिखाइ॥
मलकु जि कंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कू कड़काइ॥
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ॥
जिंदु वहुटी मरणु वरु लै जासी परणाइ॥
आपण हथी जोलि कै कै गलि लगै धाइ॥
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणी आइ॥
फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ॥[10]

'साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ'- आप सावधान करते हैं कि जिस तरह शादी का मुहूर्त बदला नहीं जा सकता, उसी तरह मौत का वक़्त भी नहीं टाला जा सकता। मौत के साथ न तो ज़बरदस्ती कर सकते हैं और न चालाकी। मौत का फ़रिश्ता एक साँस भी अधिक नहीं देता। जिस प्रकार दूल्हा विलाप करती हुई दुल्हन को माता-पिता के घर से ज़बरदस्ती अपने साथ ले जाता है, उसी प्रकार मलकुल-मौत भी जीवात्मा के विलाप की बिलकुल परवाह नहीं करता और ज़बरदस्ती रूह को शरीर में से निकालकर ले जाता है। 'वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणी आइ'— मौत के बाद जीवात्मा को बहुत कठिन घाटियाँ पार करनी पड़ती हैं और किये हुए पापों के बदले अनेक दुःख सहने पड़ते हैं। 'फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ'— दूसरी ओर से बुलावे आ रहे हैं। इसलिये अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। स्वामी जी महाराज कहते हैं, 'जो कुछ बने सो अभी बनाओ। फिर का कुछ न भरोसा धरना॥'[11] भाव जीवन का असल काम आज और अभी पूरा करने की कोशिश करनी चाहिये।

'जे जाणा तिल थोड़ड़े'

फरीदा जे जाणा तिल थोड़ड़े संमलि बुकु भरी॥
जे जाणा सहु नंढड़ा तां थोड़ा माणु करी॥[12]

आप दो ख़ूबसूरत इशारे कर रहे हैं- (i) 'तिल थोड़ड़े', साँसों की पूँजी बहुत थोड़ी है। (ii) 'सहु नंढड़ा', वह बेपरवाह, अलबेला प्रीतम अपनी मौज का मालिक है। वह हमारी इच्छा पूरी करने के लिये मजबूर नहीं है, हमें ही उसकी रज़ा माननी होगी। 'थोड़ा माणु करी', हम सुन्दरता, जवानी, धन-दौलत, ताक़त आदि का मान नहीं कर सकते। हम यह बहाने नहीं बना सकते कि पहले दुनियावी काम पूरे कर लें, फिर मालिक की भक्ति में लगेंगे। जितनी जल्दी उसकी भक्ति में लगेंगे उतना अधिक हमें लाभ होगा। आप सावधान करते हैं:

फरीदा कोठे धुकणु केतड़ा पिर नीदड़ी निवारि॥
जो दिह लधे गाणवे गए विलाड़ि विलाड़ि॥[13]

मनुष्य जीवन छत की दौड़ के समान है। उस शख़्स की अक़्ल के बारे में क्या कहा जाये जो आँखें मूँद कर छत पर दौड़ रहा हो? 'पिर नीदड़ी निवारि'— अफ़सोस, जीव ने उस प्यारे की ओर से आँखें मूँद रखी हैं। उसने कुल मालिक की तरफ़ पीठ की हुई है और अन्धाधुन्ध मनमाने रास्ते पर दौड़ता चला जा रहा है। 'जो दिह लधे गाणवे'— ज़िन्दगी के गिनती के दिन तेज़ी से बीतते जा रहे हैं, 'गए विलाड़ि विलाड़ि।' बेहतर यही है कि अपने असल काम की ओर बग़ैर देर किये ध्यान दिया जाये।

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि॥[14]

बाबा फ़रीद चेतावनी देते हैं कि तूने कल-कल करते सारी उम्र बर्बाद कर ली है। 'पिछा' भाव जीवन का किनारा बहुत पीछे (दूरि) रह गया है और अगला (अगहु) यानी मौत का किनारा नज़दीक आ गया है। जवानी बीत गई है और बुढ़ापा आ पहुँचा है। अगर पहले प्रभु की भक्ति की ओर ध्यान नहीं दे पाये हो तो अब तो देना चाहिये।

'हउ लोड़ी सहु आपणा'

कंधि कुहाड़ा सिरि घड़ा वणि कै सरु लोहारु॥
फरीदा हउ लोड़ी सहु आपणा तू लोड़हि अंगिआर॥[15]

यहाँ आप दुनियावी और रूहानी रुझान वाले लोगों की आपस में तुलना करते हुए कहते हैं कि दुनियावी वृत्ति वाला शख़्स ऐसे लोहार के समान है जो दुनिया के जंगल में उगे साँसों के वृक्षों को जलाकर उसके कोयले बनाता जा रहा है। इसके विपरीत परमार्थी वृत्ति वाला व्यक्ति साँसों की पूँजी को परमात्मा रूपी प्रीतम की तलाश में ख़र्च कर रहा है।

बाबा फ़रीद ने जीव को सावधान किया है कि साँसों की पूँजी वही है, चाहे इसे इन्द्रियों के भोगों के 'अंगिआर' (अंगार) इकट्ठे करने के लिये इस्तेमाल कर लो चाहे परमात्मा की भक्ति के हीरे-जवाहरात इकट्ठे करने के लिये। इस सम्बन्ध में परमार्थी साहित्य में दृष्टान्त आता है:

एक राजा ने किसी लोहार पर ख़ुश होकर उसे चन्दन का एक बहुत बड़ा बाग़ बख़्शीश में दे दिया। लोहार को चन्दन के वृक्षों की क़ीमत का ज्ञान नहीं था। वह उन वृक्षों के कोयले बना-बना कर बेचता रहा। धीरे-धीरे सारा बाग़ ख़ाली हो गया। एक दिन अचानक बादशाह उस तरफ़ से निकला। बादशाह समझता था कि लोहार बहुत अमीर हो गया होगा। पर वह देखकर हैरान रह गया कि लोहार की हालत पहले जैसी ही है। जब सारी बात का पता चला तो बादशाह ने लोहार से पूछा, लकड़ी का कोई टुकड़ा बाक़ी बचा है या नहीं? लोहार ने बताया कि सिर्फ़ कुल्हाड़ी का दस्ता बाक़ी बचा है। बादशाह ने उसे चन्दन के सौदागर का पता बताकर वह दस्ता बेचने के लिये भेज दिया। लोहार को उस दस्ते के सैंकड़ों रुपए मिल गये। वह बहुत पछताया और उसने बादशाह के आगे विनती की कि मुझे वही तोहफ़ा एक बार फिर दे दो। राजा ने जवाब दिया, ऐसा तोहफ़ा बार-बार नहीं मिलता।

कबीर साहिब कहते हैं, 'कहता हूँ कहि जात हूँ, कहौं बजाये ढोल। स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल॥'[16] गुरु अर्जुन देव जी ख़बरदार करते हैं:

भई परापति मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम॥ मिलु साधसंगति भजु केवल नाम॥
सरंजामि लागु भवजल तरन कै॥ जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै॥[17]

'खड़ा पुकारे पातणी'

फरीदा डुखा सेती दिहु गइआ सूलां सेती राति॥
खड़ा पुकारे पातणी बेड़ा कपर वाति॥[18]

संसार के जीवों को बुरी तरह दु:खों की चक्की में पिसते हुए देखकर कामिल दरवेश (पातणी) उनको सावधान करते हैं कि तुम्हारी ज़िन्दगी की नाव बुरी तरह भवसागर के विकराल भँवर में फँसी हुई है, अपनी नाव का बचाव कर लो। बचाव का साधन आप आगे बताते हैं।

लंमी लंमी नदी वहै कंधी केरै हेति॥
बेड़े नो कपरु किआ करे जे पातण रहै सुचेति॥[19]

आप कहते हैं कि अगर तुम 'सुचेति पातण' यानी कामिल मुर्शिद का सहारा ले लोगे तो तुम्हारा बेड़ा सही-सलामत पार लग जायेगा। आपका भाव है कि जीवन की बाज़ी जीतना चाहते हो तो जल्दी से जल्दी मनमत का त्याग करके गुरुमत में आ जाओ।

'चलण का करि साजु'

फरीदा पंख पराहुणी दुनी सुहावा बागु॥
नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु॥[20]

'फरीदा पंख पराहुणी दुनी सुहावा बागु'— बाग़ कितना ही सुन्दर क्यों न हो, रात को बाग़ में आये पक्षी सुबह होते ही उड़ जाते हैं। मनुष्य भी संसार रूपी बाग़ में सिर्फ़ रात भर विश्राम करने के लिये आया है। मुसाफ़िर सराय को ही घर बना कर नहीं बैठ जाता। 'सुबह सिउ चलण का करि साजु'— जिस मुसाफ़िर को लम्बे सफ़र पर जाना हो, वह समय रहते सफ़र की पूरी तैयारी कर लेता है और रास्ते के लिये सारा सामान बाँध लेता है। जीवात्मा रूपी मुसाफ़िर को भी परलोक के सफ़र के लिये पूरी तैयारी कर लेनी चाहिये और वह तैयारी परमात्मा की भक्ति है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

जैसे रैणि पराहुणे उठि चलसहि परभाति॥
किआ तूं रता गिरसत सिउ सभ फुला की बागाति॥[21]

बाबा फ़रीद सुचेत करते हैं:

वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥
उसु ऊपरि है मारगु मेरा॥ सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा॥[22]

मार्ग छोटा और सुगम हो, मंज़िल नज़दीक हो और हमारे पास समय की कोई कमी न हो तो जब चाहें सफ़र शुरू कर सकते हैं, पर हमारी हालत इससे बिलकुल उलटी है। उम्र छोटी है, ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं, रास्ता तलवार की धार से भी तेज़ और बाल से बारीक है और मंज़िल दूर है। इसलिये अपना सफ़र आज और अभी से शुरू कर लेना चाहिये और इसे पूरी लगन और दृढ़ता से पूरा करने की कोशिश करनी चाहिये। कबीर साहिब ने भी सावधान किया है:

भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु॥ मानस जनम का एही लाहु॥
जब लगु जरा रोगु नही आइआ॥ जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ॥
जब लगु बिकल भई नही बानी॥ भजि लेहि रे मन सारिगपानी॥
अब न भजसि भजसि कब भाई॥ आवै अंतु न भजिआ जाई॥
जो किछु करहि सोई अब सारु॥ फिरि पछुताहु न पावहु पारु॥[23]

स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद तथा दूसरे सन्तों-महात्माओं ने अनेक प्रकार की चेतावनियों और सुझावों द्वारा मनुष्य को संसार में आने का अपना मूल उद्देश्य समझने और इसकी प्राप्ति की तरफ़ जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक ध्यान देने की प्रेरणा दी है।

13. 'जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए'

बाबा फ़रीद का कलाम है:

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ॥ बावलि होई सो सहु लोरउ॥
तै सहि मन महि कीआ रोसु॥ मुझु अवगन सह नाही दोसु॥
तै साहिब की मै सार न जानी॥ जोबनु खोइ पाछै पछुतानी॥[1]

जीवात्मा अपनी दर्दनाक हालत बयान करती हुई कहती है कि मैं अपने प्रीतम की खोज में बुरी तरह परेशान और बेचैन हूँ। मेरा प्रिय मुझसे रूठ गया है। इसमें मेरा अपना ही दोष है, मेरे प्रीतम का नहीं। मैं संसार और इसके शक्लों-पदार्थों के मोह में इतनी अधिक फँसी रही कि मैंने अपने प्रीतम की तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया।

पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए॥ जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए॥[1]

'जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए'— जीवात्मा कहती है कि मेरे दुःख की एक ही दवा है कि वह प्रीतम ख़ुद ही कृपा करके मुझे अपने साथ मिला ले। मुझमें इतनी समझ और ताक़त नहीं है कि मैं ख़ुद उस तक पहुँच सकूँ। वह ऊँचे से ऊँचा है, मैं नीच से नीच हूँ। वह अति निर्मल है, मैं अति मलिन हूँ। वह सर्वशक्तिमान है, मैं निर्बल और असहाय हूँ। वह सर्वज्ञ है, मैं अज्ञानता के अन्धकार में पड़ी ठोकरें खा रही हूँ। वह निष्कलंक, निरंजन है और मेरा रोम-रोम मोह-माया में डूबा हुआ है। मेरे छुटकारे का सिर्फ़ यही उपाय है कि वह ख़ुद अपनी रहमत से मुझे अपने साथ मिला ले।

'करि किरपा प्रभि'

विधण खूही मुंध इकेली॥ ना को साथी ना को बेली॥
करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥[2]

जीवात्मा रूपी स्त्री (मुंध) कहती है कि मैं संसार रूपी अन्धे कुएँ (विधण खूही) में गिरी हुई थी। मैं बिलकुल अकेली और बेसहारा थी। मेरा

न कोई साथी था और न ही मददगार। ऐसी दयनीय अवस्था में उस प्रभु ने मुझ पर दया करके मुझे अपने सच्चे भक्त या पूर्ण साधु से मिला दिया। इस दया का यह फल मिला कि अन्त में मेरा अपने प्रीतम से मिलाप हो गया। बाबा फ़रीद समझाना चाहते हैं कि जिस तरह कुएँ में गिरा हुआ व्यक्ति अपने आप इससे बाहर नहीं निकल सकता, इसी प्रकार भवसागर में ग़ोते खाता जीव, अपनी बल-बुद्धि द्वारा इसे पार नहीं कर सकता। यह कार्य परमात्मा की दया-मेहर द्वारा ही सम्भव है।

'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली' नामक अध्याय में देखा जा चुका है कि वह कर्ता ख़ुद अपनी रज़ा से जीव को मुर्शिद से मिलाता है और मुर्शिद का मिलाप ही परमात्मा से मिलाप का साधन बन जाता है। यहाँ इस सिद्धान्त पर इस पहलू से विचार करना ज़रूरी है कि परमात्मा की दया का असल अर्थ क्या है।

'रब्बी रहमत' का सिद्धान्त रूहानियत का सबसे गूढ़ अंग है, जिसे बुद्धि या तर्क द्वारा पूरी तरह समझ सकना लगभग नामुमकिन है। यहाँ केवल इतना ही समझ लेना काफ़ी है कि ख़ुदा की रहमत का सम्बन्ध ख़ुदा की ख़ुशी या मौज से है, मनुष्य के गुणों से नहीं। जो चीज़ हमें हमारे प्रयत्नों या गुणों के आधार पर दी जाती है, हम उसके हक़दार होते हैं उसमें देनेवाले का एहसान नहीं होता। इसके विपरीत दया करके दी गई चीज़ में देनेवाले की प्रसन्नता मुख्य होती है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु॥'[3] भाव हमें बाक़ी सबकुछ किये हुए कर्मों के अनुसार मिलता है, पर मुक्ति की प्राप्ति परमात्मा की कृपा से होती है। साईं बुल्लेशाह कहते हैं, 'अदल करे तां जा नहीं काई, फ़ज़लों बुखरा पावे'[4]। अगर ख़ुदा सिर्फ़ इंसाफ़ करनेवाला ही हो तो जीवात्मा कभी भी उससे मिलने की आशा नहीं रख सकती। तुलसीदास जी कहते हैं, 'बिन कारन दीन दयाल हितं'[5] वह प्रभु बिना कारण के दया करता है। बर्फ़ ठण्डी क्यों है? ठण्डक बर्फ़ का क़ुदरती गुण है। सूर्य गर्म क्यों है? गर्मी सूर्य की स्वाभाविक प्रकृति है। परमात्मा दयालु है क्योंकि प्रेम और दया उसके अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं। हम जिसको प्रेम करते हैं, उसको सदा कुछ देना चाहते हैं। परमात्मा इसलिये दया नहीं करता

कि हम दया के अधिकारी है। वह इसलिये दया करता है क्योंकि प्रेम और दया उसका स्वभाव है।

राजा भिखारी के गुण देखकर दान नहीं देता। वह इसलिये दान देता है कि दान देना उसका स्वभाव है और उसे दान देने में प्रसन्नता प्राप्त होती है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'इकु जाचिकु मंगै दानु दुआरै॥ जा प्रभ भावै ता किरपा धारै॥' और 'जन नानकु सरणि पइआ हरि दुआरै हरि भावै लाज रखाइदा॥'[6] भिखारी दान माँगता है, पर जब दाता को भाता है या वह प्रसन्न होता है तब ही वह दान देकर भिखारी की झोली भरता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'जेवडु आपि तेवड तेरी दाति॥'[7] राजा तो खाद्य-पदार्थ, रुपया-पैसा, वस्त्र आदि भौतिक वस्तुओं का ही दान देता है जब कि वह कुल मालिक रूपी दाता ऐसी निराली दया करता है कि वह अपने आपको जीव रूपी भिखारी के हवाले कर देता है। वह जिस पर भी रहमत करता है, उसे अपने साथ मिलाकर अपना रूप बना लेता है। एक कहावत है, 'दाता ओह न मंगीए फिर मंगण जाईऐ'। संसार का कोई भी दानी हमें माँगने की मजबूरी से मुक्त नहीं कर सकता। जब वह प्रभु हम पर दया-मेहर करता है तो इतना बड़ा दान देता है कि हमें अपने साथ मिलाकर भिखारी से दाता ही बना लेता है।

'फरीदा कंतु रंगावला वडा वेमुहताजु॥'[8]— वह अलख, अगम, बेपरवाह परमात्मा अपनी रज़ा का मालिक है। 'दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि॥ इकि जागंदे ना लहन्हि इकन्हा सुतिआ देइ उठालि॥'[9] वह कुल मालिक जो सारे संसार का एकमात्र सच्चा दाता है और जिसकी दात अमूल्य है, वह अपनी दात देते समय न किसी के गुण-अवगुण देखता है और न ही अपने दान का कोई मूल्य माँगता है। हम देखते हैं कि कई बार बड़े-बड़े गुणी, ज्ञानी, दानी और नेक आचरण वाले लोग, परमात्मा की सच्ची भक्ति से ख़ाली रह जाते है जब कि नीच से नीच, पापी, कुकर्मी और हिंसक कुल मालिक के भक्तों की संगति में पहुँचकर बहुत बड़े भक्त बन जाते हैं। यह सब उसकी रहमत और रज़ा का खेल है!

'आपणा लाइआ पिरमु न लगई'

आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ॥
एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देइ॥[10]

हमारे अन्दर परमात्मा का सच्चा प्यार कब पैदा होना है, इसका सम्बन्ध हमारी मर्ज़ी से नहीं, परमात्मा की रज़ा से है। जब उस प्यारे को भाता है तभी वह किसी को अपने प्यार का अमृत पीने को देता है। बाबा फ़रीद कहते हैं, 'जे जाणा सहु नंढड़ा तां थोड़ा माणु करी'—उस बेपरवाह की प्राप्ति के लिये हम अपने गुणों का मान नहीं कर सकते।

नाती धोती संबही सुती आइ नचिंदु॥
फरीदा रही सु बेड़ी हिंङु दी गई कथूरी गंधु॥[11]

स्त्री का स्नान करना और हार-शृंगार करना, आत्मा रूपी प्रेमिका द्वारा प्रीतम के साथ मिलाप के लिये की गई अनेक प्रकार की मनचाही भक्ति का प्रतीक है। प्रेमिका यह नहीं कह सकती कि मैंने इतने हार-शृंगार कर लिये हैं, इसलिये मेरे पति को ज़रूर मुझे गले लगा लेना चाहिये। इसी तरह कोई भी जीव रोज़े, नमाज़, ज़कात, हज्ज, कठिन से कठिन शरीअत का पालन, जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन, तरह-तरह के भेष और पहरावे, अनेक प्रकार के हठ-कर्मों आदि के ज़ोर पर उस बेपरवाह प्रीतम से मिलने का अधिकार नहीं जता सकता। इन चीज़ों के अभिमान से हौमै की दुर्गन्ध में तो बढ़ोतरी हो सकती है, परन्तु नम्रता, प्रेम तथा सम्र्पण की सुगन्ध पैदा नहीं हो सकती। पति का मिलाप स्त्री की सुन्दरता और उसके शृंगार पर नहीं, पति की प्रसन्नता पर निर्भर है। बाबा फ़रीद के श्लोकों में शामिल अपने एक श्लोक में गुरु अमरदास जी कहते हैं, 'नानक सो सोहागणी जु भावै बेपरवाह॥'[12] पति से मिलकर सच्ची सुहागिन वही बन सकती है, जिसे उसका पति प्रसन्न होकर ख़ुद अपने साथ मिलाना चाहता हो।

फरीदा गरबु जिन्हा वडिआईआ धनि जोबनि आगाह॥
खाली चले धणी सिउ टिबे जिउ मीहाहु॥[13]

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि जिनको सांसारिक, मानसिक, नैतिक और रूहानी बड़ाई का मान होता है, वे उस दयालु दाता की दात से ख़ाली रह जाते हैं जैसे टीले बारिश के पानी से ख़ाली रह जाते हैं।

क़ुरान शरीफ़ में उस कुल मालिक को रहमानुल-रहीम कहा गया है। वह रहमत का अथाह समुद्र है और सदा रहमत की वर्षा करता रहता है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'सच खंडि वसै निरंकारु॥ करि करि वेखै नदरि निहाल॥'[14] मुक़ामे-हक़ (सतलोक) में बैठा वह ख़ुदावंद सदा अपनी कायनात पर रहमत की वर्षा कर रहा है। हम अज्ञानतावश उस रहमत को देख नहीं सकते, समझ नहीं सकते, पर उसकी रहमत निरन्तर होती रहती है।

गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं, 'दातै दाति रखी हथि अपणै॥'[15] दाता की प्रसन्नता के कारण का केवल उस दाता को पता है। किस भिखारी को दान देना है, किसे नहीं देना, किस भिक्षुक को क्यों, कब और कैसे दान देना है, इसका राज़ भी केवल दाता को ही मालूम है। गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं 'इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥'[16] एक वे जीव हैं जो परमात्मा की रज़ा से इस रचना में ही भटकते रहते हैं और एक वे हैं जिनको उसकी रज़ा या रहमत के द्वारा उसके साथ मिलने की बड़ाई प्राप्त हो जाती है। यह कुल मालिक ही बेहतर जानता है कि किस जीव का कब तक रचना का अंग बने रहना ज़रूरी है और किस जीव की रचना से मुक्त होकर फिर उस रचयिता में समा जाने की बारी आ गई है। आप कहते हैं, 'कहु नानक करते कीआ बाता जो किछु करणा सु करि रहिआ॥'[17] कर्त्ता द्वारा किये गए कार्यों के कारण का केवल कर्ता को ही ज्ञान होता है।

परमात्मा की दया की प्राप्ति के लिये ऐसा फ़ार्मूला नहीं बनाया जा सकता कि अमुक उपाय करने से उसकी दया प्राप्त हो जायेगी। अगर उसकी दया की प्राप्ति के लिये कोई ख़ास कारण या कार्य नियत कर दिया जाये तो परमात्मा उस कारण या कार्य के अधीन हो जायेगा। परमात्मा की रज़ा या रहमत को, बिना उसकी प्रसन्नता के किसी दूसरी चीज़ के अधीन नहीं किया जा सकता। निर्बल जीव अपने यत्नों से नहीं, उस अनन्त प्रभु की कृपा द्वारा ही उससे मिलाप कर सकता है। मानव की मुक्ति सम्भव ही इसलिये है कि तुच्छ से तुच्छ, छोटे से

छोटा और पापी से पापी जीव भी उस कृपालु प्रभु से कृपा की आशा रख सकता है और उससे कृपा के लिये प्रार्थना कर सकता है।

'सचे तेरी आस'

सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास॥
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस॥[18]

'सरवर' है संसार-सागर; 'पंखी हेकड़ो' से भाव है निराश्रित, असहाय, बेसहारा जीव; 'फाहीवाल पचास' का संकेत काल, मन-माया, आशा-तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार आदि उन विरोधी शक्तियों की ओर है, जिन्होंने जीव को बुरी तरह से घेरा हुआ है। 'इहु तनु लहरी गडु थिआ'— जीवात्मा बुरी तरह से विषयों-विकारों, मोह-ममता और किये हुए कर्मों की दलदल में फँसी हुई है। वह इस दलदल में से निकलने का जितना अधिक प्रयत्न करती है, उतना अधिक इसमें और धँसती जाती है। परमात्मा की प्राप्ति के सच्चे साधन और मार्ग का ज्ञान न होने के कारण जीव क्या-क्या कर्म नहीं करते।

सारा संसार एक ही धारा में बहता चला जा रहा है। लोग अपने पूर्वजों की चलाई हुई रीतियों और परम्पराओं से बँधे हुए हैं। लाखों लोग मन्दिरों, मसजिदों, गुरुद्वारों में जाकर माथे रगड़ने को तैयार हैं, पर उन्हीं स्थानों पर जाकर पीरों-फ़क़ीरों के उपदेश के अनुसार अपने रहन-सहन को ढालने के लिये तैयार नहीं हैं। लाखों लोग सैंकड़ों मील का सफ़र तय करके तीर्थों की यात्रा पर जाने के लिये तैयार हैं, पर ज़रा सोचकर देखो कि जिन महात्माओं के नाम पर वे तीर्थ बने हैं, उन महात्माओं के उपदेश के अनुसार अपनी लिव अन्दर प्रभु के नाम के साथ जोड़ने के लिये कितने लोग तत्पर हैं? धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन के लिये लाखों लोग तैयार हैं, पर उन धर्म-ग्रन्थों के उपदेश के अनुसार मन और इन्द्रियों को भोगों की ओर से मोड़कर अन्दर नाम के साथ लिव जोड़ने के लिये कितने लोग यत्न करते हैं? मन्दिरों, मसजिदों, गिरजा-घरों, गुरुद्वारों में दीपक या मोमबत्तियाँ जलाने के लिये लाखों लोग तैयार हैं, पर रूहानी साधना द्वारा मन को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर

करके अन्तर में प्रज्वलित अखण्ड ज्योति के दर्शन करने के लिये कितने लोग कोशिश कर रहे हैं? अनेक क़ौमें, मज़हब और मुल्क परमात्मा की सच्ची भक्ति से बिलकुल अनजान हैं। वह कुल मालिक ख़ुद जिस जीव पर दया-मेहर करता है, केवल उसी का ख़याल बाहरमुखी क्रियाओं और अज्ञानता से मुक्त होकर अन्दर की ओर मुड़ता है। बाबा फ़रीद कहते हैं:

किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि॥
सांई मेरै चंगा कीता नाही त हं भी दझां आहि॥[19]

आप कहते हैं कि मैं तो दुनिया रूपी आग से बुरी तरह से घिरा हुआ था और मुझे इसमें से बाहर निकलने का कोई भी रास्ता नज़र नहीं आता था, पर उस ख़ुदावंद करीम, उस दयालु परमेश्वर ने मुझ पर दया करके मुझे इस आग से बचा लिया। वह दयालु प्रभु ही जीव को विषयों-विकारों की अग्नि से बचाये तो बचाये, नहीं तो जीव का इसमें जल जाना क़ुदरती है।

बाबा फ़रीद के शब्द सरल हैं, पर भाव बहुत गहरे हैं। हममें से कितने लोग हैं जिनको संसार में फैले काल और माया के जाल की ख़बर है! कितने लोग हैं जिनको यह पता है कि हम भोगों को नहीं भोग रहे हैं, भोग हमें भोग रहे हैं! कितने लोग हैं जो यह समझने की कोशिश करते हैं कि हमने संसार के शक्लों-पदार्थों को नहीं पकड़ा हुआ है बल्कि संसार के शक्लों-पदार्थों ने हमें पकड़ा हुआ है! कितने लोग हैं जो हर पल इस बात को याद रखते हैं कि देर-सवेर हर कर्म का फल उन्हें ख़ुद भोगना पड़ता है! हम पर-तन, पर-धन, पराई निन्दा, शराब-कबाब, भोग-विलास आदि की लज़्ज़त को सुख का साधन समझकर अन्धाधुन्ध इनके पीछे दौड़ रहे हैं। हमें कभी यह अहसास नहीं होता कि असल में ये हमारे शारीरिक और आत्मिक विनाश का कारण हैं। 'सांई मेरै चंगा कीता नाही त हं भी दझां आहि॥' यह समझ उस दयालु पिता की कृपा से ही आती है। बाबा फ़रीद इस भाव को दूसरी तरह भी समझाते हैं:

देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥
सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु॥[20]

'सकर होई विसु'—दुनिया के भोग बाहर से बहुत मीठे लगते हैं, पर इनका असर ज़हरीला होता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं, 'बहु सादहु दूखु परापति होवै॥ भोगहु रोग सु अंति विगोवै॥'[21] जितने भोग उतने रोग, जितने रोग उतने सोग। मनुष्य का सबसे बड़ा दुश्मन अज्ञानता है क्योंकि वह अज्ञानतावश ऐसे कर्म कर बैठता है जो उसके लोक और परलोक दोनों को नष्ट कर देते हैं। इस अज्ञानता से छुटकारा कौन दिलाये? 'सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु', वह कुल मालिक ख़ुद ही दया-मेहर करके हमें इस अन्धकार से छुड़ाये तो छुड़ाये, नहीं तो हमारे छुटकारे का कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

'सु पाईऐ पूर करंमि'

फरीदा दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि॥
मिसल फकीरां गाखड़ी सु पाईऐ पूर करंमि॥[22]

हम दुनियादारों का मन इस निकम्मी दुनिया के मोह के रंग में बुरी तरह रँग गया है। हमारे लिए अपनी कोशिशों से दुनिया की भक्ति को छोड़कर दरवेशों, साधुओं या परमात्मा के सच्चे भक्तों जैसी अवस्था प्राप्त कर पाना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है। 'सु पाईऐ पूर करंमि'। इस अवस्था की प्राप्ति कुल मालिक की दरगाह में लिखे रहमत के पूर्व लेख के अनुसार होती है। 'करम' फ़ारसी का शब्द है जिसका अर्थ है रहमत या दया-मेहर। यहाँ 'पूर करंमि' का अर्थ उस आदि कर्ता द्वारा जीव को सृष्टि में भेजने से पहले ही लिखे हुए धुर के रहमत भरे लेख से है। आप इशारा कर रहे हैं कि जीव अपने यत्न से नहीं, आदि कर्ता द्वारा लिखे धुर-कर्म द्वारा ही रचना के बन्धनों से आज़ाद हो कर, कुल मालिक से मिलाप कर सकता है।

'तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी'

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥ विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥ तिन धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तू॥ जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥ सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥[23]

बाबा फ़रीद कहते हैं, जिनके दिल में ख़ुदा का सच्चा इश्क़ है, वे सच्चे भक्त या दरवेश हैं और सच्चे दरवेश सिर्फ़ वे ही बन सकते हैं जिनको वह मालिक ख़ुद अपने साथ मिलाकर अपनी दरगाह में दाख़िल कर लेता है। उसका सच्चा भक्त वही बन सकता है, जिसको वह ख़ुदा बनाना चाहता है।

उपरोक्त शब्द से साफ़ ज़ाहिर है कि आप पूरी रूहानी करनी और उसमें क़ामयाबी को ख़ुदा की रहमत पर आधारित मानते हैं। ख़ुदा की भक्ति ख़ुदा के इश्क़ और नाम पर आधारित है और इस प्रेम और नाम की यह दौलत ख़ुदा की रहमत से मिलती है। उसका इश्क़, उसका नाम, उसकी बन्दगी और उसकी दरवेशी उसकी अपनी दात है।

'जा कउ नदरि धरे'

'जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ' नामक अध्याय में बाबा फ़रीद के इस श्लोक पर विचार किया गया है:

मैं जाणिआ वड हंसु है तां मै कीता संगु॥
जे जाणा बगु बपुड़ा जनमि न भेड़ी अंगु॥[24]

आपने इस श्लोक के ज़रिये समझाया है कि सिर्फ़ कामिल दरवेशों की संगति करनी चाहिये क्योंकि उनकी दात और बख़्शिश के ज़रिये ही हम कुल मालिक की सच्ची भक्ति में कामयाब हो सकते हैं। बगुले-भक्तों या दम्भी भक्तों से बचकर रहना चाहिये क्योंकि उनकी संगति से हमारा अमूल्य जन्म व्यर्थ में ही चला जायेगा। आपके इस श्लोक के साथ गुरु नानक साहिब का यह श्लोक दर्ज है:

किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि धरे॥
जे तिसु भावै नानका कागहु हंसु करे॥[25]

न हंस अपनी मर्ज़ी से हंस बने हैं और न ही बगुले जानबूझ कर बगुले रह गये हैं। जब उसकी रहमत होती है तो वह कौओं (मनमुखों) को हंस (गुरुमुख) बना लेता है, 'कागहु हंसु करे'।

रज़ा और रहमत

बाबा फ़रीद पहले इशारा कर चुके हैं- (i) 'आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥' (ii) 'करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा

अलहु बेली॥' (iii) 'तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥' (iv) 'जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए॥' इसलिये गुरु नानक साहिब अपने श्लोक 'किआ हंसु किआ बगुला' में बाबा फ़रीद द्वारा पेश किये गए ख़याल को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि गुरुमुखता की प्राप्ति का आधार परमात्मा की रहमत है और मनमुखता का कारण परमात्मा की रज़ा है।

ध्यान देने की ज़रूरत है कि आपने श्लोक की पहली पंक्ति में 'जा कउ नदरि धरे' और दूसरी में 'जे तिसु भावै' का इशारा किया है। नदरि और रज़ा कृपा और भाणा, मेहर और हुक्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कुल कायनात एक ख़ालिक की रज़ा के अधीन है और उसकी रज़ा रहमत का रूप है। उसकी रज़ा बेरहम (merciless) नहीं, रहमत से भरपूर है। ख़ुदा की रज़ा से बनी कायनात ख़ुदा की रहमत के आसरे ही खड़ी है। यह ठीक है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है और उसकी रज़ा सर्वसमर्थ है, पर शक्ति, ज्ञान और रज़ा को तो किसी के विरुद्ध और विनाश के लिये भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जब कि रहमत इस दोष से मुक्त है। वह कुल मालिक अपनी अथाह शक्ति, अपने पूर्ण ज्ञान और अपनी प्रबल रज़ा का प्रयोग सृष्टि की भलाई के लिये करता है। सृष्टि की निजात ही इस बात में है कि वह ख़ुदा प्रेम और दया का रूप है। उसकी अपार क्षमा भी उसकी प्रेम भरी दयालुता में से ही उपजी है। बिना दया के क्षमा नहीं मिल सकती और बिना क्षमा के जीव बख़्शे नहीं जा सकते।

ख़ुदा की रज़ा का एक अर्थ ख़ुदा का हुक्म है और यह हुक्म आगे उस विधान या कानून का सूचक है जिसके आधार पर वह रचयिता अपनी रचना को चला रहा है। वह हुक्म, विधान या कानून परमात्मा की प्रेममय दया को प्रकट करने का साधन है। सृष्टि में परमात्मा की शक्तिशाली रज़ा कारगर है और वह रज़ा परमात्मा के प्रेम और उसकी रहमत से भरपूर है। बाबा फ़रीद कहते है:

फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु॥
अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु॥[26]

भाव दु:ख और सुख को अलग-अलग समझने की नासमझी का त्याग करो और मन को पूरी तरह उस अल्लाह की रज़ा में ले आओ। इससे तुम

उस खुदावंद-करीम की दरगाह में दाख़िल हो जाओगे। आपका भाव है कि ख़ुदा की रज़ा में आ जाने से उसकी रहमत भी हासिल हो जाती है। हमारा असल भला मन की मर्ज़ी त्यागकर इलाही रज़ा में आ जाने में है।

वह प्रभु और उसकी रज़ा, शक्ति और ज्ञान का ही नहीं, प्रेम और दया का भी रूप है, इसलिये उसका हर कार्य प्रेम और दया से भरपूर होता है। जो बातें हमें बाहरी स्थूल दृष्टि से देखने पर दु:खदायी या ज़ुल्म भरी प्रतीत होती है, उनके पीछे भी असल में कुल मालिक की रहमत छिपी होती है। हमारे सामने असलियत का बहुत छोटा-सा हिस्सा होता है। इसलिये हम मौजूदा घटनाओं के असल कारण और महत्त्व को ठीक ढंग से देख और समझ नहीं सकते। अगर पिछले जन्मों के सारे कर्मों की पूरी तस्वीर हमारे सामने हो तो हमें वर्तमान कार्यों के असल कारणों को समझने में बहुत मदद मिल सकती है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'केतिआ दूख भूख सद मार॥ एहि भि दाति तेरी दातार॥'[27] हम हैरान होते हैं कि दु:ख, भूख और बीमारी रहमत कैसे कहला सकती है, परन्तु वास्तव में यह रहमत भरी दात ही हैं।

1. गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'सुखु दुखु पुरब जनम के कीए॥ सो जाणै जिनि दातै दीए॥'[28] और 'दुखु सुखु दीआ जेहा कीआ॥'[29] दु:ख, भूख, बीमारी आदि हमारे अपने कर्मों का फल होते हैं, लेकिन ये उस दाता की रहमत भरी रज़ा का रूप धारण करते हुए आते हैं। साहूकार का कर्ज़ चुकाने में कठिनाई महसूस होती है, परन्तु कर्ज़ उतर जाने से कर्ज़दार कर्ज़ से मुक्त हो जाता है। हर कर्म आत्मा पर पड़े भारी पत्थर के समान है, जितने भारी कर्म का भुगतान हो जाता है, उतना अधिक भार आत्मा पर से उतर जाता है और उतना ही आत्मा का प्रकाश बढ़ जाता है।
2. गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं, 'दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई॥'[30] भाव सुख में हरि की याद भूल जाती है, इसलिये वह सुख भी वास्तव में दु:ख है। बाबा फ़रीद पीछे समझा आये हैं कि जो इन्द्रियावी भोग शक्कर के समान मीठे मालूम होते हैं, असल में ज़हर का असर रखते हैं क्योंकि वे हमें इस मायावी रचना में फँसाकर हमें

हमारे निज घर के परम सुख से दूर कर देते हैं। एक महात्मा कहते है, 'बलिहारी वह दुख ते जो पल-पल नाम जपाए॥'[31] दुःख में हमारा मन नम्र हो जाता है और मजबूरी में ही सही, हमारा ध्यान कुल मालिक की तरफ़ मुड़ता है। तुलसी साहिब जी फ़रमाते हैं, 'तुलसी आपने राम को भजो रीझ या खीझ। खेत पड़ा सब नीपजै उल्टा सुल्टा बीज॥'[32] मुनासिब तो यही है कि मन में सच्चा प्रेम लेकर अपने प्रीतम की ओर ध्यान दें, पर मजबूरी या लाचारी के कारण भी उसकी तरफ़ मुड़ना, उसकी ओर से पूरी तरह अचेत रहने से बेहतर है।

3. संसार के सब सन्त-महात्मा कहते हैं कि वह प्रभु दयालु , कृपालु या रहमानुल-रहीम है। यदि वह सचमुच दयालु है तो उसका कोई कार्य दया से ख़ाली कैसे हो सकता है ? स्वामी जी महाराज कहते हैं, 'सुक्ख दुख देंगे हिकमत धार।'[33] वह दाता जो भी दुःख या सुख भेजता है, जीव की सच्ची और स्थायी बेहतरी के लिये भेजता है। हम घटनाओं और तथ्यों को शारीरिक, इन्द्रिय या भौतिक दृष्टि से देखने के आदी हैं। प्रकट दृश्यों के पीछे छिपे असल कारणों को देखने वाली सूक्ष्म और पारदर्शी रूहानी दृष्टि का हमारे अन्दर अभाव है। हो सकता है कि हमें अल्प ज्ञान के कारण बहुत कुछ दुःखदायी ही नहीं, निर्दयतापूर्ण भी प्रतीत हो और रचना में भी कई तरह की त्रुटियाँ और कमज़ोरियाँ नज़र आये, पर निर्मल ज्ञान की दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि यह रचना असल में उस कुल मालिक की अपार शक्ति, पूर्ण ज्ञान, समर्थ रज़ा और प्रेममय रहमत को प्रकट करने का ही साधन है। यह ज्ञान भी उस दयालु पिता की दया से ही प्राप्त होता है।

14. सूफ़ीमत और गुरुमत या सन्तमत

बाबा फ़रीद का सम्बन्ध सूफ़ियों के चिश्ती सिलसिले से है। चूँकि आप का कलाम आदि ग्रन्थ में दर्ज है, इसलिये स्वाभाविक ही मन में सूफ़ीमत और गुरुमत में समानता जानने की जिज्ञासा पैदा होती है।

आदि ग्रन्थ में छः गुरु साहिबान के अतिरिक्त 29 अन्य सन्तों का कलाम भी दर्ज है, इनमें से बाबा फ़रीद गुरु नानक साहिब से 300 वर्ष पूर्व और सन्त नामदेव जी 200 वर्ष पूर्व हुए। इसी तरह बाबा फ़रीद मुसलमान परिवार में पैदा हुए सूफ़ी दरवेश हैं, तो बाक़ी के सन्तों का अलग-अलग धर्मों, जातियों और स्थानों से सम्बन्ध है। गुरु अर्जुन देव जी का कथन है, 'मारगु प्रभ का हरि कीआ संतन संगि जाता॥'[1] परमात्मा के साथ मिलाप का साधन किसी विशेष समय, क़ौम, मज़हब या मुल्क के किसी विशेष महात्मा द्वारा नहीं बनाया गया। यह मार्ग उस ख़ुदावंद करीम ने ख़ुद बनाया है और सृष्टि के आरम्भ से परमात्मा से मिलाप का यही एक साधन चला आ रहा है।

हज़रत ईसा का कथन है, 'मेरा सिद्धान्त मेरा नहीं, उसका है जिसने मुझे भेजा है।'[2] क़ुरान शरीफ़ में आया है, 'हम अल्लाह में और उसके कलाम में यकीन रखते हैं, जो उसने हमारे लिए ज़ाहिर किया है; जो इब्राहीम, इस्माइल, इसहाक़, याक़ूब और उसकी औलाद के लिये ज़हूर में आया; जो मूसा और ईसा को मिला था और जो सब नबियों (अवतारों, पैग़म्बरों) को उनके ख़ुदा ने दिया था। हम उनमें से किसी में फ़र्क़ नहीं समझते और हम उस एक मालिक के अधीन हैं।'[3] दादू साहिब के अनुसार, 'जो पहुँचे ते पूछीए , तिन की एका बात। सबै स्याने एक मत उनकी ऐका जात।'[4] मौलाना रूम कहते हैं, 'यह ख़बरें (आध्यात्मिक रहस्य अथवा अनुभव) और ये सच्ची रिवायतें (रूहानी सिद्धान्त और परम्पराएँ) जिनका मैंने ज़िक्र किया है, लाखों गुरु-पीर

उनसे सहमत हैं। इस सम्बन्ध में इन महापुरुषों में ज़रा भी मतभेद नहीं है, जैसा कि मन और बुद्धि से सम्बन्धित विद्या या ज्ञान में अकसर होता है।'*

इस प्रसंग में आदि ग्रन्थ के सम्पादक गुरु अर्जुन देव जी के निम्नलिखित शब्द पर विचार करना लाभप्रद होगा। इस शब्द में आपने गुरुमत की दृष्टि से इसलाम और सूफ़ीमत के सम्पूर्ण सिद्धान्त का ख़ुलासा करते हुए सभी धर्मों की तह में काम कर रही सच्ची रूहानियत के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है:

अलह अगम खुदाई बंदे॥ छोडि खिआल दुनीआ के धंधे॥
होइ पै खाक फकीर मुसाफरु इहु दरवेसु कबूलु दरा॥
सचु निवाज यकीन मुसला॥ मनसा मारि निवारिहु आसा॥
देह मसीति मनु मउलाणा कलम खुदाई पाकु खरा॥
सरा सरीअति ले कंमावहु॥ तरीकति तरक खोजि टोलावहु॥
मारफति मनु मारहु अबदाला मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा॥
कुराणु कतेब दिल माहि कमाही॥ दस अउरात रखहु बद राही॥
पंच मरद सिदकि ले बाधहु खैरि सबूरी कबूल परा॥
मका मिहर रोजा पै खाका॥ भिसतु पीर लफज कमाइ अंदाजा॥
हूर नूर मुसकु खुदाइआ बंदगी अलह आला हुजरा॥
सचु कमावै सोई काजी॥ जो दिलु सोधै सोई हाजी॥
सो मुला मलऊन निवारै सो दरवेसु जिसु सिफति धरा॥
सभे वखत सभे करि वेला॥ खालकु यादि दिलै महि मउला॥
तसबी यादि करहु दस मरदनु सुंनति सीलु बंधानि बरा॥
दिल महि जानहु सभ फिलहाला॥ खिलखाना बिरादर हमू जंजाला॥
मीर मलक उमरे फानाइआ एक मुकाम खुदाइ दरा॥
अवलि सिफति दूजी साबूरी॥ तीजै हलेमी चउथै खैरी॥
पंजवै पंजे इकतु मुकामै एहि पंजि वखत तेरे अपरपरा॥
सगली जानि करहु मउदीफा॥ बद अमल छोडि करहु हथि कूजा॥
खुदाइ एकु बुझि देवहु बांगां बुरगू बरखुरदार खरा॥

* ईं ख़बरहा व-ईं रिवायाते-मुहिक़्क़ सद हज़ारां पीर बर वै मुतफिक़्क़।
यक ख़िलाफ़े नै मयाने-ईं अयूँ, आं चुनाकि हस्त दर इल्में ज़नूं।[6]

हकु हलालु बखोरहु खाणा॥ दिल दरीआउ धोवहु मैलाणा॥
पीरु पछाणै भिसती सोई अजराईलु न दोज ठरा॥
काइआ किरदार अउरत यकीना॥ रंग तमासे माणि हकीना॥
नापाक पाकु करि हदूरि हदीसा साबत सूरति दसतार सिरा॥
मुसलमाणु मोम दिलि होवै॥ अंतर की मलु दिल ते धोवै॥
दुनीआ रंग न आवै नेड़ै जिउ कुसम पाटु घिउ पाक हरा॥
जा कउ मिहर मिहर मिहरवाना॥ सोई मरदु मरदु मरदाना॥
सोई सेखु मसाइकु हाजी सो बंदा जिसु नजरि नरा॥
कुदरति कादर करण करीमा॥ सिफति मुहबति अथाह रहीमा॥
हकु हुकमु सचु खुदाइआ बुझि नानक बंदि खलास तरा॥[6]

उपरोक्त शब्द के प्रत्येक चरण के भावार्थ इस प्रकार हैं:

अलह अगम खुदाई बंदे॥ छोडि खिआल दुनीआ के धंधे॥
होइ पै खाक फकीर मुसाफरु इहु दरवेसु कबूलु दरा॥

ऐ इनसान, अगर तू उस अलख, अगम अल्लाह या ख़ुदा का सच्चा भक्त बनना चाहता है, तो इस फ़ानी (नश्वर) दुनिया और इसके धन्धों का मोह छोड़ दे। तू सच्चे फ़क़ीर की तरह पैरों की धूल बन जा और मुसाफ़िर की तरह अपनी नज़र हमेशा अपनी मंज़िल पर रख, ताकि तू उस कुल मालिक की दरगाह में क़बूल हो जाये।

सचु निवाज यकीन मुसला॥ मनसा मारि निवारिहु आसा॥
देह मसीति मनु मउलाणा कलम खुदाई पाकु खरा॥

तू ख़ुदा के भरोसे रूपी मुसल्ला (मुसला) बिछाकर अपनी लिव अन्दर ख़ुदा रूपी सत्य से जोड़ने की नमाज़ अदा कर। तू आशा-मनसा का त्याग करके शरीर रूपी मसजिद के अन्दर जाकर मन रूपी मौलाना को हर पल अन्दर हो रहे ख़ुदा के पाक कलाम (कलमे, शब्द या नाम) से जोड़। आपका भाव है कि अपने ध्यान को आँखों के पीछे लाकर अन्दर ख़ुदा के सच्चे कलमे से जोड़ना ही सच्ची इबादत है।

सरा सरीअति ले कंमावहु॥ तरीकति तरक खोजि टोलावहु॥
मारफति मनु मारहु अबदाला मिलहु हकीकति जितु फिरि न मरा॥

उस कुल मालिक को अपने अन्दर खोजने के लिये तू दुनिया की आशा-मनसा और इसके भोगों की चाह को त्याग (तरक) दे। यही सच्ची शरीअत और तरीक़त है। मन को वश में करना सच्ची मार्फ़त है और रूह को ख़ुदा में जज़्ब करके फ़ना-फ़ि-अल्लाह द्वारा बका-बि-अल्लाह (फिरि न मरा) की अवस्था प्राप्त कर लेना, सच्ची हक़ीक़त है। इस तरह आत्मा जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाती है।

कुराणु कतेब* दिल माहि कमाही॥ दस अउरात रखहु बद राही॥
पंच मरद सिदकि ले बाधहु खैरि सबूरी कबूल परा॥

तू धर्म-ग्रन्थों की तलावत (पाठ) तक ही न अटक। तू क़ुरान शरीफ़, तौरेत, ज़बूर और बाइबल के उपदेश को मन के अन्दर धारण करके अपनी रहनी उसके अनुसार ढाल ले। सच्चा मुसलमान बनने के लिये तू दस औरतों (पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) को बुरे अमलों से रोककर रख। तू काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पाँच दुश्मनों (पंच मरद) को सच्चाई (सिदकि) की रस्सी से बाँध और ख़ुदा की दरगाह से सब्र-शुक्र की ख़ैरात (खैरि) या दान प्राप्त कर ताकि तू सच्चा दरवेश बनकर ख़ुदा के घर में क़बूल हो जाये (कबूल परा)।

मका मिहर रोजा पै खाका॥ भिसतु पीर लफज कमाइ अंदाजा॥
हूर नूर मुसकु खुदाइआ बंदगी अलह आला हुजरा॥

तू सच्चा हाजी बनना चाहता है तो नम्रता (पै खाका=चरण धूलि) का रोज़ा रखकर ख़ुदा की रहमत रूपी मक्के में दाख़िल हो। तू मुर्शिद की हिदायत (पीर लफज) पर पूरी तरह अमल करने को सच्चा बहिश्त समझ। तू मुर्शिद के समझाये हुए रूहानी अभ्यास के ज़रिये अपना ध्यान आँखों के मध्य (आला हुजरा) में एकाग्र कर। इससे तू उन रूहानी मंज़िलों में दाख़िल हो जायेगा, जहाँ तुझे उस ख़ुदावंद करीम के निर्मल नूर और सुगन्ध रूपी हूरें (हूर नूर मुसकु) यानी अप्सराएँ प्राप्त होंगी।

सचु कमावै सोई काजी॥ जो दिलु सोधै सोई हाजी॥
सो मुला मलऊन निवारै सो दरवेसु जिसु सिफति धरा॥

* क़ुरान शरीफ़, तौरेत, ज़बूर और बाइबल को 'कतेब' कहा जाता है।

जो परमात्मा रूपी सच से लिव जोड़ता है, वह सच्चा काज़ी है। जो अपने मन का मैल धोता है, वह सच्चा हाजी है। जो मन रूपी शैतान (मलऊन) को वश में करके हमेशा ख़ुदा की इबादत (सिफति) में खोया रहता है, वह सच्चा दरवेश है।

सभे वखत सभे करि वेला॥ खालकु यादि दिलै महि मउला॥
तसबी यादि करहु दस मरदनु सुंनति सीलु बंधानि बरा॥

सच्चा दरवेश वह है जो हर पल (सभे वखत सभे करि वेला) अपनी लिव अन्तर में ख़ुदावंद करीम से जोड़कर रखता है। वह हर साँस के साथ मौला की याद में मस्त रहता है। ख़ुदा की लगातार याद उसकी माला (तसबी) है। दस इन्द्रियों को भोगों से मोड़कर सच्चा अन्तर्मुख संयम (सीलु) धारण करना और मन तथा इन्द्रियों को पूरी तरह वश (बंधानि) में रखना, उसके लिये सच्ची सुन्नत है।

दिल महि जानहु सभ फिलहाला॥ खिलखाना बिरादर हमू जंजाला॥
मीर मलक उमरे फानाइआ एक मुकाम खुदाइ दरा॥

परमात्मा का सच्चा आशिक़, भक्त या दरवेश बनने के इच्छुक को चाहिये कि पहले (फिलहाला) मन में धारण कर ले कि परिवार, घर (खिलखाना) और सगे-सम्बन्धी (बिरादर) सब हमें संसार में फँसाये रखने वाले जंजाल हैं। उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि बड़े से बड़े धनवान और नेता (मीर मलक उमरे) सब फ़ानी (फानाइआ) हैं। उस ख़ुदा की दरगाह को छोड़कर (एक मुकाम खुदाइ दरा) सृष्टि की कोई जगह मौत की मार से नहीं बच सकती।

अवलि सिफति दूजी साबूरी॥ तीजै हलेमी चउथै खैरी॥
पंजवै पंजे इकतु मुकामै एहि पंजि वखत तेरे अपरपरा॥

ख़ुदा का सच्चा आशिक़, भक्त या दरवेश बनने के इच्छुक जीव को चाहिये कि वह ख़ुदा के ज़िक्र (सिफति),सब्र-सन्तोष (साबूरी), नम्रता (हलेमी), ज़कात या दान (खैरी) के गुण धारण करे और मुर्शिद के बताये हुए रूहानी अभ्यास द्वारा अपना ध्यान आँखों के पीछे एकाग्र करके पाँच

इन्द्रियों या पाँच विकारों पर विजय प्राप्त कर ले। इस प्रकार उसका पाँच वक़्त की सच्ची और उत्तम (अपरपरा) नमाज़ अदा करने का धर्म पूरा हो जायेगा।

सगली जानि करहु मउदीफा* ॥ बद अमल छोडि करहु हथि कूजा ॥
खुदाइ एकु बुझि देवहु बांगां बुरगू बरखुरदार खरा ॥

पशु, पक्षी, हैवान, इनसान हर जीव में पल-पल ख़ुदा का नूर देखना दरवेश का सच्चा वज़ीफ़ा है। बुरे कर्मों से सदा के लिये हाथ धो लेना, फ़क़ीर का सच्चा वुज़ू है। अपनी आत्मा को अन्दर परमात्मा की दरगाह से आ रही इस्मे-आज़म की आवाज़ (बांगां) से जोड़ने वाला साधक ख़ुदा का सच्चा बन्दा, भक्त या प्यारा (बरखुरदार खरा) बन जाता है।

हकु हलालु बखोरहु खाणा ॥ दिल दरीआउ धोवहु मैलाणा ॥
पीरु पछाणै भिसती सोई अजराईलु न दोज ठरा ॥

सच्चा अभ्यासी हक़-हलाल की कमाई का खाना खाता (बखोरहु खाणा) है। वह उदार हृदय, दया और सहनशीलता के गुणों से मन को ईर्ष्या की मलिनता से साफ़ करके रूहानी अभ्यास द्वारा अन्दर अपने पीर को प्रकट (पछाणै) कर लेता है। इससे वह न केवल अज़राईल की मार से बच जाता है, बल्कि ख़ुदा की दरगाह रूपी सच्चे बहिश्त में भी दाख़िल हो जाता है।

काइआ किरदार अउरत यकीना ॥ रंग तमासे माणि हकीना ॥
नापाक पाकु करि हदूरि हदीसा साबत सूरति दसतार सिरा ॥

केवल वह रूह ही ख़ुदा रूपी ख़ाविंद की बीवी कहला सकती है जो सिर्फ़ उस एक ख़ुदा में यकीन (यकीना) पुख़्ता रखती है और उस एक के बिना किसी दूसरे का ख़याल भी मन में नहीं आने देती। वह परमात्मा रूपी पति के मिलाप (हकीना) को सच्चे आनन्द का स्रोत (रंग तमासे) मानती है। जो साधक इस तरह के सच्चे प्यार द्वारा मन को दुनिया के मोह के मैल से साफ़ (नापाक पाकु) करके, उस प्रीतम की हाज़िरी (हदूरि) में पहुँच जाता है, वही सच्चे अर्थों में हदीस† के मुताबिक़ चल रहा है और वही अपनी सूरत

* मउदीफा=वज़ीफ़ा; एक जाप जो मुसलमान सदा करते रहते हैं।

† हदीस में हज़रत मुहम्मद साहिब के जीवन से सम्बंधित रिवायतें दर्ज हैं। इसलाम में इसका बहुत ऊँचा दर्जा है।

को साबुत रखने और अपनी दस्तार बचाने के क़ाबिल बनता है। भाव उपरोक्त प्रकार की रहनी धारण करनेवाला साधक ही सच्ची शान्ति और सच्ची इज़्ज़त या शान से ख़ुदा की दरगाह में दाख़िल होने का हक़दार बनता है।

मुसलमाणु मोम दिलि होवै ॥ अंतर की मलु दिल ते धोवै ॥
दुनीआ रंग न आवै नेड़ै जिउ कुसम पाटु घिउ पाक हरा ॥

सच्चा मोमिन या मुसलमान वह है जो रहम-दिल हो और अपने मन को दुनिया के मोह और विषयों-विकारों के मैल से पूरी तरह साफ़ रखे। वह दुनिया के मोह से इस तरह निर्मल रहे जिस तरह रेशम (पाटु), फूल (कुसम), घी और मृगछाल (हरा) कभी अपवित्र नहीं होती।

जा कउ मिहर मिहर मिहरवाना ॥ सोई मरदु मरदु मरदाना ॥
सोई सेखु मसाइकु हाजी सो बंदा जिसु नजरि नरा ॥

असल सूरमा (मरदु मरदाना) वह है जो उस ख़ुदा की दया-मेहर द्वारा मन को संसार के मोह से साफ़ रखता है। जिसे वह ख़ुदावंद रूपी शहंशाह (नरा) अपनी रहमत से अपना भक्त या दास (बंदा) बना लेता है, वास्तव में वही सच्चा पीर (सेखु), दरवेश (मसाइकु) या हाजी है।

कुदरति कादर करण करीमा ॥ सिफति मुहबति अथाह रहीमा ॥
हकु हुकमु सचु खुदाइआ बुझि नानक बंदि खलास तरा ॥

संसार क़ादिर की क़ुदरत का खेल है। वह परम दयालु (करीमा) है। वह प्रेम-रूप और दया-रूप है। वह ख़ुद सच्चा (हकु) है, उसकी रज़ा (हुकमु) भी सच्ची है। उस सच्चे खुदावंद से जुड़ (बुझि) कर ही जीव, मन और माया के बन्धन तोड़कर सच्ची निजात (खलास तरा) हासिल कर सकता है।

गुरु साहिब ने सूफ़ी और इसलामी शब्दावली द्वारा सच्ची रूहानियत के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। आपकी विचारधारा ही सच्ची गुरुमत या सच्चा सन्तमत है। यही सच्चा सूफ़ीमत है और यही सब धर्मों की तह में काम कर रही सच्ची रूहानियत की रूह है। इस प्रसंग में हाथरस के सन्त तुलसी साहिब (1763-1843) की नीचे लिखी ग़ज़ल देखते हैं:

दिल का हुजरा साफ़ कर जानां के आने के लिये।
ध्यान ग़ैरों का उठा उसके बिठाने के लिये ॥

चशमे दिल से देख यहाँ जो जो तमाशे हो रहे।
दिलसितां क्या क्या हैं तेरे दिल सताने के लिये॥
एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज़्यादा हविस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये॥
नक़ली मन्दिर मसजिदों में जाय सद अफ़सोस है।
क़ुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये॥
क़ुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥
क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रासता शाहरग में है दिलबर पै जाने के लिये॥
मुरशिदे कामिल से मिल सिदक़ और सबूरी से तक़ी।
जो तुझे देगा फ़हम शाहरग के पाने के लिये॥
गोशे बातन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये॥
यह सदा तुलसी की है आमिल अमल कर ध्यान दे।
कुन कुराँ में है लिखा अल्लाहू अकबर के लिये॥[7]

उपरोक्त ग़ज़ल एक मुसलमान जिज्ञासु शेख़ तक़ी को सम्बोधित करके लिखी गई है। इस ग़ज़ल में आप शेख़ तक़ी को सम्पूर्ण रूहानी सिद्धान्तों का सार बहुत सुन्दर ढंग से समझा रहे हैं। आप कहते हैं:

दिल का हुजरा साफ़ कर जानां के आने के लिये।
ध्यान ग़ैरों का उठा उसके बिठाने के लिये॥

ऐ तक़ी! अगर तू चाहता है कि तुझे अपने अन्दर उस प्यारे प्रीतम का दीदार हो तो तू सबसे पहले मन रूपी मन्दिर को साफ़ कर। इस समय तेरा मन झूठी दुनिया के झूठे शक्लों-पदार्थों के प्यार से गन्दा हो चुका है, तू मन की इस गन्दगी को दूर कर। आप एक ख़ुदा के बिना दूसरी हर चीज़ के प्यार को 'ग़ैरों के प्यार' का नाम देते हैं। इसलाम और सूफ़ीमत में भी एक ख़ुदा के बिना किसी दूसरी चीज़ के प्रेम को कुफ़्र या अधर्म माना गया है।

चशमे दिल से देख यहाँ जो जो तमाशे हो रहे।
दिलसितां क्या क्या हैं तेरे दिल सताने के लिये॥

आप उपदेश देते हैं कि मन की आँख से देखने की कोशिश करो, इस दुनिया में तुम्हें जो भी वस्तुएँ नज़र आ रही हैं, वे बाहर से देखने में ज़रूर सुहावनी और लुभावनी प्रतीत होती हैं, परन्तु अन्त में तुम्हारे लिये सुख का नहीं, बल्कि दुःख का कारण ही सिद्ध होगीं। बाबा फ़रीद ने भी संसार के पदार्थों को चीनी में लिपटी हुई ज़हर की डलियाँ कहा है। महात्मा समझाना चाहते हैं कि संसार की बाहरी चमक-दमक के धोखे से बचना चाहिये। इस संसार में सच्चा सुख मिल सकना असम्भव है, सच्चा सुख सिर्फ़ कुल मालिक के प्रेम और विसाल से ही मिल सकता है।

एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज़्यादा हविस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये॥

आप कहते हैं कि जब तक हमारा मन संसार की अनन्त इच्छाओं से भरा हुआ है, इसके अन्दर ख़ुदावंद करीम के बैठने के लिए कोई जगह नहीं है। जो बर्तन पहले ही भरा हुआ हो, उसमें कोई वस्तु कैसे डाली जा सकती है? जिस कुर्सी पर कोई पहले ही बैठा हो, उसके ऊपर कोई और कैसे बैठ सकता है? इसलिये आप ख़बरदार करते हैं कि जब तक मन, दुनिया और इसके शक्लों-पदार्थों के प्यार से भरा हुआ है, इसके अन्दर उस ख़ुदावंद करीम का नूर प्रकट हो सकना असम्भव है।

नक़ली मन्दिर मसजिदों में जाय सद अफ़सोस है।
क़ुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये॥

आप इनसानी शरीर को क़ुदरती मन्दिर या मसजिद कहते हैं तथा बाहरी मन्दिरों, मसजिदों और गिरजों को नक़ली मन्दिर, मसजिद और गिरजे कहते हैं। आप अफ़सोस करते हैं कि जिस शरीर रूपी मसजिद या मन्दिर को ख़ुदा ने स्वयं बनाया है और जिसके अन्दर ख़ुदा का निवास है, हम ख़ुदा को उस क़ुदरती मसजिद या मन्दिर में ढूँढने की जगह उसकी तलाश में बाहर भटक रहे हैं। ख़ुदा जब भी मिलेगा शरीर रूपी मन्दिर के अन्दर से ही मिलेगा। वह न कभी बाहर मिला है और न कभी बाहर से मिलेगा। बाबा फ़रीद भी यही समझा चुके हैं:

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि॥
वसी रबु हिआलिऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥[8]

अन्दर रह रहे ख़ुदा को बाहर ढूँढने से भटकन और परेशानी के इलावा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

क़ुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से।
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥

मुसलमान भाई मक्के के हज्ज के लिये जाते हैं। वहाँ काअबा है, जिसकी मेहराब में खड़े होकर मुल्ला बाँग देता है। तुलसी साहिब ऊपर शरीर को क़ुदरती मसजिद कह आये हैं। यहाँ शरीर को क़ुदरती काअबा कह रहे हैं। आप इशारा करते हैं कि शरीर का आँखों से ऊपर का हिस्सा वह मेहराब है जिसके अन्दर ख़ुदा की दरगाह से रूह को बुलाने के लिये नाम या शब्द रूपी सच्ची बाँग आ रही है। सूफ़ी फ़क़ीरों ने जिसे बाँगे-इलाही, निदाए-सुलतानी आवाज़े-मुसतक़ीम, सौते-सरमदी, नग़मा-ए-इलाही आदि अनेक नामों के साथ पुकारा हैं। आप इशारा कर रहे हैं कि अगर तुम ख़ुदा की हज़ूरी का सच्चा हज्ज गुज़ारना चाहते हो तो इस बांगे-इलाही को अपने शरीर रूपी सच्चे काअबे में से सुनो।

सन्त-महात्मा समझाते हैं कि जब हम अपनी रूह को आँखों के पीछे और मध्य एकाग्र और स्थिर करते हैं, तो मुकम्मल यकसूई (पूर्ण एकाग्रता) की अवस्था में रूह को मुक़ामे-हक़ (सचखण्ड) से आ रही ख़ुदा के सच्चे कलमे या कलाम की आवाज़ सुनाई देती है। यह आवाज़, रूह को मुक़ामे-हक़ वापस पहुँचने के लिए, ख़ुदा की तरफ़ से आ रहा बुलावा है। आत्मा इस आवाज़ को पकड़ कर सहज ही मुक़ामे-हक़ या निज घर वापस पहुँच सकती है।

गुरु नानक साहिब की जन्मसाखी में आता है कि गुरु साहिब की मक्के की यात्रा के समय काज़ी रुकनद्दीन ने आपसे ख़ुदा के विसाल के साधन के बारे में पूछा तो आपने यह जवाब दिया:

उपर खासै महिल पर देवे बांग खुदाइ।
सुते बांग न सुण सकण रहिआ खुदाइ जगाइ।
सुती पइ निभाग बस सुणे न बांगां कोई।
जो जागे सेई सुणे साईं संदी सोइ।[9]

आप इशारा करते हैं कि शरीर रूपी महल के ऊपरी भाग में ख़ुदा की दरगाह से पल-पल, क्षण-क्षण ख़ुदा के कलमे, कलाम, शब्द या नाम की

आवाज़ आ रही है। जिन बदकिस्मत लोगों का ध्यान शरीर के नौं द्वारों के ज़रिये संसार में फैला हुआ है, उनको वह बाँग सुनाई नहीं देती। जो ख़ुश-किस्मत लोग अपना ध्यान शरीर के आँखों से निचले भाग में से निकालकर आँखों के पीछे और मध्य एकाग्र और स्थिर कर लेते हैं, वह वहाँ से आ रही बाँगे-इलाही को पकड़कर सहज ही मुक़ामे-हक़ या निजघर वापस पहुँच कर ख़ुदावंद करीम से विसाल कर लेते हैं।

क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रासता शाहरग में है दिलबर पै जाने के लिये॥

आप समझा रहे हैं कि संसार और शरीर के आँखों से निचले भाग में से परमात्मा की खोज करना व्यर्थ है। ख़ुदा की दरगाह को जानेवाला रास्ता शाहरग में से होकर जाता है। शाहरग गले की घण्टी नहीं है। यह सूक्ष्म नाड़ी है, जिसको पीरों-फ़क़ीरों ने शाहरग, सुषम्ना, सुखमना आदि कहा है। इसको सन्तों-महात्माओं ने ग़ैब की आँख, अन्दर की आँख, शिव नेत्र, दिव्य-चक्षु आदि कहा है। क़ुरान शरीफ़ में आता है, नहनु अक़रबु अलैहि मिन हबलल वरीद।[10] भाव ख़ुदा शाहरग से नज़दीक है। सन्त बेणी जी कहते हैं:

इड़ा पिंगुला अउर सुखमना तीनि बसहि इक ठाई॥
बेणी संगमु तह पिरागु मनु मजनु करे तिथाई॥
संतहु तहा निरंजन रामु है॥[11]

आप फ़रमाते हैं कि जिस जगह बाईं तरफ़ की सूक्ष्म नाड़ी ईड़ा, दाईं तरफ़ की सूक्ष्म नाड़ी पिंगला और मध्य की नाड़ी सुषम्ना मिलती हैं, वहाँ नाम रूपी अमृत का सरोवर है, जिसे सन्तों-महात्माओं ने संगम, प्रयाग, त्रिवेणी, अमृतसर, हौज़े-कौसर आदि का नाम दिया है। अमृत के सरोवर में स्नान करने से मन पर चढ़ी कर्मों और संस्कारों की मैल दूर हो जाती है और आत्मा को कुल मालिक के दर्शन होते हैं।

मुरशिदे कामिल से मिल सिदक़ और सबूरी से तक़ी।
जो तुझे देगा फ़हम शाहरग के पाने के लिये॥

आप समझा रहे हैं कि ध्यान को अन्दर आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करके शाहरग रूपी आन्तरिक मार्ग पर चलने की युक्ति कामिल मुर्शिद से

प्राप्त होती है। कामिल मुर्शिद मुरीद की रूह को अन्दर कलमे, शब्द या नाम से जोड़ता है और कलमा, शब्द या नाम रूह को ख़ुदा के साथ मिला देता है। कामिल मुर्शिद स्वयं कलमे, शब्द या नाम के अभ्यास द्वारा अपनी रूह को ख़ुदा में जज़्ब कर चुका होता है और वह मुरीद या शिष्य की रूह को भी कलमे या शब्द से जोड़कर मुक़ामे-हक़ में पहुँचने की युक्ति समझाता है। जब मुरीद प्रेम और भरोसे से मुर्शिद द्वारा समझाये गये रूहानी अभ्यास की कमाई करता है तो उसकी रूह भी शब्द या नाम को पकड़कर कुल मालिक की दरगाह में पहुँच जाती है।

गोशे बातन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये॥

आप समझाते हैं कि ऐ तक़ी! जब तू कामिल मुर्शिद द्वारा समझाई गई युक्ति के अनुसार आत्मा को आँखों के पीछे और मध्य एकाग्र और स्थिर कर लेगा तो तेरे आन्तरिक कान (गोशे बातन) खुल जायेंगे और तुझे ख़ुदा की दरगाह से आ रही कलमे, शब्द या नाम की ध्वनि सुनाई देनी शुरू हो जायेगी। उस ध्वनि को पकड़कर तेरी रूह उस बड़े से बड़े और ऊँचे से ऊँचे ख़ुदा (अल्लाहू अकबर) की दरगाह में पहुँच जायेगी।

सन्तों ने आत्मा की सुनने की शक्ति को 'सुरत' और देखने की शक्ति को 'निरत' कहा है। महात्मा आन्तरिक कानों द्वारा शब्द की ध्वनि को सुनने और आन्तरिक आँख द्वारा शब्द के प्रकाश को देखने का उपदेश देते हैं। सूफ़ी दरवेशों ने आन्तरिक आँख को चश्मे-बातन, दीदा-ए-दिल (मन की आँख), ग़ैबी आँख आदि कहा है। भारतीय सन्तों ने इसे शिव-नेत्र, आन्तरिक आँख, दिव्य-चक्षु , दिव्य दृष्टि आदि कहा है। तुलसी साहिब समझाना चाहते हैं कि पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में आत्मा को अन्तर में ख़ुदा की दरगाह से आ रहा नूर दिखाई देने लग जाता है और उसकी दरगाह से आ रही ध्वनि सुनाई देने लग जाती है। शब्द की ध्वनि द्वारा आत्मा आन्तरिक मण्डलों का रुख़ क़ायम कर लेती है और शब्द के प्रकाश द्वारा आन्तरिक सफ़र तय करके कुल मालिक की दरगाह में पहुँच जाती है।

यह सदा तुलसी की है आमिल अमल कर ध्यान दे।
कुन कुराँ में है लिखा अल्लाहू अकबर के लिये॥

तुलसी साहिब समझाते हैं कि ऐ साधक! मैंने तुझे सन्तों की तालीम का सार समझा दिया है। तू ध्यानपूर्वक मुर्शिद की समझाई हुई युक्ति के अनुसार अभ्यास कर। इस अभ्यास में सफलता द्वारा तेरा अल्लाह-तआला से मिलाप हो जायेगा और तुझे क़ुरान शरीफ़ में दर्ज कुन-फ़यकून[12] का भेद भी मालूम हो जायेगा। कुन-फ़यकून का अर्थ है कि ख़ुदा ने हुक्म दिया, 'हो जा' (कुन) और रचना 'हो गई' (फ़यकून)। तुलसी साहिब समझा रहे हैं कि कुन असल में ख़ुदा के कलमे, कलाम, शब्द या नाम का सूचक है और ख़ुदा का कलमा, कलाम, शब्द या नाम ख़ुदा का रूप है। इसलिये रूह का कुन, कलमे, कलाम, शब्द या नाम में अभेद हो जाना ही अल्लाहू-अकबर या सर्वशक्तिमान कुल मालिक में अभेद हो जाना है। तुलसी साहिब का भाव है कि क़ुरान शरीफ़ में बयान किया गया, सूफ़ी पीरों-फ़क़ीरों और दूसरे सन्तों-महात्माओं द्वारा समझाया गया रूहानी सिद्धान्त एक है। पीरों-फ़क़ीरों का सत्य का वर्णन अलग-अलग है, परन्तु उन द्वारा बयान किया गया सत्य एक है। तुलसी साहिब एक अन्य ग़ज़ल में शेख़ तक़ी को उपदेश देते हैं:

सुन ऐ तकी न जाइओ ज़िनहार देखना।
अपने में आप जलवाए दिलदार देखना॥
पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल।
इसी परदाए सियाह के ज़रा पार देखना॥
चौदह तबक़ का हाल अयां हो तुझे ज़रूर।
ग़ाफ़िल न हो ख़याल से हुशियार देखना॥[13]

आप कहते हैं कि ऐ तक़ी! तू बाहर भटकने की बजाय अपने अन्तर में प्रीतम की तलाश कर। अन्दर बैठे प्रीतम से मिलाप के लिये ध्यान को आँखों के पीछे और मध्य स्थिर करना ज़रूरी है। दो आँखों के दो तिलों के पीछे एक काला नुक़्ता (नुक़्ता-ए-स्याह) है जिसमें सारा रूहानी भेद छिपा हुआ है। जब तू उसको पार करके शाहरग में पहुँचेगा तो तुझे मुक़ामे-हक़ से आ रही शब्द की आवाज़ सुनाई देने लग जायेगी। जब तू इस आवाज़ को पकड़कर ऊपर चढ़ेगा, तो चौदह रूहानी मण्डल पुस्तक की तरह तेरे सामने खुल जायेंगे और तू आख़िरी मुक़ाम पर पहुँच कर अल्लाह-तआला में समा जायेगा।

ऊपर तुलसी साहिब ने रूहानी यात्रा में आनेवाले अनेक मण्डलों की तरफ़ इशारा किया है। आगरा के सन्त स्वामी शिवदयाल सिंह जी जिन्हें तुलसी

साहिब से ही रूहानी प्रकाश मिला था उन मण्डलों की ओर इशारा करते हुए कहते हैं:

ला-मुक़ाम पाया लाहूत। छोड़ा नासूत मलकूत जबरूत॥*
हाहूत का जाय खोला द्वारा। हूतलहूत और हूत सम्हारा॥
हूत मुक़ाम फ़क़ीर अख़ीरी। रूह सुरत जहाँ देती फेरी॥[14]

रूह नासूत, मलकूत और जबरूत को पार करके लाहूत में पहुँचती है। उसके बाद हाहूत और हूतलहूत को पार करके हूत में जा पहुँचती है जो कामिल फ़क़ीरों का आख़िरी मुक़ाम है। आप आगे कहते हैं:

अल्ला हू त्रिकुटी लखा, जाय लखा हा सुन्न।
शब्द अनाहू पाइया, भँवरगुफा की धुन॥
हक़्क हक़्क़ सतनाम धुन, पाई चढ़ सचखंड।
संत फ़कर बोली जुगल, पद दोऊ एक अखंड॥[15]

जिन रूहानी मण्डलों को भारतीय सन्तों ने त्रिकुटी, सुन्न और भँवरगुफ़ा कहा है, सूफ़ी दरवेशों ने उनको क्रमशः 'अल्ला हू', 'हा', और 'अनाहू' कहकर पुकारा है। जिस मण्डल को भारतीय सन्त सचखण्ड, सतलोक या सतनाम कहते हैं, सूफ़ी दरवेश उसे मुक़ामे-हक़ कहते हैं। स्वामी जी महाराज इशारा करते हैं, 'संत फ़कर बोली जुगल, पद दोऊ एक अखंड॥' सन्तों और फ़क़ीरों की भाषा अलग-अलग है, पर उनके द्वारा वर्णित सत्य एक ही है।

अलग-अलग समय, मज़हबों, मुल्कों के दरवेशों में हज़ारों सालों, हज़ारों मीलों और भाषा की गहरी खाइयाँ होने के बावजूद उनके उपदेश में दिखाई देती पूर्ण समानता का कारण, उनके आन्तरिक रूहानी अनुभव की समानता है। सन्तों-महात्माओं द्वारा बयान किये गए सिद्धान्त को सूफ़ीमत, गुरुमत, सन्तमत, प्रेमा-भक्ति का मार्ग, शब्द-मार्ग आदि कोई भी नाम दिया जा सकता है, पर यह सिद्धान्त एक, अनादि और सर्वसांझा है। इसमें न पहले कभी कोई परिवर्तन हुआ है और न आगे हो ही सकता है।

---

* नासूत=पिण्ड के तीन निचले चक्र—मूल चक्र, इन्द्रिय चक्र और नाभि चक्र; मलकूत=हृदय चक्र, कण्ठ चक्र और तीसरा तिल; जबरूत=सहसदल कमल; लाहूत=त्रिकुटी; हाहूत=दसम् द्वार; हूतलहूत=भँवर गुफा; हूत=सचखण्ड।

15. सार

बाबा फ़रीद के उपदेश का पुनः अवलोकन करने पर कुछ तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आते हैं:

1. बाबा फ़रीद ख़ुदा में यकीन रखनेवाले और ख़ुदा की बन्दगी करनेवाले कामिल मुर्शिद हैं। आप ख़ुदा और रूह की हस्ती को सच मानते हैं और मनुष्य का उद्धार भौतिक और सांसारिक उन्नति में नहीं, कुल मालिक से मिलाप में देखते हैं। आप इस बात पर ज़ोर देते हैं कि दीन और दुनिया, लोक और परलोक दोनों में मनुष्य की सच्ची सफलता और सच्ची शान्ति का मूल आधार रूह का ख़ुदा से विसाल है।

2. वह कुल मालिक पूर्ण, अजर और अमर है। संसार अधूरा और नश्वर है, इसलिये इसके सुख भी अधूरे और नश्वर हैं। जिस संसार को परमात्मा ने ख़ुद अधूरा बनाया है, वह मनुष्य के यत्नों से कभी पूर्ण नहीं बन सकता। यह संसार न आज तक सच्चे और स्थायी सुख का नगर बन सका है और न कभी बन ही सकेगा। इस संसार में एक ओर शैतान (काल), मन और माया ने जीव को कुमार्ग पर डाल रखा है और दूसरी ओर इसमें बुढ़ापे, मौत और विनाश का राज्य है। केवल उस पूर्ण और अविनाशी परमात्मा के मिलाप से ही पूर्ण और स्थायी सुख प्राप्त हो सकता है।

3. आत्मा परमात्मा का अंश है। इस समय यह अपने असल से बिछुड़ी हुई है। इसके अन्दर अपने असल से मिलाप की क़ुदरती तड़प है। यह अपने असल में अभेद होकर ही सच्चा सुख प्राप्त कर सकती है।

4. आप इशारा करते हैं कि जिस ख़ुदा ने जीव की रचना की, उसने जीव को संसार में भेजते समय ख़ुद उसे यह कर्त्तव्य सौंपा है कि वह ख़ुदा की इबादत द्वारा ख़ुदा से मिलाप करे। मनुष्य जन्म का मूल ध्येय इस कार्य की पूर्ति है, नहीं तो यह जीवन व्यर्थ है।

5. जिस परमात्मा की जीव को तलाश है, वह इसके अपने अन्दर है। उस प्रभु से मिलाप का साधन और मार्ग भी मनुष्य के अपने अन्दर है। उसकी बाहर खोज करना व्यर्थ है।

6. परमात्मा की प्राप्ति के लिये कोई ख़ास धर्म या शरीअत अपनाने या त्यागने की ज़रूरत नहीं। असल ज़रूरत तो मन के रुझान को बदलने और संसार के मोह को त्यागकर हृदय में प्रभु का प्रेम पैदा करने की है। प्रभु की प्राप्ति एक निर्मल आत्मिक अनुभव है जिसका किसी बाहरमुखी भेष या कर्मकाण्ड आदि से कोई सम्बन्ध नहीं। इसका सम्बन्ध नफ़्स (मन) की सफ़ाई और नाम की कमाई से है।

7. अपनी रहनी को अपने आदर्श के अनुसार ढालना पड़ता है। परमात्मा की प्राप्ति का आदर्श लेकर चलने वाले व्यक्ति को दुनियादारों जैसी रहनी त्यागकर सच्चे दरवेश जैसी रहनी अपनानी पड़ती है। हक़-हलाल की कमाई, निर्मल आचरण, सच को धारण करना, सेवा, प्रेम, नम्रता, सहनशीलता, क्षमा, सन्तोष, प्रभु की रज़ा में राज़ी रहना आदि गुण इस रहनी के मुख्य अंग है।

8. यह संसार कर्म-भूमि है। जीव को देर सवेर अपने किये हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। व्यावहारिक दृष्टि से बुरे कर्म त्यागकर नेक कर्म करने चाहियें। परन्तु न नेक कर्म बुरे कर्मों का नाश कर सकते हैं और न ही नेक कर्म परमात्मा की प्राप्ति का साधन हैं। कर्मों के नाश और परमात्मा की प्राप्ति का असल साधन प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई है। इसलिये बुरे कर्मों से बचते हुए अपना ध्यान प्रभु-भक्ति या नाम की कमाई की ओर मोड़ना चाहिये।

9. ख़ुदा की इबादत की सही युक्ति प्राप्त करने और उस युक्ति के अनुसार अभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिये, किसी कामिल मुर्शिद की पनाह और सहायता ज़रूरी है, क्योंकि ख़ुदा से मिलाप कर चुका मुर्शिद ही अपने मुरीद का ख़ुदा से मिलाप करवा सकता है।

10. ख़ुदा से विसाल के लिये मुर्शिद अपने मुरीद को ख़ुदा के नाम की कमाई का तरीक़ा सिखाता है। मुरीद को चाहिये कि मुर्शिद द्वारा समझाये गए रूहानी अभ्यास के ज़रिये ध्यान को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करके

सुरत को अन्दर ख़ुदा की दरगाह से आ रहे सच्चे कलमे, कलाम, शब्द या नाम से जोड़े, ताकि वह अपना रूहानी सफ़र तय करके निज-घर वापस पहुँच सके।

11. बाबा फ़रीद चेतावनी देते हैं कि मनुष्य जीवन क्षणभंगुर है। मौत अटल है, पर मौत के वक़्त का पता नहीं। इसलिये इनसान को चाहिये कि अपना ध्यान हर ओर से मोड़कर, एक-मन एक-चित्त होकर शीघ्र ख़ुदा की इबादत में लगा दे ताकि वह ख़ुदा से विसाल करके दुनिया के दुःखों से हमेशा के लिये आज़ाद हो जाये। यही मनुष्य जन्म का असल मक़सद है।

12. ख़ुदा के हुक्म से मुक़ामे-हक़ से मृत्युलोक में उतरी रूह सिर्फ़ ख़ुदा की रहमत से ही वापस अपने देश पहुँच सकती है। ख़ुदा की सच्ची बन्दगी का राज़ (भेद) देनेवाला मुर्शिद भी ख़ुदा की रहमत से मिलता है और ख़ुदा की इबादत में कामयाबी भी ख़ुदा की रहमत से नसीब होती है। ख़ुदा के इश्क़, ख़ुदा की बन्दगी और ख़ुदा से विसाल का सारा सिलसिला ख़ुदा की रहमत पर आधारित है।

13. बाबा फ़रीद इनसान के मज़हब, मुल्क, क़ौम, नस्ल, जाति-पाँति, उम्र, अक़्ल, धन-दौलत आदि को उसकी बड़ाई का आधार नहीं मानते। आपने मनुष्य के छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा और सफल-असफल होने को किसी प्रकार के बाहरमुखी हालात पर नहीं बल्कि इस बात पर आधारित किया है कि वह ख़ुदा के इश्क़ और ख़ुदा के नाम के रंग में रँगा हुआ है या दुनिया के प्रेम के रंग में रँगा हुआ है।

14. बाबा फ़रीद ने प्रेरणा दी है कि ख़ुदा की मख़लूक का प्रेम ख़ुदा के प्रेम का अभिन्न अंग है। सच्चा प्रभु-भक्त हर जीव को प्रभु का रूप मानता है। वह कभी किसी का दिल नहीं दुखाता क्योंकि उसे इस बात का डर रहता है कि इससे उसका प्रीतम नाराज़ हो जायेगा। ख़ुदा का आशिक़ मन में बदले की भावना नहीं रखता। वह विरोधियों और दुश्मनों से भी सहनशीलता, क्षमा और प्रेम का व्यवहार करता है।

15. बाबा फ़रीद मनुष्य और मनुष्य के बीच भ्रातृभाव (brotherhood) का आधार परमात्मा के प्रति पितृभाव (fatherhood) को मानते हैं। जब तक

कोई इनसान निजी अभ्यास द्वारा परमात्मा को पिता-रूप में नहीं देख लेता, वह संसार के दूसरे जीवों को अपने बहन-भाई नहीं समझ सकता। भ्रातृ-भाव, पितृ-भाव का स्वाभाविक अंग है, पर बिना पितृ-भाव के भ्रातृ-भाव नामुमकिन है। यही कारण है कि बाबा फ़रीद ने अपने कलाम में सबसे अधिक ज़ोर ख़ुदा के इश्क़ और उसकी सच्ची इबादत द्वारा ख़ुदा की प्राप्ति पर दिया है।

16. बाबा फ़रीद के उपदेश के तीन पहलू विशेष रूप से ध्यान की माँग करते हैं:

पहला पहलू

1. दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
   जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥[1]
2. फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥[2]
3. फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि॥
   मतु सरमिंदा थीवही सांई दै दरबारि॥[3]
4. फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
   लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केर्हे कंमि॥[4]

दूसरा पहलू

1. बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥[5]
2. जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥॥[6]
3. सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा॥[7]

तीसरा पहलू

1. जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥[8]
2. तिन धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥[9]

बाबा फ़रीद का सन्देश जितना उनके अपने समय में ज्ञानपूर्ण और कल्याणकारी था, उतना आज भी है।

भाग तीसरा

कलाम

[1]*

जितु दिहाड़ै धन वरी साहे लए लिखाइ॥
मलकु जि कंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कू कड़काइ॥
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ॥
जिंदु वहुटी मरणु वरु लै जासी परणाइ॥
आपण हथी जोलि कै कै गलि लगै धाइ॥
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणी आइ॥
फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ॥

शब्दार्थ: धन=स्त्री। वरी=शादी होगी। साहे=विवाह का मुहूर्त। मलकु=मलकुल मौत, मौत का फ़रिश्ता। साहे लिखे न चलनी=लिखा हुआ वक़्त टल नहीं सकता। जिंदू कू=जान को। मरणु वरु=मौत का दूल्हा। लै जासी परणाइ=विवाह करके ले जायेगा। वालहु निकी=बाल से भी बारीक। पुरसलात=पुले-सिरात, दोज़ख़ की आग पर बना बाल से बारीक पुल। किड़ी पवंदीई=आवाज़ें आती हैं। न आपु मुहाइ=अपने आपको न ठगा।

भावार्थ: जीव के विवाह भाव मौत का समय निश्चित है। जिस मौत के फ़रिश्ते की बातें सुना करते थे, अन्त समय वह सामने आकर खड़ा हो जाता है। वह हड्डियों को कड़का कर आत्मा को शरीर में से निकालकर ऐसे साथ ले जाता है, जैसे दूल्हा, रोती-चिल्लाती दुल्हन को ज़बरदस्ती साथ ले जाता है। इनसान को समझ लेना चाहिये कि यह वक़्त टल नहीं सकता। आत्मा की विदाई पर निर्जीव शरीर किसके गले लगकर रोये, किसका आसरा ढूँढे? इतना

* बाबा फ़रीद के श्लोकों के साथ दिये गए यह नं: श्री आदि ग्रन्थ में पृ. 1377 से 1384 तक दर्ज़ बाबा फ़रीद के श्लोकों के मुताबिक़ हैं। इन श्लोकों के साथ जहाँ गुरु साहिबान के श्लोक आते हैं, उनका वर्णन दिया गया है।

ही नहीं, मौत के बाद आत्मा को पुले-सिरात पर से गुज़रना पड़ता है, जो बाल से भी बारीक है। इनसान को दूसरी ओर से बुलावे आ रहे हैं इसलिये उसे अपना वक़्त बर्बाद नहीं करना चाहिये।

बाबा फ़रीद यह समझा रहे हैं कि मृत्यु अटल है और इसका समय कभी बदला नहीं जा सकता। इस श्लोक में यह रूहानी भेद छिपा हुआ है कि जो लोग जीते-जी ख़ुदा की बन्दगी द्वारा अपना ध्यान शरीर के नौ द्वारों में से समेटकर आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर करने का अभ्यास नहीं करते, उनके लिये मृत्यु का समय अत्यन्त दु:खदायक होता है। उनकी रूह जिस्म को छोड़ना नहीं चाहती, पर यमदूत इसे ज़बरदस्ती खींचते हैं। इससे जो पीड़ा होती है उसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

इसके साथ ही बाबा फ़रीद यह चेतावनी देना चाहते हैं कि मृत्यु से दु:खों का अन्त नहीं हो जाता। जो लोग जीते-जी ख़ुदा की बन्दगी नहीं करते और अनेक प्रकार के गुनाहों में खोए रहते हैं उन्हें मृत्यु के बाद बहुत दर्दनाक और डरावने रास्ते से गुज़ारा जाता है। उनको अपने गुनाहों का फल भोगने के लिये नरकों की आग में जलना पड़ता है।

[2]

फरीदा दर दरवेसी गाखड़ी चलां दुनीआं भति॥
बंन्हि उठाई पोटली किथै वंञा घति॥

शब्दार्थ: गाखड़ी=कठिन। दरवेसी=फ़क़ीरी। भति=भाँति। बंन्हि=बाँधकर। वंञा=जाऊँ।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि ख़ुदा की दरगाह का सच्चा दरवेश बनना बहुत मुश्किल है। मैंने अपने ऊपर दुनियादारी और बुरे कर्मों की जो गठरी उठाई हुई है, उसे लेकर कहाँ जाऊँ? आपका भाव है कि ख़ुदा का इश्क़ और दुनिया की मुहब्बत इकट्ठे नहीं चल सकते। सच्चा दरवेश बनने के लिये दुनिया का मोह त्यागकर अपने अन्दर परमात्मा का सच्चा प्रेम पैदा करना ज़रूरी है।

[3]

किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि॥
सांईं मेरै चंगा कीता नाही त हं भी दझां आहि॥

शब्दार्थ: गुझी भाहि=छिपी हुई आग। हं भी=मैं भी। दझां=जल जाता।

भावार्थ: आप समझा रहे हैं कि दुनिया की आन्तरिक असलियत इसके बाहरी रूप से बिलकुल अलग है। इन्द्रियों के भोग, विषय-विकार, सांसारिक ऐशो-इशरत और शानो-शौकत बाहर से सुख का साधन प्रतीत होते हैं, मगर दरअसल यह ऐसी छिपी आग है जो जीव की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तबाही का कारण सिद्ध होती है। बाबा फ़रीद कहते हैं कि कुल मालिक ने दया करके मुझे इस आग से बचा लिया, नहीं तो मैं भी इसमें जल जाता।

इस श्लोक में दिये गए भाव की व्याख्या के लिये देखें श्लोक 82 की व्याख्या।

[4]

फरीदा जे जाणा तिल थोड़ड़े संमलि बुकु भरी॥
जे जाणा सहु नंढड़ा तां थोड़ा माणु करी॥

शब्दार्थ: तिल=साँस। थोड़ड़े=बहुत थोड़े। नंढड़ा=बेपरवाह।

भावार्थ: अगर मुझे पता होता कि साँस रूपी तिल बहुत थोड़े हैं तो मैं उनका इस्तेमाल बहुत सोच-समझकर करता, यानी उन्हें दुनियावी काम-धन्धों या ऐशो-इशरत में बर्बाद नहीं करता। जीवात्मा रूपी स्त्री कहती है कि अगर मुझे पता होता कि मेरा पति (परमात्मा) बेपरवाह और अपनी मौज का मालिक है, तो मैं अपने गुणों का मान न करती।

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि हर इनसान को गिनती के साँस मिले हैं। इसलिये इनसान को इन्हें व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। इनसान को हमेशा अपने असली मक़सद की प्राप्ति की ओर ध्यान देना चाहिये। इनसान को अपने गुणों पर गर्व नहीं करना चाहिये, बल्कि ख़ुदा की रहमत का सहारा लेना चाहिये। जीव का उद्धार उसकी अपनी ख़ूबियों के द्वारा नहीं, ख़ुदा की रहमत

के द्वारा ही मुमकिन है। अपने गुणों का मान करना हौमै हैं, जो जीव को प्रभु से दूर ले जाती है। बाबा फ़रीद श्लोक 33 में कहते हैं:

नाती धोती संबही सुती आइ नचिंदु॥
फरीदा रही सु बेड़ी हिंङु दी गई कथूरी गंधु॥

यानी जिस अभागिन ने अपनी सुन्दरता और हार-शृँगार का मान किया उसकी हौमै रूपी दुर्गन्ध उसके प्रीतम से वियोग का कारण बन गई। बाबा फ़रीद 105 वें श्लोक में कहते हैं:

फरीदा गरबु जिन्हा वडिआईआ धनि जोबनि आगाह॥
खाली चले धणी सिउ टिबे जिउ मीहाहु॥

आप इशारा करते हैं कि धन, यौवन और गुणों के अहंकार के कारण जीवात्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति से मिलाप नहीं कर सकती।

[5]

जे जाणा लड़ु छिजणा पीडी पाईं गंढि॥
तै जेवडु मै नाहि को सभु जगु डिठा हंढि॥

शब्दार्थ: लड़ु=पल्ला। छिजणा=छूट जाना। पीडी=पक्की। तै जेवडु=तेरे जैसा। डिठा हंढि=मैंने ढूँढकर देख लिया है।

भावार्थ: आत्मा रूपी दुल्हन कहती है कि अगर मुझे पता होता कि परमात्मा रूपी पति से हुआ गँठ-बन्धन छूट सकता है तो मैं उसके साथ प्रेम की पक्की गाँठ बाँध लेती। मैंने सारा संसार घूमकर देख लिया है कि मेरा पति (परमात्मा) सबसे बड़ा है और मेरे लिये उस जैसा और कोई नहीं। हज़रत सुलतान बाहू ने यही भाव इस तरह प्रकट किया है:

तैं जेहा मैनूं होर न कोई, मैं जहियां लक्ख तैनूं हू।[1]

बाबा फ़रीद इशारा करते हैं कि परमात्मा रूपी प्रीतम के साथ दिखावे की प्रीति का नहीं, सच्ची अन्तर्मुख प्रीति का रिश्ता क़ायम करना चाहिये। जिस तरह पत्नी के लिये उसका पति ही एकमात्र सच्चा सहारा होता है, उसी तरह आत्मा का एकमात्र सच्चा सहारा वह सर्वशक्तिमान और दयालु परमेश्वर है।

[6]

फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख॥
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु॥

शब्दार्थ: अकलि लतीफु=सूक्ष्म बुद्धि। गिरीवान=गिरेबान।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ख़बरदार करते हैं कि भले-मानस, अगर तू सचमुच बुद्धिमान है तो बुरे कर्मों से बचकर रह। तू अपने अन्दर झाँककर देख कि तेरे अन्दर तेरे द्वारा किये हुए गुनाहों के कितने ढेर इकट्ठे हो चुके हैं। तू आगे के लिये सावधान रह। तुझे पता होना चाहिये कि देर-सवेर अपने कर्मों का फल ख़ुद भुगतना पड़ता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ॥[2]

इनसान को समझदारी से काम लेना चाहिये। उसे क्षणिक लाभ के लोभ में पड़कर अपना परमार्थ बर्बाद नहीं करना चाहिये। जिस चीज़ की प्राप्ति का अंजाम बुरा हो उसकी प्राप्ति को जीवन का मूल मक़सद बना लेना अक़्लमंदी नहीं, मूर्खता है।

[7]

फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि॥
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि॥

शब्दार्थ: घुंमि=घूम कर, जवाब में। आपनड़ै घरि जाईऐ=अपने असली घर जाना चाहता है तो।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद दरवेश के लिये सहनशीलता, नम्रता और क्षमाशीलता का बहुत ऊँचा आदर्श पेश करते हैं। आप कहते हैं कि ऐ ख़ुदा के आशिक़, अगर कोई तुझसे नाराज़ होकर तुझे गालियाँ देने लगे या तुझे मारने-पीटने को तैयार हो जाये, तो भी तुझे बदले में उसे गाली नहीं देनी चाहिये। उससे मार-पीट करना तो दूर रहा, तुझे चाहिये कि उसके क़दमों में अपना सिर झुकाकर माफ़ी माँगे कि भाई, ग़लती मेरी है, मुझे माफ़ कर दे। भाव उसको विरोधी के साथ भी अच्छा सलूक करना चाहिये।

डॉ. नज़ीर अहमद ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए हज़रत ईसा के इस वचन का हवाला दिया है कि अगर कोई तुम्हारे बायें गाल पर थप्पड़ मारे तो अपना दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो।[3] की गई ज़्यादती का बदला न लेना सहनशीलता और क्षमा की मूर्ति बन चुके किसी सच्चे दरवेश का ही काम है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं, 'छिमा साधु का खेल है।'[4]

[8]

फरीदा जां तउ खटण वेल तां तू रता दुनी सिउ॥
मरग सवाई नीहि जां भरिआ तां लदिआ॥

शब्दार्थ: तउ=तेरा। खटण वेल=कमाने का समय है। मरग=मौत। सवाई नीहि=मौत की नींव पक्की और चौड़ी होती गई। जां भरिआ तां लदिआ=बेड़ा भर गया तो चल दिया।

भावार्थ: जब तेरा ख़ुदा की इबादत रूपी दौलत कमाने का वक़्त था, तब तू दुनिया के रंग में रँगा रहा। नतीजा यह हुआ कि मौत आ पहुँची और तुझे ख़ाली हाथ संसार से जाना पड़ा।

बाबा फ़रीद इशारा करते हैं कि ख़ुदा ने इनसान को दुनिया में अपनी बन्दगी की सच्ची दौलत इकट्ठी करने के लिये भेजा है जब कि यह अपना क़ीमती वक़्त दुनिया के झूठे धन्धों में बर्बाद कर देता है। अन्त समय दुनिया की दौलत तो साथ जाती नहीं, जीव पापों की गठरी ज़रूर साथ ले जाता है।

[9]

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि॥

शब्दार्थ: थीआ=हो गया है। भूर=भूरी, सफ़ेद। अगहु=अगली तरफ़, मौत का समय। पिछा=जीवन का पिछला भाग।

भावार्थ: ऐ इनसान, देख तेरे साथ क्या हो रहा है! तेरी दाढ़ी सफ़ेद हो गई है। तेरे बचपन और जवानी के दिन बहुत पीछे रह गये हैं और तेरा आगे

चलने का वक़्त नज़दीक आ पहुँचा है। अफ़सोस, तू सारी उम्र फ़ज़ूल गँवा चुका है। बाबा फ़रीद सावधान कर रहे हैं कि ज़िन्दगी के असली मक़सद को कभी नहीं भूलना चाहिये। जवानी सदा रहनेवाली नहीं। बुढ़ापे के आने के साथ शरीर का बेकार हो जाना क़ुदरती और लाज़मी है। इसलिये आक़बत (परलोक) का तोशा जल्दी से जल्दी तैयार कर लेना चाहिये।

[10]

देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥
सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु॥

शब्दार्थ: जि थीआ=जो हो गया, क्या का क्या हो गया। विसु=ज़हर। वेदण=वेदना, पीड़ा।

भावार्थ: ऐ इनसान, देख क्या से क्या हो गया है। जो भोग शक्कर जैसे मीठे लगते थे, उनका असर ज़हरीला साबित हुआ है। अब मैं उस परवरदिगार के सिवाय और किस के आगे पुकार करूँ? और कौन है जो मेरी दर्द-भरी दास्तान सुन सकता है?

बाबा फ़रीद ने तीसरे श्लोक में दुनिया को 'गुझी भाहि' या छिपी हुई आग कहा है। यहाँ आप इस मायावी संसार की एक और विडम्बना पर प्रकाश डाल रहे हैं। आप समझा रहे हैं कि इन्द्रियों के भोग, दुनिया की ऐशो-इशरत के सामान आदि सब बाहर से तो शक्कर की तरह मीठे लगते हैं, मगर वास्तव में इनका असर बहुत विनाशकारी है। ये मायावी भोग जीव की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तबाही का कारण तो बनते ही हैं, इनमें फँसा हुआ जीव कुल मालिक के द्वारा इस संसार में भेजे जाने के अपने असल मक़सद को भुलाकर अपने परलोक को भी बर्बाद कर लेता है।

[11]

फरीदा अखी देखि पतीणीआं सुणि सुणि रीणे कंन॥
साख पकंदी आईआ होर करेंदी वंन॥

शब्दार्थ: पतीणीआं=पतली हो गई हैं, कमज़ोर हो गई हैं। रीणे=ख़ाली, बहरे हो गये हैं। साख=शाखा। वंन=रंग।

भावार्थ: जिस प्रकार पेड़ की हरी शाख़ा के सूख जाने पर उसकी लचक, सुन्दरता और हरियाली ख़त्म हो जाती है, उसी प्रकार वक़्त के बीतने पर बुढ़ापे में पहुँचकर आँखों की ज्योति कमज़ोर हो जाती है, कान सुनना बन्द कर देते हैं और शरीर झुर्रियों से भर जाता है। आपका भाव है कि बुढ़ापे में पहुँचकर शरीर के सभी अंग काम करना बन्द कर देते हैं। उस समय भक्ति कर पाना बहुत कठिन काम है। कबीर साहिब ख़बरदार करते हैं:

चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार बहै॥
जिहवा बचनु सुधु नही निकसै तब रे धरम की आस करै॥[5]

[12]

फरीदा कालीं जिनी न राविआ धउली रावै कोइ॥
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ॥

शब्दार्थ: कालीं=जब बाल काले थे। राविआ=प्यार किया। धउली=जब सफ़ेद बाल आ जाते हैं। पिरहड़ी=प्यार। नवेला=नया।

भावार्थ: जिसने काले केशों के होते यानी जवानी के दिनों में प्रीतम के साथ प्यार नहीं किया, वह सफ़ेद केशों यानी बुढ़ापे में उस प्रीतम के साथ प्यार किस तरह कर सकेगा। आप प्रेरणा दे रहे हैं कि जिनकी जवानी क़ायम है, उनको अपनी जवानी का लाभ उठाकर प्रभु रूपी प्रीतम के साथ प्यार कर लेना चाहिये और जो किसी कारण जवानी में उससे प्रेम नहीं कर सके उन्हें अभी से उसके प्रेम और उसकी भक्ति की तरफ़ ध्यान देना चाहिये, क्योंकि आत्मा की सुन्दरता का सम्बन्ध शरीर की जवानी या बुढ़ापे के साथ नहीं, प्यार के जवान या बूढ़ा होने के साथ है। जिसके अन्दर जिस समय प्रभु का प्रेम जाग्रत होगा, उस पर उसी वक़्त नया रंग चढ़ जायेगा।

[13]

फरीदा काली धउली साहिबु सदा है जे को चिति करे॥
आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ॥
एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देइ॥

शब्दार्थ: चिति करे=ध्यान दे। पिरमु=प्यार। जै=जिसको। तै=उसको।

भावार्थ: यह श्लोक गुरु अमरदास जी का है। आप बाबा फ़रीद के ऊपर दिये गए श्लोक का भाव स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जवानी हो या बुढ़ापा, जब भी ख़ुदा की बन्दगी की ओर ध्यान दिया जाये, फ़ायदेमन्द होता है। पर यह बात मनुष्य के अपने वश में नहीं है। प्रभु-प्रेम का प्याला, प्रभु के अपने हाथ में है। जिसे वह मालिक ख़ुद अपना प्यार बख़्शे, उसी को यह मिल सकता है तथा वह जिसे चाहे और जब चाहे यह दात बख़्श सकता है। प्रेम का सम्बन्ध जीव के यत्न या आयु की विशेष अवस्था से नहीं, प्रभु की दया के साथ है।

[14]

फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु॥
कजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु॥

शब्दार्थ: लोइण=आँखें। सूइ=बच्चे दिये हुए हैं। बहिठु=बैठने का स्थान।

भावार्थ: सुन्दरता और जवानी का अभिमान व्यर्थ है। जो सुन्दर आँखें जवानी में सबका मन मोह लेती थीं और जो काजल भी बरदाश्त नहीं कर सकती थीं, भाव जिनको काजल भी भारी महसूस होता था, मौत के बाद वही पक्षियों का घोंसला बन जाती हैं।

इस श्लोक के साथ एक कहानी जुड़ी हुई है, जिसे इस पुस्तक के पृष्ठ 85 पर दिया जा चुका है।

[15]

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित॥
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥

शब्दार्थ: कूकेदिआ चांगेदिआ=चीख़-पुकार करते, बार-बार समझाते। मती देदिआ=शिक्षा, उपदेश, चेतावनी देते। सैतानि=शैतान ने। वंञाइआ=बिगाड़ा हुआ, कुमार्ग पर डाला हुआ।

भावार्थ: बाबा फ़रीद समझाते हैं कि सन्त-महात्मा बार-बार इनसान को उपदेश करते और चेतावनी देते हैं कि मन रूपी काल या शैतान की चालों से बचो और अपनी ज़िन्दगी इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों में बर्बाद न करो। पर संसार की 'कौन सुनता है तूती की नकारख़ाने में' जैसी हालत है। मन रूपी शैतान के वश में आये जीव सन्तों-महात्माओं की बात नहीं मानते। ईसाई मत और इसलाम में यह मान्यता है कि कुल मालिक ने आदम और हव्वा को अपनी दरगाह के बाग़ में बाक़ी सब फल खाने की आज्ञा दी हुई थी, सिवाय एक फल के। आदम और हव्वा ने शैतान के बहकावे में आकर वह वर्जित फल खा लिया, जिस कारण उन्हें दरगाह से निकाल दिया गया। बाबा फ़रीद ख़बरदार कर रहे हैं कि शैतान या काल ने इस संसार में भी इनसान का पीछा नहीं छोड़ा। वह मन के रूप में हर शरीर के अन्दर बैठा उसे कुमार्ग पर डालता रहता है। महात्माओं और धर्म-ग्रन्थों की अनेक चेतावनियों के बावजूद अज्ञानी जीव मन रूपी शैतान के बहकावे में आकर इस क़द्र मायावी भोगों में फँस जाता है कि कुल मालिक द्वारा संसार में भेजे जाने के समय दिये गए हुक्म को भी भूल जाता है। कुल मालिक ने इनसान को दुनिया में अपनी बन्दगी के लिये भेजा था, पर यह मन रूपी शैतान का ही ग़ुलाम बना रहता है। नतीजा यह होता है कि यह मनुष्य जन्म के अमूल्य अवसर को कौड़ियों के मोल गँवा देता है। इसका परमार्थ नष्ट हो जाता है और यह अनन्त काल के लिये आवागमन के चक्र में फँस जाता है। बाबा फ़रीद इस सूक्ष्म भेद पर प्रकाश डाल रहे हैं कि जब तक इनसान कुल मालिक के हुक्म की पहचान नहीं करता तब तक इसकी कुल मालिक की दरगाह में से बाहर निकाले जाने के समय से शुरू हुई दु:खों की लम्बी दास्तान कभी ख़त्म नहीं हो सकती।

[16]

फरीदा थीउ पवाही दभु॥ जे सांई लोड़हि सभु॥
इकु छिजहि बिआ लताड़ीअहि॥ तां साई दै दरि वाड़ीअहि॥

शब्दार्थ: थीउ=हो जा, बन जा। पवाही=पाँवों की। दभु=एक प्रकार का घास। लोड़हि=अगर तू चाहता है। सभु=हर जगह। इकु छिजहि=पहले घास को काटा जाता है फिर उसे पाँवों के नीचे रौंदा जाता है। साई दै दरि वाड़ीअहि=फिर वह ख़ुदा के दरबार में दाख़िल हो सकती है।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कुल मालिक से मिलाप की चाह रखने वाले जीव को कहते हैं, 'जे सांई लोड़हि सभु' कि अगर तू हर जगह कुल मालिक रूपी प्रीतम के दर्शन करना चाहता है तो 'थीउ पवाही दभु'—तू पैरों की घास बन जा, ऐसी घास जिसे पहले काटा जाता है, फिर पैरों के नीचे रौंदा जाता है, फिर कूट-कूट कर उसे नर्म करके उसकी चट्टाइयाँ बनाई जाती है, और धार्मिक स्थलों में बिछाई जाती हैं। आप सच्चे परमार्थ की चाहत रखनेवाले जीव को सावधान करते हुए कहते हैं कि अगर तेरे अन्दर ख़ुदा की दरगाह में पहुँचने और क़बूल होने की ख़्वाहिश है तो तू घास की तरह नम्रता धारण कर। याद रख कि जब तक तू पूरी तरह से संसार की तरफ़ से कट नहीं जाता भाव यह कि तू अपने अहं का पूरी तरह त्याग नहीं कर देता और हर किस्म की कठिनाईयों के बावजूद कुल मालिक की बन्दगी द्वारा अपने आपको पूरी तरह उसके क़दमों में नहीं बिछा देता, तब तक तुझे उसके निर्मल चरणों का स्पर्श प्राप्त नहीं हो सकता।

[17]

फरीदा खाकु न निंदीऐ खाकू जेडु न कोइ॥
जीवदिआ पैरा तलै मुइआ उपरि होइ॥

शब्दार्थ: खाकु=धूलि, मिट्टी। जेडु=जैसा, बड़ा।

भावार्थ: मिट्टी को छोटा, घटिया या बुरा कहकर उसका निरादर मत करो। यह जीवन काल में इनसान के पैरों के नीचे होती है; लेकिन मौत के बाद यही मिट्टी उसके ऊपर होती हैं यानी जब मनुष्य जीवित होता है तो यह उसको खड़ा होने के लिये सहारा देती है और उसकी मौत के बाद मृतक

शरीर को उसके सभी ऐबों सहित अपने नीचे छिपा लेती है। आपने सोलहवें श्लोक में भी घास की मिसाल द्वारा नम्रता का उपदेश दिया है। यहाँ मिट्टी की मिसाल द्वारा वही उपदेश दोहरा रहे हैं। बाबा फ़रीद के जीवन वृत्तान्त में पढ़ आये हैं कि आप नम्रता की साक्षात मूर्ति थे। प्रभु-भक्तों का सच्चा श्रृंगार और सच्ची पहचान नम्रता है।

डॉ. नज़ीर अहमद ने इस श्लोक की व्याख्या में हज़रत ईसा द्वारा दिये गए नम्रता के उपदेश की ओर ध्यान दिलाते हुए आपके इस वचन का हवाला दिया है: धन्य हैं विनम्र लोग क्योंकि वे ही धरती के वारिस बनेंगे।[6] आपका भाव है कि ख़ुदा की दरगाह में केवल विनम्र आत्माएँ ही पहुँच सकती है।

[18]

फरीदा जा लबु ता नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु॥
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु॥

शब्दार्थ: लबु=लोभ। नेहु किआ=कैसा प्यार। कूड़ा=झूठा। किचरु=कितनी देर। झति लघाईऐ=गुज़र हो सकेगी। छपरि तुटै मेहु=झोंपड़ी टूटी हुई हो और ऊपर से बारिश हो रही हो।

भावार्थ: बाबा फ़रीद समझा रहे हैं कि प्रेम और लोभ, दिन और रात की तरह हैं। यह दोनों कभी भी इकट्ठे नहीं हो सकते। अगर झोंपड़ी की छत टूटी हुई हो और मूसलाधार बारिश हो रही हो, तो उसमें गुज़ारा कैसे हो सकता है? इसी तरह यदि प्रेम को लोभ रूपी दीमक लग जाये तो प्रेम किस तरह क़ायम रह सकता है?

आप समझा रहे हैं कि सच्चा प्रेमी प्रीतम को प्रीतम की ख़ातिर प्रेम करता है। इसलिये परमात्मा का सच्चा भक्त बनने के लिये परमात्मा को परमात्मा के लिये प्रेम करना चाहिये, सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये नहीं। इच्छाओं की पूर्ति के लिये परमात्मा को प्रेम करना, परमात्मा को अपने मन के अधीन करने के समान है, सच्चा भक्त प्रभु रूपी प्रीतम की रज़ा में रहता हुआ बिना किसी इच्छा के उससे प्रेम करता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख॥
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख॥[7]

[19]

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि॥
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥

शब्दार्थ: वणि कंडा मोड़ेहि=जंगल के काँटे चुभाता फिर रहा है। वसी=बसता है। हिआलीऐ=हृदय में।

भावार्थ: या तो हम परमात्मा की खोज ही नहीं करते और अगर करते भी हैं तो ग़लत स्थानों पर। कोई उसको मन्दिरों, मसजिदों में ढूँढता है, कोई उसकी तलाश में तीर्थों पर भटकता है, तो कोई उसको जंगलों, पहाड़ों में ढूँढता है। सीधी-सी बात है कि कोई भी वस्तु सिर्फ़ वहाँ से ही मिल सकती है, जहाँ वह असल में हो। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि ऐ भले लोगों, कुल मालिक की तलाश में जंगलों, पहाड़ों में क्यों भटक रहे हो, जंगलों में भटकने से पैरों में काँटे तो चुभ सकते हैं तथा अनेक प्रकार के कष्ट तो मिल सकते है, मगर ख़ुदा से मिलाप नहीं हो सकता। ख़ुदा हर इनसान के अन्दर है। अन्दर बैठे ख़ुदा से मिलाप केवल अन्दर ही हो सकता है। बाहर भटकने से न कभी किसी को कुछ हासिल हुआ है, न हो ही सकता है।

[20]

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भविओम्हि॥
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि॥

शब्दार्थ: इनी निकी जंघीऐ=इन छोटी-छोटी टाँगों से। डूंगर=पर्वत। भविओम्हि=घूमा हूँ। कूजड़ा=कूजा, बर्तन। थीओमि=हो गया है।

भावार्थ: बाबा फ़रीद शरीर पर होनेवाले समय के प्रभाव को प्रकट करने के लिये, जवानी और बुढ़ापे की अवस्था की तुलना करते हुए कहते हैं कि जवानी में शरीर में इतनी ताक़त होती है कि अपनी छोटी-छोटी टांगों से इनसान बड़े-बड़े रेगिस्तान पार कर लेता है और ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की चोटियों पर पहुँच जाता है। बुढ़ापे में शरीर इतना निर्बल हो जाता है कि चारपाई के पास पड़ा पानी का बर्तन कोसों दूर लगता है। आपके कहने का भाव यह है

कि जवानी बेकार के कार्यों में गँवाने की बजाय प्रभु-भक्ति और नाम की कमाई में लगानी चाहिये क्योंकि बुढ़ापे में शरीर बेकार हो जाता है और इनसान के लिये प्रभु-भक्ति का धन कमाना बहुत कठिन हो जाता है।

[21]

फरीदा राती वडीआं धुखि धुखि उठनि पास॥
धिगु तिन्हा दा जीविआ जिना विडाणी आस॥

शब्दार्थ: राती=रातें। पास=पासे, शरीर के अंग। विडाणी=परायी, किसी दूसरे की।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद विरहिणी की दु:ख भरी दास्तान बयान कर रहे हैं। आप फ़रमाते हैं कि विरहिणी के लिये प्रीतम की जुदाई में वक़्त गुज़ारना मुश्किल हो जाता है। उसको रातें लम्बी होती जा रही प्रतीत होती हैं। जुदाई का हर पल युगों जितना लम्बा महसूस होता है। वह सारी रात करवटें बदलती रहती है। उसकी आँखों में नींद का नामो-निशान नहीं होता। बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि विरहिणी विरह के हर दु:ख के बावजूद प्रीतम की याद को भुला नहीं सकती। वह विरह की दु:खदायी पीड़ा को सहन कर सकती है, मगर सपने में भी प्रीतम के बिना दूसरी किसी चीज़ के बारे में नहीं सोच सकती। बाबा फ़रीद कहते हैं कि उस जीवात्मा के जीवन पर धिक्कार है, 'धिगु तिन्हा दा जीविआ जिना विडाणी आस॥' जो प्रभु रूपी प्रीतम को छोड़कर किसी और चीज़ की तरफ़ ध्यान देती है या किसी दूसरी चीज़ की इच्छा करती है। आपके कहने का भाव यह है कि प्रीतम के वियोग में मछली की तरह तड़प रही जीवात्मा का जीवन उस जीवात्मा की तुलना में लाख दर्जे बेहतर है जो अपने प्रीतम को भुलाकर, संसार और इसके पदार्थों तथा रिश्ते-नातों से सच्चे सुख की उम्मीद करती है। ऐसी अभागिन का जीवन मौत से भी बदतर है। जो जीवात्मा प्रीतम के लिये तड़पती है, उसकी जुदाई कभी न कभी मिलाप में ज़रूर बदलती है। जो जीवात्मा प्रीतम को याद ही नहीं करती, वह उससे मिलाप की आशा कैसे कर सकती है? बाबा फ़रीद ने अपने एक और श्लोक में विरह को वह सुलतानी जज़्बा कहा है जो अन्त में प्रीतम से मिलाप का कारण सिद्ध होता है। इस श्लोक में भी सूक्ष्म ढंग से यही भाव प्रकट किया गया है।

[22]

फरीदा जे मै होदा वारिआ मिता आइड़िआं॥
हेड़ा जलै मजीठ जिउ उपरि अंगारा॥

शब्दार्थ: होदा वारिआ=क़ुर्बान न करूँ यानी कुछ छिपाकर रखूँ। मिता आइड़िआं=आये हुए मित्र से। हेड़ा=शरीर। जलै=जल जाता। मजीठ जिउ=मजीठ की तरह।

भावार्थ: अगर मैं आये हुए प्रीतम (मित्र) से कुछ छिपाकर रखूँ तो मेरा शरीर ऐसे जल जाये जैसे मजीठ अंगारों पर जलता है। भाव है कि सच्चा प्रेमी अपना सबकुछ प्रीतम पर न्योछावर कर देता है। उसे प्रीतम को सबकुछ देने में ख़ुशी महसूस होती है, उससे कुछ छिपाने में नहीं।

बाबा फ़रीद दोहरा भाव प्रकट कर रहे हैं। आप इशारा करते हैं कि प्रेम में क़ुर्बानी की अथाह शक्ति होती है और प्रेमी हमेशा प्रीतम की ख़ुशी चाहता है, अपना सुख नहीं। इसी तरह सच्चा गुरु-भक्त या प्रभु-भक्त सतगुरु और परमेश्वर की ख़ुशी के लिये कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। वह अपनी ख़ुदी को अपने प्रीतम में फ़ना कर देता है। वह मनपसन्द कार्यों में नहीं बल्कि उन कार्यों में लगता है जो प्रीतम को पसन्द हैं और अपने आपको मन के अधीन नहीं, प्रभु की रज़ा के अधीन करने में सच्चा सुख महसूस करता है।

[23]

फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु॥
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु॥

शब्दार्थ: दाख बिजउरीआं=बिजौर के क्षेत्र की दाखें भाव अँगूर। हंढै=फिरता है। कताइदा=कतवाता या कातता। पैधा लोड़ै=पहनना चाहता है। पटु=रेशम।

भावार्थ: कितनी अजीब बात है कि किसान बबूल (कीकर) बो कर बढ़िया अंगूर प्राप्त करने की आशा रखता है। वह कातता तो ऊन है, पर पहनना रेशम चाहता है!

बाबा फ़रीद आश्चर्य प्रकट करते हैं कि दुनिया के लोग किस अक़्ल के मालिक है, जो बुरे कर्मों से अच्छे फल की उम्मीद रखते हैं। संसार के सब लोग कर्म भी मनमर्ज़ी के करना चाहते हैं और फल भी मनमर्ज़ी का लेना

चाहते हैं। यह किसी तरह भी सम्भव नहीं। मिर्चों के बीज बो कर सेब खाने की उम्मीद रखना निपट अज्ञानता है। इनसान को हर कर्म सोच-समझ कर करना चाहिये। कर्म करने की आज़ादी फल भुगतने की मजबूरी को जन्म देती है। अपनी ही गर्दन है और अपनी ही छुरी है। इनसान दुनिया को मूर्ख बना सकता है, अपने आपको धोखा दे सकता है, परन्तु अपने अन्दर बैठी कर्मों का फल देनेवाली ताक़त को कभी भी धोखा नहीं दे सकता। परमात्मा से मिलाप करने की ज़रूरत को एक तरफ़ रखकर अगर इनसान सिर्फ़ इतनी बात मन में बिठा ले कि वह किये हुए कर्मों के फल से कभी बच नहीं सकता तो आज ही सारे संसार की हालत में इन्क़लाबी तबदीली आ जाये। अफ़सोस, इनसान इस दुनिया के हाकिमों और न्यायकर्ताओं से डरता है, परन्तु अन्दर बैठे सर्वशक्तिमान, न्यायकारी परमेश्वर द्वारा बनाये गए कर्म तथा फल के अटल कानून से नहीं डरता। यही कारण है कि वह ख़ुद अपने लिये तो दु:खों का सामान तैयार करता ही है, संसार को भी अपने कुकर्मों से परेशान रखता है।

[24]

फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु॥
चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु॥

शब्दार्थ: रहां=रह जाऊँ, न जाऊँ। तुटै=टूटता है। नेहु=स्नेह, प्रेम।

भावार्थ: मेरे प्रीतम का घर दूर है। बारिश हो रही है और गली में कीचड़ है, पर मेरा प्रीतम से प्रेम है। अगर जाता हूँ तो कम्बल भीगता है, नहीं जाता तो प्यार टूटता है, प्रेम को लाज लगती है।

[25]

भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु॥
जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु॥

भावार्थ: ऊपर आए श्लोक से इस तरह लगता है कि प्रेमी तेज़ बारिश और गली के कीचड़ के कारण इस दुविधा में है कि प्रीतम के साथ मिलने जाये या न जाये। इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमी के मन में प्रीतम से मिलने का पक्का इरादा है। 'बारिश का होना' और 'गली का कीचड़' रास्ते

की रुकावटों और 'कंबली का भीगना' प्रेमी को होनेवाले कष्टों के सूचक हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि अगर ख़ुदा को यही मंज़ूर है कि ज़ोर की बारिश हो और शरीर रूपी कंबली पूरी तरह से भीग जाये तो मैं ऐसे में ही ख़ुश हूँ। मैं बारिश, कीचड़ और कंबली के भीगने के बावजूद हर हालत में अपने प्रीतम से मिलने के लिये जाऊँगा ताकि मेरे प्रेम की डोरी न टूट जाए। सच्चा प्रेमी ख़ुदा को बारिश रोकने के लिये नहीं कहता। वह ख़ुदा की रज़ा में राज़ी रहता हुआ प्रेम का धर्म निभाता है। गुरु रामदास जी कहते हैं:

झखड़ु झागी मीहु वरसै भी गुरु देखण जाई॥
समुंदु सागरु होवै बहु खारा गुरसिखु लंघि गुर पहि जाई॥
जिउ प्राणी जल बिनु है मरता तिउ सिखु गुर बिनु मरि जाई॥
जिउ धरती सोभ करे जलु बरसै तिउ सिखु गुर मिलि बिगसाई॥[8]

[26]

फरीदा मै भोलावा पग दा मतु मैली होइ जाइ॥
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ॥

शब्दार्थ: भोलावा=भ्रम, चिन्ता, फ़िक्र। पग=पगड़ी। गहिला=ग़ाफ़िल, अचेत, अज्ञानी। न जाणई=नहीं जानता।

भावार्थ: ग़ाफ़िल इनसान इस चिन्ता में रहता है कि मेरी पगड़ी मैली न हो जाये, पगड़ी को मिट्टी न लग जाये। वह यह समझने की कोशिश नहीं करता कि मौत के बाद शरीर क़ब्र में दबाया जायेगा और पगड़ी बाँधने वाले सिर को भी अन्त में मिट्टी खा लेगी और यह भी मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो जायेगा। बाबा फ़रीद शरीर की नश्वरता का भाव दृढ़ करवा रहे हैं। आप कहते हैं कि जिस शरीर का हार-शृंगार करते हम नहीं थकते, एक दिन उसे मिट्टी के सुपुर्द हो जाना है। कबीर साहिब सावधान करते हैं:

1. लकड़ी कहै लुहार सों, तू मति जारैं मोहिं।
   एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं॥[9]

2. माटी कहै कुम्हार को, क्या तू रौंदे मोहिं।
   एक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदौंगी तोहिं॥[10]

[27]

फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिउो मांझा दुधु॥
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु॥

शब्दार्थ: निवात=मिश्री। माखिउो=शहद। मांझा दुधु=भैंस का दूध। पुजनि तुधु=तुझ तक नहीं पहुँच सकतीं और तेरा मुक़ाबला नहीं कर सकती।

भावार्थ: शक्कर, चीनी, मिश्री, गुड़, शहद और भैंस का दूध— ये सभी वस्तुएँ मीठी हैं, पर हे प्रभु, ये तेरी मिठास का मुक़ाबला नहीं कर सकतीं। बाबा फ़रीद ने यह भाव अपने 89 वें श्लोक में भी प्रकट किया है, 'फरीदा रब खजूरी पकीआं माखिअ नई वहंन्हि' यानी ख़ुदा खजूर की तरह मीठा है, वह शहद की नदी के समान है।

हम दुनिया के जीव सांसारिक पदार्थों के सुखों के मोह में फँसे हुए हैं। हमें इन्द्रियों के भोग अच्छे लगते हैं। बाबा फ़रीद समझाते हैं कि जब हम अपनी लिव अन्दर प्रभु के नाम के साथ जोड़ेंगे तो हमें ख़ुद ही पता चल जायेगा कि संसार का कोई भी सुख परमेश्वर या उसके नाम से मिलने वाले अलौकिक आनन्द का मुक़ाबला नहीं कर सकता। बाबा फ़रीद और दूसरे सन्त-महात्मा यह नहीं कहते कि इन्द्रियों के भोगों में से थोड़ा सुख मिलता है और परमात्मा के नाम में से ज़्यादा सुख मिलता है। वह सुख की मात्रा का नहीं, सुख की गुणवत्ता का अन्तर समझाते हैं। इन्द्रियों के भोगों से मिलने वाले सुख स्थूल, अधूरे और नाशवान हैं। परमात्मा के नाम से मिलने वाला आनन्द पूर्ण, सूक्ष्म और अविनाशी है। आप इशारा कर रहे हैं कि इन्द्रियावी भोगों में लिप्त इनसान अपने साथ बहुत बेइंसाफ़ी कर रहा है। वह इन भोगों में फँसकर अपने आपको उस परम आनन्द से वंचित कर रहा है, जो इसके अन्दर है, जो इसकी असली जायदाद है और वास्तव में जिसकी प्राप्ति के लिये ही इसे मनुष्य जन्म का अमूल्य अवसर दिया गया है।

[28]

फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख॥
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख॥

शब्दार्थ: काठ=लकड़ी। लावणु=सब्ज़ी। चोपड़ी=स्वादिष्ट। घणे=बहुत।

भावार्थ: बाबा फ़रीद नेक कमाई और सादा जीवन की उपमा करते हुए कहते हैं कि मेरी रोटी लकड़ी की तरह सख़्त है और मेरी भूख ही दाल-सब्ज़ी है। अच्छा और स्वादिष्ट भोजन खाने वालों को बहुत दुःख सहन करने पड़ेंगे। आपका भाव है कि हक़-हलाल की कमाई की रूखी-सूखी रोटी बेईमानी के छत्तीस प्रकार के पदार्थों से बेहतर है। इसी भाव को आपने अगले श्लोक में और अधिक स्पष्ट किया है।

[29]

रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ॥
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ॥

भावार्थ: अपनी हक़-हलाल की रूखी-सूखी रोटी पर सन्तोष कर लेना बेहतर है, दूसरों के छत्तीस पदार्थ देखकर मन में लोभ और ईर्ष्या पैदा नहीं होनी चाहिये। 44 वें श्लोक में भी इसी तरह का भाव प्रकट किया गया है। सभी कामिल-फ़क़ीरों ने हक़-हलाल की कमाई द्वारा प्राप्त रूखे-सूखे खाने की महिमा की है। बाबा फ़रीद के जीवन के हालात के प्रसंग में इन श्लोकों पर विस्तार सहित चर्चा की गई है।

[30]

अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ॥
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ॥

शब्दार्थ: सिउ=साथ। अंगु=शरीर। मुड़े मुड़ि जाइ=टूट रहे। डोहागणी=दुहागिन, पति से बिछुड़ी हुई।

भावार्थ: दरवेश या पूर्ण साधु रूपी सुहागिन कहती है कि मुझे रोज़ अपने प्रीतम से मिलाप का सौभाग्य प्राप्त होता है। अगर कभी एक दिन

मेरा उससे मिलाप न हो तो मेरी बहुत बुरी हालत हो जाती है। दुहागिनों से पूछना चाहिये कि तुम जीवन रूपी लम्बी रात प्रीतम के वियोग में कैसे गुज़ारोगी ? मनमुख उन दुहागिनों के समान हैं जो पति के मिलाप के सुख के बिना अपनी ज़िन्दगी बर्बाद कर लेती हैं। बाबा फ़रीद 21 वें श्लोक में कहते हैं:

फरीदा राती वडीआं धुखि धुखि उठनि पास॥
धिगु तिन्हा दा जीविआ, जिना विडाणी आस॥

ये दोनों श्लोक यह भाव प्रकट करते हैं कि आत्मा रूपी प्रेमिका प्रभु रूपी प्रीतम के वियोग में तड़प रही है। इसे जब भी सच्चा सुख मिलेगा अपने प्रीतम के मिलाप से मिलेगा। प्रीतम के प्रेम से ख़ाली दुहागिन का जीवन धिक्कार के योग्य है। आप इसी भाव को अगले श्लोक में आगे बढ़ाते हैं।

[31]

साहुरै ढोई ना लहै पेईऐ नाही थाउ॥
पिरु वातड़ी न पुछई धन सोहागणि नाउ॥

शब्दार्थ: साहुरै=ससुराल, ख़ुदा की दरगाह में। ढोई=आसरा। पेईऐ=मायका, इस लोक में। वातड़ी न पुछई=परवाह नहीं करता। धन=स्त्री।

भावार्थ: जिस जीवात्मा रूपी स्त्री का न इस लोक में आदर है, न परलोक में, जिसका पति उसकी बात तक नहीं पूछता, वह चाहे ख़ुद को सुहागिन कहती रहे, पर उसे असल में सुहागिन कहलाने का हक़ नहीं है।

बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि जीवात्मा रूपी प्रेमिका के लिये लोक और परलोक दोनों में सुख, शान्ति तथा सच्चे मान-सम्मान का साधन उसका परमात्मा रूपी प्रीतम से प्रेम और मिलाप है। उपरोक्त दोनों श्लोकों के भाव को गुरु नानक साहिब अगले श्लोक में स्पष्ट कर रहे हैं।

[32]

साहुरै पेईऐ कंत की कंतु अगंमु अथाहु॥
नानक सो सोहागणी जु भावै बेपरवाह॥

शब्दार्थ: अगंमु=अगम्य, पहुँच से परे। अथाहु=जिसकी थाह न पाई जा सके। भावै बेपरवाह=जो उस बेपरवाह को भा जाती है।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि सच्ची सुहागिन वही है जो मायके और ससुराल, लोक और परलोक दोनों में प्रभु रूपी प्रीतम के प्रेम के रंग में रँगी रहती है। आप इशारा करते हैं कि वह अगम, अथाह प्रभु अपनी मौज का मालिक है। उसके प्रेम और मिलाप की बड़ाई उसकी अपनी रहमत से हासिल होती है, इस पर आत्मा रूपी प्रेमिका का कोई वश नहीं चलता। बाबा फ़रीद के अनुसार, 'आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥'[11] जिनको कुल मालिक ख़ुद दया-मेहर करके अपने द्वार के दरवेश बनाना चाहता है, वही सच्चे दरवेश बन सकते हैं।

[33]

नाती धोती संबही सुती आइ नचिंदु॥
फरीदा रही सु बेड़ी हिंडु दी गई कथूरी गंधु॥

शब्दार्थ: संबही=सजी-सँवरी हुई। नचिंदु=निश्चिन्त, बेफ़िक्र। बेड़ी=लिबड़ी हुई। कथूरी=कस्तूरी। गंधु=सुगन्ध।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद उस सुन्दर स्त्री की तस्वीर पेश कर रहे हैं जो नहा-धो कर, सज-सँवर कर निश्चिन्त होकर सेज पर सो जाती है। वह सोचती है कि मैं इतनी सुन्दर हूँ, मैंने इतना सुन्दर श्रृंगार किया हुआ है कि जब मेरा प्रीतम आयेगा, मुझे ख़ुद ही गले लगा लेगा। बाबा फ़रीद कहते हैं कि उसकी ऐसी हालत है मानो उसमें से कस्तूरी की सुगन्ध की जगह हींग की दुर्गन्ध आ रही हो। आपका भाव है कि जो साधक मनमर्ज़ी के धार्मिक कर्मों के सहारे इस झूठे अभिमान का शिकार रहता है कि इन कर्मों के कारण उसका परमात्मा से मिलाप हो जायेगा, वह प्रीतम के मिलाप के आनन्द से वंचित रह जाता है। उसके अहंकार की दुर्गन्ध उसके हर तरह के नेक कर्मों की सुगन्ध को ख़त्म कर देती है।

लोग तीर्थ-यात्रा, सरोवरों के स्नान, पूजा-पाठ, दान-पुण्य आदि करके बेफ़िक्र हो जाते हैं कि हमने अपने पापों का नाश करके परमात्मा को ख़ुश कर लिया है। बाबा फ़रीद फ़रमाते हैं कि जिन लोगों को ऐसे बाहरमुखी कर्मों का अभिमान है, उनमें से सच्चे प्रेम और नम्रता की सुगन्ध की जगह हौमै की दुर्गन्ध आती है। आपने 31 वें और 32 वें श्लोक की तरह इस श्लोक में भी बाहरमुखी कर्मकाण्डों को व्यर्थ सिद्ध किया है। आत्मा रूपी प्रेमिका की वास्तविक सुन्दरता और उसका वास्तविक हार-शृंगार उसका प्रेम, उसकी नम्रता और प्रीतम की रज़ा की पहचान है, मन-मर्ज़ी की भक्ति नहीं।

[34]

जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ॥
फरीदा किती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ॥

शब्दार्थ: सह प्रीति=प्रीतम की प्रीति। किती=कितने ही, बहुत-से।

भावार्थ: मुझे जवानी के बीत जाने की नहीं, इस बात की चिन्ता है कि मेरी प्रीति कम न हो जाये क्योंकि मैंने प्रीति के बिना अनेक यौवन कुम्हलाते हुए देखे हैं। आपका भाव है कि मनुष्य जीवन यौवन के समान है। इसकी वास्तविक बड़ाई परमात्मा रूपी प्रीतम के प्रेम में है।

तेंतीसवें श्लोक में यह इशारा मिलता है कि आत्मा की वास्तविक सुन्दरता प्रेम और नम्रता में है। इस श्लोक में आप इशारा कर रहे हैं कि प्रेमिका का वास्तविक जीवन प्रेम है, प्रेम के बिना वह ज़िन्दा लाश के समान है।

[35]

फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरहि विछावण लेफु॥
एहु हमारा जीवणा तू साहिब सचे वेखु॥

शब्दार्थ: चिंत=चिन्ता। खटोला=खाट, चारपाई। वाणु=बान या मूँज, एक तरह की रस्सी जिससे खाट बुनी जाती है। विछावण=बिस्तरा। लेफु=रजाई।

भावार्थ: प्रीतम के वियोग में तड़प रही विरहिणी कहती है कि मैं दुःखों की मूँज से बुनी चिन्ता की खाट पर लेटी हुई हूँ, जिस पर विरह की पीड़ा का बिस्तर बिछा हुआ है। वह अपने प्रीतम से विनती करती है कि देख, तेरे

वियोग में मेरी क्या हालत हो गई है! अब तू दया-मेहर करके मेरी विरह की पीड़ा ख़त्म कर दे और मुझे अपने मिलाप का सौभाग्य बख़्श दे।

चौंतीसवें श्लोक में कहा गया है कि बिना प्रभु-प्रेम के जीवन व्यर्थ है। यहाँ बाबा फ़रीद यह भाव प्रकट कर रहे हैं कि परमात्मा रूपी प्रीतम के मिलाप के बिना आत्मा रूपी प्रेमिका का जीवन दुःखों की एक लम्बी दास्तान है। उसको प्रीतम के मिलाप के बिना कभी भी सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता और उसका प्रीतम से मिलाप केवल प्रीतम की दया-मेहर द्वारा सम्भव है। इसलिये प्रेमिका अपने प्रीतम से दया के लिये याचना करती है।

[36]

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु॥
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु॥

शब्दार्थ: बिरहा=वियोग की तड़प। आखीऐ=बताया जाता है, कहा जाता है। सुलतानु=बादशाह, सबसे बड़ा, श्रेष्ठ। जितु तनि=जिस शरीर में। बिरहु=वियोग की पीड़ा। मसानु=श्मशान-भूमि।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि विरह की पीड़ा में तड़पती जीवात्मा बेचैन होकर विरह को कोसती है; पर असल में विरह ख़ुदा के विसाल के सब साधनों का सुलतान है, सबसे श्रेष्ठ है, अव्वल है। जिस हृदय में विरह पैदा नहीं होती, वह श्मशान की तरह मनहूस है। पैंतीसवें श्लोक में विरह की पीड़ा बयान की गई है। यहाँ आप विरह की वेदना की बड़ाई करते हुए इसे प्रीतम से मिलाने वाला सबसे बड़ा साधन कहते हैं। जब तक हम किसी चीज़ की कमी महसूस नहीं करते, कभी भी उसके लिये क़ुर्बानी करने के लिये तैयार नहीं होते। वियोग का दुःख ही मिलन के लिये यत्न करने की प्रेरणा देता है।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए डॉ. नज़ीर अहमद लिखते हैं कि रूह के अन्दर जुदाई की तड़प का होना इस बात का सबूत है कि यह अपने आपको उस कुल (प्रभु) का जुज़ (अंश) समझती है और इसकी उससे दोबारा मिलाप की तड़प ही इसके असल में ज़िन्दा होने का सबूत है।[12]

सभी कामिल फ़क़ीरों ने विरह को प्रभु के मिलाप के लिये ज़रूरी बताया है। विरह प्रेम को प्रकट भी करता है और प्रेम को प्रबल भी करता है। अगर

हृदय में सच्चा प्रेम है तो जब तक मिलाप नहीं होता, विरहिणी तड़पती रहती है। यह पीड़ा या तड़प ही प्रेमिका को प्रेम की राह तय करके प्रीतम की मंज़िल तक पहुँचाने में उसकी सहायता करती है। बाबा फ़रीद के इस भाव को कबीर साहिब ने इस तरह प्रकट किया है। आप कहते हैं:

बिरहा मो से यों कहै, गाढ़ा पकड़ो मोहिं।
चरन कमल की मौज में, लै पहुँचाओं तोहिं॥[13]

[37]

फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि॥
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि॥

शब्दार्थ: विसु=ज़हर। खंडु लिवाड़ि=चीनी में भीगी हुई। इकि=कुछ लोग। राहेदे=बोते। रहि गए=थक गए , चले गए। राधी=बोई हुई। उजाड़ि=बर्बाद करके।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ने दसवें श्लोक में 'सकर होई विसु' द्वारा यह इशारा किया था कि जो भोग बाहर से शक्कर की तरह मीठे प्रतीत होते हैं वे वास्तव में ज़हर सिद्ध होते हैं। यही भाव प्रकट करते हुए बाबा फ़रीद ख़बरदार करते हैं कि मायावी पदार्थ और इन्द्रियों के भोग बाहर से तो शक्कर की तरह मीठे और अच्छे लगते है, पर वास्तव में ये ज़हरीला असर रखते हैं। इनमें खोया इनसान शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तबाही के भँवर में फँस जाता है और अपना क़ीमती जीवन कौड़ियों के मोल गँवा कर ख़ाली हाथ वापस चला जाता है। बाबा फ़रीद कहते हैं कि जिन्होंने सांसारिक भोगों की वास्तविकता समझ ली, वे अपने जीवन-काल में आक़बत (परलोक) का तोशा तैयार कर गए, बाक़ी के जीव पिछले शुभ कर्मों की जो पूँजी साथ लाये थे, उसे भी व्यर्थ कार्यों में बर्बाद कर गए। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

गुरमुखि लाहा लै गए मनमुख चले मूलु गवाइ जीउ॥[14]

दुनिया में दो तरह के लोग हैं—कामिल मुर्शिद के मुरीद और मन के मुरीद। कामिल मुर्शिद के मुरीद, मुर्शिद के समझाने के मुताबिक़ ख़ुदा की बन्दगी करके यहाँ से परमार्थी लाभ कमाकर अपना जीवन सफल कर गये। मन के मुरीद, मन के पीछे लगकर इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों और संसार के व्यर्थ के धन्धों में खोये रहे। वे पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों की जो पूँजी साथ लाये

थे, उसको भी बर्बाद कर गए। आपका भाव है कि उनको अनेक जन्मों के पुण्य कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य जन्म का दुर्लभ वरदान मिला था, पर उन्होंने इसे मनमर्ज़ी के धन्धों में व्यर्थ बर्बाद कर लिया। कबीर साहिब कहते हैं:

मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोई साध।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध॥[15]

[38]

फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहें कंमि॥

शब्दार्थ: चारि=दिन के चार पहर और रात के चार पहर। हंढि कै=चल-फिर कर, संसार की भाग-दौड़ में। संमि=सो कर। मंगेसीआ=माँगेगा। आंहो=आया था। केहें कंमि=कौन-से काम के लिये।

भावार्थ: सैंतीसवें श्लोक में जीवन की असलियत को समझाते हुए इसको आक़बत का तोशा तैयार करने के लिये ख़र्च करने का उपदेश दिया गया है। यहाँ बाबा फ़रीद चेतावनी दे रहे हैं कि इनसान परमात्मा की भक्ति के मूल कार्य को भुलाकर दिन के चार पहर संसार की भाग-दौड़ में और रात के चार पहर नींद में बर्बाद कर देता है। वह भूल जाता है कि अन्त समय ख़ुदा हिसाब माँगता है कि तुझे संसार में जिस काम के लिये भेजा गया था, वह क्यों नहीं किया। कबीर साहिब कहते हैं:

रात गँवाई सोइ करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥[16]

संसार के बहुत-से लोग इस भ्रम का शिकार हैं कि न इस संसार को कोई बनानेवाला है और न ही इसे अपनी रज़ा के अनुसार चलानेवाला है। वे समझते हैं कि ज़्यादा से ज़्यादा मायावी सुख प्राप्त करना ही मानव जीवन का मूल उद्देश्य है। इसके विपरीत सन्त-महात्मा जीव को सावधान करते हैं कि जिस परमात्मा ने संसार की रचना की है, उसने जीव को एक ख़ास उद्देश्य की पूर्ति के लिये यहाँ भेजा है। यदि जीव बाक़ी सबकुछ करता है, परन्तु जिस कार्य के लिये उसके कर्ता ने उसे जगत में भेजा है, उस तरफ़ ध्यान नहीं देता तो उसे अन्त में अपने कर्ता के सामने जवाबदेह होना पड़ेगा।

[39]

फरीदा दरि दरवाजै जाइ कै किउ डिठो घड़ीआलु॥
एहु निदोसां मारीऐ हम दोसां दा किआ हालु॥

शब्दार्थ: दरि=द्वार पर, दरवाज़े पर। निदोसां=निर्दोष। मारीऐ=पीटा जाता है।

भावार्थ: प्राचीन काल में शहर के मुख्य द्वार, राज-भवनों आदि के ऊपर घड़ियाल (बड़े-बड़े घण्टे) लगे होते थे, जिन पर हर घण्टे के बाद चोट लगाई जाती थी। बाबा फ़रीद प्रश्न करते हैं कि जब बेगुनाह घड़ियाल को इतनी सज़ा दी जा रही है तो हम गुनहगारों और पापियों को क्या सज़ा मिलेगी? इस प्रकार आप जीव को चेतावनी देते हैं कि कर्म सोच-समझ कर करने चाहियें। अगले श्लोक में इसी भाव को अधिक स्पष्ट किया गया है।

[40]

घड़ीए घड़ीए मारीऐ पहरी लहै सजाइ॥
सो हेड़ा घड़ीआल जिउ डुखी रैणि विहाइ॥

शब्दार्थ: घड़ीए घड़ीए=घड़ी-घड़ी के बाद। पहरी=हर पहर के बाद। सजाइ=सज़ा। हेड़ा=शरीर; रैणि=रात। विहाइ=बीतती है।

भावार्थ: जैसे घण्टे पर हर घड़ी, हर पहर चोट लगाई जाती है, उसी प्रकार बुरे कर्म करनेवालों की जीवन रूपी रात दुःखों में बीतती है।

[41]

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह॥
जे सउ वर्हिआ जीवणा भी तनु होसी खेह॥

शब्दार्थ: देह=शरीर। होसी=हो जायेगी। खेह=राख, मिट्टी।

भावार्थ: बुढ़ापे में शरीर निर्बल होकर काँपने लगता है। उम्र चाहे सौ वर्ष की हो तो भी शरीर को अन्त में मिट्टी का ढेर बन जाना है। जवानी की ताक़त हमेशा नहीं रह सकती। उम्र चाहे कितनी ही लम्बी हो मौत अटल है। आपका भाव है कि जवानी में प्रभु की भक्ति को यह सोच कर नहीं टालना

चाहिये कि वृद्धावस्था में नाम का अभ्यास कर लेंगे। बुढ़ापे में शरीर निर्बल हो जाता है और अभ्यास करना कठिन हो जाता है।

[42]

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि॥
जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि॥

शब्दार्थ: बारि=द्वार पर। पराइऐ=दूसरे के। बैसणा=बैठना। सांई=हे साईं, हे प्रभु। एवै=इस तरह अर्थात् दूसरों के दरवाज़े पर बैठने से। जीउ सरीरहु लेहि=शरीर में से प्राण निकाल ले।

भावार्थ: मेरे मालिक, मुझे किसी दूसरे पर निर्भर न कर क्योंकि किसी दूसरे के द्वार का भिखारी बनने से तो मर जाना अच्छा है। कहावत है, 'मांगन से मरना भला'।

बाबा फ़रीद के जीवन वृत्तान्त में पढ़ आये हैं कि आप खजूर के पत्तों से थैले बनाते थे और उनकी आय से अपना गुज़ारा करते थे। आपने सेवा और भेंट में आनेवाले धन में से कभी एक पैसा भी अपने या अपने परिवार पर ख़र्च नहीं किया। 128 वें श्लोक में आप कहते हैं, 'अणहोदे आपु वंडाए को ऐसा भगतु सदाए॥' सच्चा भक्त या दरवेश चाहे ग़रीब हो तो भी वह हक़-हलाल की कमाई दूसरों के साथ बाँट कर खाता है और कभी किसी हालत में भी पराये धन के पास नहीं जाता। वह माँग कर खाने से मर जाना बेहतर समझता है।

[43]

कंधि कुहाड़ा सिरि घड़ा वणि कै सरु लोहारु॥
फरीदा हउ लोड़ी सहु आपणा तू लोड़हि अंगिआर॥

शब्दार्थ: कंधि=कन्धे पर। सिरि=सिर पर। वणि=वन में। कै सरु=बादशाह। हउ=मैं। सहु=पति, मालिक। लोड़हि=ढूँढ रहा है। अंगिआर=अंगारे।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद उस लोहार की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जिसने अपने सिर पर पानी का घड़ा उठाया हुआ है और कन्धे पर कुल्हाड़ी रखी हुई है। वह बादशाह की तरह जंगल में अपनी मर्ज़ी से वृक्षों को जलाकर उनके कोयला बना रहा है। बाबा फ़रीद ऐसे दुनियादार की ओर

इशारा कर रहे हैं जो संसार रूपी जंगल में इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों के अंगारे इकट्ठे कर रहा है। इसके साथ ही आप उस प्रभु-भक्त की तरफ़ इशारा कर रहे हैं, जिसे प्रभु द्वारा इस संसार में भेजे जाने के मक़सद का ज्ञान है और वह अपना जीवन इन्द्रियों के भोगों के कोयले और अंगारे इकट्ठा करने के स्थान पर ख़ुदा की बन्दगी द्वारा ख़ुदा से मिलाप करने के कार्य में लगा हुआ है।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए डॉ. नज़ीर अहमद कहते हैं कि संसार वही है पर एक व्यक्ति के लिये यह विकारों के कोयले इकट्ठे करने का साधन है तो दूसरे के लिये प्रभु भक्ति के हीरे इकट्ठे करने का।[17]

[44]

फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोणु॥
अगै गए सिंञापसनि चोटां खासी कउणु॥

शब्दार्थ: अगला=अधिक, बेहिसाब। लोणु=नमक। सिंञापसनि=पहचाने जायेंगे। खासी=खायेगा।

भावार्थ: संसार में एक ओर वे दुनियादार लोग हैं, जिनके पास दुनिया का बेशुमार सामान है। दूसरी ओर ख़ुदा के आशिक़ हैं, जो रूखी-सूखी रोटी पर गुज़ारा करते हैं। बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि ख़ुदा को भुलाकर दुनिया की ऐशो-इशरत में डूबे हुए लोगों को दरगाह में पहुँचने पर पता लगता है कि वहाँ दुनियादारों और ख़ुदा के आशिक़ों में से किसे अपने कर्मों की सज़ा भुगतनी पड़ती है।

बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि क्षणिक झूठे सुखों के लिये जीवन के ऊँचे उसूलों को क़ुर्बान नहीं करना चाहिये। कामिल दरवेश हमेशा हक़-हलाल की कमाई द्वारा सादा और निर्मल जीवन जीने का उपदेश देते हैं और जीवात्मा को झूठ, बेईमानी, धोखा-धड़ी आदि द्वारा धन-दौलत कमाने के विरुद्ध चेतावनी देते हैं क्योंकि अन्त में ख़ुदा की दरगाह में हर कर्म का हिसाब देना पड़ता है और बुरे कर्मों के लिये सज़ाएँ भुगतनी पड़ती हैं।

[45]

पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड॥
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड॥

शब्दार्थ: पासि=जिनके पास। दमामे=नगारे। छतु=छत्र। सिरि=सिर पर। भेरी=एक वाद्य यन्त्र। सडो=जिनकी उपमा में सोहले गाये जाते हैं। रड=एक प्रकार का छन्द। जीराण=श्मशान-भूमि। अतीमा=यतीमों, अनाथों। गड=गाड़े जाना।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि जिन लोगों की महिमा में नगारे बजाए जाते थे, वारें (एक प्रकार का गीत) गाई जाती थीं, सोहले गाये जाते थे और जिनके सिर पर छत्र झूलते थे, वे भी अन्त में अनाथों की तरह क़ब्रों में दफ़न हो गए और मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो गए। आप सावधान कर रहे हैं कि बादशाह जैसी सांसारिक मान-बड़ाई, शानो-शौकत और पदवी भी इनसान को मौत से नहीं बचा सकती। अन्त समय न धन-दौलत साथ जाती है और न ही मान-बड़ाई। उस समय जीव अनाथों की तरह सबकुछ यहाँ छोड़कर ख़ाली हाथ क़ब्र में समा जाता है। अन्त समय सिर्फ़ किये हुए कर्म और ख़ुदा की बन्दगी की दौलत ही साथ जाती है।

[46]

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए॥
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए॥

शब्दार्थ: मंडप=महल, मन्दिर। माड़ीआ=चोबारे वाले महल। गोरी=क़ब्रें।

भावार्थ: उपरोक्त श्लोक की तरह इस श्लोक में भी बाबा फ़रीद समझा रहे हैं कि आम इनसान ही नहीं, महलों और हवेलियों का निर्माण करवाने वाले राजा-महाराजा भी संसार से ख़ाली हाथ चले गए। वे न मौत से बच सके और न ही जाते समय कुछ साथ ले जा सके। वे अन्त में क़ब्रों मे समा गए। उन्होंने ख़ुदा के नाम का सच्चा सौदा ख़रीदने की बजाय सांसारिक पदार्थों का झूठा सौदा किया, जो अन्त समय यहीं रह गया।

[47]

फरीदा खिंथड़ि मेखा अगलीआ जिंदु न काई मेख॥
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥

शब्दार्थ: खिंथड़ि=गुदड़ी। मेखा=कपड़े के टुकड़े, टांके। अगलीआ=बहुत-सी। मसाइक=शेख़ का बहुवचन।

भावार्थ: बाबा फ़रीद मिसाल देते हैं कि गुदड़ी बार-बार फट जाये तो उसको बार-बार सिला जा सकता है, मगर जीवन रूपी गुदड़ी एक बार फट जाये तो दोबारा सिली नहीं जा सकती। 'वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥' आप सावधान करते हैं कि साधारण लोग ही नहीं, बड़े-बड़े धनवान, विद्वान और नेता भी यहाँ सदा नहीं रह सकते। पैंतालीसवें, छयालीसवें और सैंतालीसवें तीनों श्लोकों में बाबा फ़रीद चेतावनी देते हैं कि धन-दौलत, मान-बड़ाई, राज-पाट आदि चीज़ें जीव को मौत से नहीं बचा सकतीं और अन्त समय संसार की कोई भी चीज़ जीव के साथ नहीं जा सकती। बाबा फ़रीद मौत की अटलता और जीवन की अस्थिरता द्वारा प्रभु-भक्ति का सन्देश देते हैं।

[48]

फरीदा दुहु दीवी बलंदिआ मलकु बहिठा आइ॥
गड़ु लीता घटु लुटिआ दीवड़े गइआ बुझाइ॥

शब्दार्थ: दुहु दीवी बलंदिआ=दोनों आँखों के होते हुए , दोनों आँखों के सामने। मलकु बहिठा आइ=मौत का फ़रिश्ता शरीर में आकर बैठ गया। गड़ु=किला। लीता=ले लिया, जीत लिया। घटु लुटिआ=अन्दर का सामान लूट लिया।

भावार्थ: इस श्लोक में भी पिछले तीन श्लोकों में प्रकट भाव को ही आगे बढ़ाया गया है। बाबा फ़रीद समझाते हैं कि मलकुल-मौत (मौत का फ़रिश्ता) बहुत ज़ालिम है। उसके आगे किसी का वश नहीं चलता। जीव के देखते ही देखते यमदूत शरीर में डेरा लगा लेता है। वह शरीर रूपी किले पर कब्ज़ा कर लेता है। इसमें से आत्मा रूपी धन को लूट लेता है यानी आत्मा को अपने वश में कर लेता है और अन्त में आँखों के दीयों को बुझा देता है। मौत के फ़रिश्ते के आगे किसी की एक नहीं चलती। वह इल्म,

अक़्ल, पदवी, प्राप्ति आदि की परवाह किये बग़ैर, निश्चित समय पर पहुँचकर शरीर में से आत्मा को निकालकर अपने साथ ले जाता है। बाबा फ़रीद का भाव है कि जीव को कभी भी अपनी मौत को नहीं भूलना चाहिये। जो मौत को सदा याद रखता है, वह बुरे कर्मों से भी बचता है और प्रभु-भक्ति का सच्चा धन इकट्ठा करने का भी यत्न करता है, जो अन्त समय आत्मा की सहायता करता है।

[49]

फरीदा वेखु कपाहै जि थीआ जि सिरि थीआ तिलाह॥
कमादै अरु कागदै कुंने कोइलिआह॥
मंदे अमल करेदिआ एह सजाइ तिनाह॥

शब्दार्थ: जि=जो कुछ। सिरि थीआ=सिर पर हुआ। कुंने=मिट्टी की हांडी।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ने उन्तालीसवें और चालीसवें श्लोक में बार-बार चोटें खाने वाले घड़ियाल की मिसाल देकर जीव को बुरे कर्मों से बचने का उपदेश दिया है। आप यहाँ कह रहे हैं कि जिस तरह कपास को बेलन से बेला जाता है, तिल कोल्हू में पेरे जाते हैं, गन्ने बेलन में पेरे जाते हैं, काग़ज़ बनाने के लिये लकड़ी की लुगदी बनाई जाती है और हाँडी को कोयलों पर तपाया जाता है, उसी तरह बुरे कर्मों का फल भुगतने के लिये जीव को दुःखों की चक्की में पिसना पड़ता है। आप बार-बार ख़बरदार करते हैं कि बुरे कर्मों से बचो क्योंकि हर कर्म का फल ज़रूर भुगतना पड़ता है।

[50]

फरीदा कंनि मुसला सूफु गलि दिलि काती गुड़ु वाति॥
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति॥

शब्दार्थ: कंनि=कन्धे पर। मुसला=नमाज़ पढ़ते समय बिछाए जानेवाला कपड़ा या चटाई। सूफु गलि=गले में सूफ़ की काली कफ़नी है।

भावार्थ: आप पाखण्डी दरवेश की दशा बयान करते हैं। उसने कन्धे पर नमाज़ पढ़ने के लिये मुसल्ला रखा हुआ है, गले में सूफ़ की काली कफ़नी

डाल रखी है और वह मीठी वाणी द्वारा ग्रन्थों-शास्त्रों के हवाले देता है, परन्तु उसके हृदय में लोभ की छुरी छिपी हुई है और उसका मन मोह के अन्धकार से भरा हुआ है।

आपका भाव है कि इनसान बाहरी भेष, पहरावे या दिखावे से कभी सच्चा दरवेश नहीं बन सकता। सच्चे दरवेश जैसी बड़ाई हासिल करने के लिये मन, वचन और कर्म में एकता लाना और अपने अन्दर नाम की कमाई का प्रेम पैदा करना ज़रूरी है।

[51]

फरीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ॥
जो तन रते रब सिउ तिन तनि रतु न होइ॥

शब्दार्थ: रती=रत्ती भर। रतु=रक़्त।

भावार्थ: जो ख़ुदा के प्यार के रंग में रँगे होते हैं, उनके जिस्म को चीरने पर उसमें से रत्ती भर भी ख़ून नहीं निकलेगा, क्योंकि जो हमेशा ख़ुदा के इश्क़ में डूबा रहता है, उसके तन में ख़ून नहीं होता। इस श्लोक का असल भाव गुरु अमरदास जी ने अगले श्लोक में स्पष्ट किया है।

[52]

इहु तनु सभो रतु है रतु बिनु तंनु न होइ॥
जो सह रते आपणे तितु तनि लोभु रतु न होइ॥
भै पइऐ तनु खीणु होइ लोभु रतु विचहु जाइ॥
जिउ बैसंतरि धातु सुधु होइ तिउ हरि का भउ दुरमति मैलु गवाइ॥
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रंगु लाइ॥

शब्दार्थ: सभो=सारे का सारा। सह रते=परमात्मा के प्रेम के रंग में रँगे हुए। तितु तनि=उस शरीर में। भै पइऐ=डरा हुआ। खीणु=पतला, कमज़ोर। जाइ=दूर हो जाती है। बैसंतरि=आग में। सुधु होइ=साफ़ और शुद्ध हो जाती है।

भावार्थ: बाबा फ़रीद के पिछले श्लोक के भाव को स्पष्ट करने के लिये गुरु साहिब कहते हैं कि शरीर ख़ून से बना हुआ है और बिना ख़ून के शरीर

की कल्पना असम्भव है। पर जिनके मन में प्रीतम का सच्चा प्रेम होता है, उनके अन्दर संसार के वस्तुओं-पदार्थों के लोभ का रत्ती भर भी ख़ून नहीं होता। आप उदाहरण देते हैं कि जिस प्रकार आग में तपने से सोने की मैल जल जाती है और वह पूरी तरह शुद्ध हो जाता है, उसी तरह परमात्मा के भय की आग सांसारिकता और मन की मैल को जलाकर आत्मा को पूरी तरह निर्मल कर देती है। आप इशारा करते हैं कि जिस तरह मैल से रहित निर्मल कुन्दन चमकता है, उसी तरह मन के मैल से रहित निर्मल आत्मा चमकती है। उस पर सच्चे प्रेम का रंग चढ़ जाता है और वह पूरी तरह निर्मल होकर प्रभु में समाने के क़ाबिल बन जाती है।

[53]

फरीदा सोई सरवरु ढूढि लहु जिथहु लभी वथु॥
छपड़ि ढूढै किआ होवै चिकड़ि डुबै हथु॥

शब्दार्थ: सरवरु=तालाब। वथु=वस्तु, असल चीज़। छपड़ि=छप्पर, गन्दे पानी का पोखर या तालाब।

भावार्थ: बाबा फ़रीद प्रभु की तलाश में निकले इनसान को उपदेश देते हैं कि ऐ भले मानस! तू उस निर्मल सरोवर में से नाम रूपी मोती को ढूँढने की कोशिश कर, जहाँ से उसके मिलने की सँभावना है। यदि गन्दे छप्पर में से उसकी तलाश करेगा तो तेरे हाथ कीचड़ से गन्दे हो जायेंगे, पर तुझे प्राप्त कुछ नहीं होगा। आपका भाव है कि नाम रूपी अमूल्य हीरा शरीर रूपी सरोवर के अन्दर है। उसकी तलाश में बाहर भटकने से आत्मा पर कर्मों की मैल और ज़्यादा चढ़ सकती है, पर प्रभु और उसके नाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु रामदास जी सावधान करते हैं:

घरि रतन लाल बहु माणक लादे मनु भम्रिआ लहि न सकाईऐ॥[18]

आप कहते हैं कि परमात्मा ने शरीर रूपी घर के अन्दर नाम के बहुमूल्य भण्डार रखे हुए हैं, पर अज्ञानी जीव उनकी तलाश में बाहर भटक रहे हैं।

[54]

फरीदा नंढी कंतु न राविओ वडी थी मुईआसु॥
धन कूकेंदी गोर में तै सह ना मिलीआसु॥

शब्दार्थ: नंढी कंतु न राविओ=अगर युवावस्था में स्त्री ने कन्त से प्यार न किया। वडी थी मुईआसु=बूढ़ी होकर तो उसे मर जाना है। धन कूकेंदी गोर में=स्त्री क़ब्र में रोती है। सह=पति। ना मिलीआसु=मैं तुझसे न मिल सकी।

भावार्थ: जिस जीवात्मा रूपी स्त्री ने युवावस्था में प्रभु रूपी पति से प्यार नहीं किया, वह बूढ़ी होकर मर गई और क़ब्र में समा गई। वहाँ वह रोती और विलाप करती हुई पछताती है कि मैंने प्रभु रूपी पति से जीते-जी मिलाप नहीं किया और मनुष्य जन्म का अवसर व्यर्थ गँवा दिया।

[55]

फरीदा सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं॥
रे मन गहिले बावले माणहि किआ रलीआं॥

शब्दार्थ: पलिआ=सफ़ेद हो गईं। गहिले=अचेत, ग़ाफ़िल, अज्ञानी। बावले=पागल। रलीआं=रंग-रलियाँ।

भावार्थ: आप ग़ाफ़िल जीव को चेतावनी दे रहे हैं कि बुढ़ापा आ गया है, सिर सफ़ेद हो गया है, दाढ़ी सफ़ेद हो गई है और मूँछें भी सफ़ेद हो गई हैं, अब भी तेरा मन दुनिया की रंग-रलियों और विषयों-विकारों में फँसा हुआ है। अगर जवानी में ख़ुदा से प्रेम नहीं कर सका, तो कम से कम बुढ़ापे में ही इस ओर ध्यान दे।

गुरु तेग़ बहादुर साहिब कहते हैं कि कितने दु:ख की बात है कि इनसान प्रभु के प्रेम के बिना सारा जीवन व्यर्थ गवाँ देता है। बुढ़ापे में पहुँचकर भी यह ग़फ़लत की नींद से नहीं जागता:

सिरु कंपिओ पग डगमगे नैन जोति ते हीन॥
कहु नानक इह बिधि भई तऊ न हरि रसि लीन॥[19]

[56]

फरीदा कोठे धुकणु केतड़ा पिर नीदड़ी निवारि॥
जो दिह लधे गाणवे गए विलाड़ि विलाड़ि॥

शब्दार्थ: धुकणु=दौड़ना। केतड़ा=कितना, कहाँ तक। नीदड़ी निवारि=नींद दूर कर। दिह=दिन। लधे=मिले। गाणवे=गिनती के। विलाड़ि विलाड़ि=तेज़ी से गुज़र गये।

भावार्थ: बाबा फ़रीद जीव को सावधान कर रहे हैं कि जैसे छत पर लगाई गई दौड़ बहुत छोटी होती है उसी प्रकार इनसान का जीवन बहुत छोटा है। ज़िन्दगी के जो गिनती के दिन मिले हैं, वे बड़ी तेज़ी के साथ दौड़ते चले जा रहे हैं। आप उपदेश देते हैं कि भले मानस! तू प्रभु रूपी प्रीतम की तरफ़ आँखें खोल। तू संसार की भाग-दौड़ की तरफ़ जाग रहा है, पर परमात्मा की तरफ़ से सोया हुआ है। तू आँखें खोलकर संसार और जीवन की असलियत समझने का यत्न कर। जीवन छत की दौड़ की तरह जल्दी ही समाप्त हो जायेगा और तेरा परमात्मा की तरफ़ से अचेत रहना तेरे लिये बहुत हानिकारक सिद्ध होगा।

[57]

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु॥
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु॥

भावार्थ: बाबा फ़रीद उपदेश कर रहे हैं कि महलों और भवनों के साथ प्यार न करो। ये सब मिट्टी की ढेरी के समान हैं और संसार की कोई वस्तु आख़िरी वक़्त इनसान के साथ नहीं जा सकती। मृतक के लिये संसार के सबसे सुन्दर महल और मिट्टी के ढेर में कोई फ़र्क़ नहीं होता। आप महलों, भवनों और सांसारिक पदार्थों की नश्वरता की तरफ़ ध्यान खींचते हुए इनसान को उस अविनाशी वस्तु से प्रेम करने के लिये प्रेरित करते हैं, जो अन्त समय आत्मा के साथ जाती है।

[58]

फरीदा मंडप मालु न लाइ मरग सताणी चिति धरि॥
साई जाइ सम्हालि जिथै ही तउ वंञणा॥

शब्दार्थ: मरग=मौत। सताणी=ज़ोरावर, शक्तिशाली। साई जाइ=वही स्थान। जिथै ही तउ वंञणा=जहाँ तुझे अन्त में पहुँचना है।

भावार्थ: पिछले श्लोक वाला भाव आगे बढ़ाते हुए बाबा फ़रीद जीव को सावधान करते हैं कि तू दुनिया के पदार्थों, महलों-भवनों आदि से प्यार करने की नादानी न कर। मौत बहुत शक्तिशाली है। तू बलवान मौत को कभी न भूल और जीते-जी उस स्थान पर पहुँचने का यत्न कर जहाँ तुझे मौत के बाद जाना पड़ेगा। आप रूहानी अभ्यास द्वारा जीते-जी मरने की वह अनुपम अवस्था प्राप्त करने की प्रेरणा दे रहे हैं जिसे पाकर जीव सदा के लिये मौत के डर से आज़ाद हो जाता है।

[59]

फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि॥
मतु सरमिंदा थीवही सांई दै दरबारि॥

भावार्थ: बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं कि जिन कामों में फ़ायदा नहीं, वे काम छोड़ दे, ऐसा न हो कि अन्त समय साईं के दरबार में तुझे शर्मिन्दा होना पड़े। 38 वें श्लोक में भी आप कहते हैं:

फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केहें कंमि॥

'जिन्ही कंमी नाहि गुण' और 'आंहो केहें कंमि' को मिलाकर पढ़ने से पता चलता है कि आप जीवन के उस मूल उद्देश्य की ओर इशारा कर रहे हैं जिसको पूरा करने के लिये कुल मालिक ने जीवात्मा को संसार में भेजा है। वह मूल उद्देश्य परमात्मा के साथ जीते-जी मिलाप करना है।

[60]

फरीदा साहिब दी करि चाकरी दिल दी लाहि भरांदि॥
दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि॥

शब्दार्थ: भरांदि=भ्राँति, भ्रम, शंका। लोड़ीऐ=ज़रूरत है। जीरांदि=धैर्य।

भावार्थ: बाबा फ़रीद दोहरा उपदेश दे रहे हैं कि मन के सारे भ्रमों को छोड़कर सच्चे दिल से कुल मालिक की बन्दगी में लगना चाहिये और परमात्मा के सच्चे भक्त या दरवेश में वृक्ष जैसी सहन-शक्ति होनी चाहिये। वृक्ष को काट लो, जला दो, इसकी दातुन बना लो, वृक्ष की छाया में बैठ जाओ, वृक्ष हमारा हर बर्ताव सहर्ष सहन करता है। यह मारे गए पत्थरों का जवाब भी फल के रूप में देता है। आपका भाव है कि हर प्रकार के वहमों, भ्रमों में से ध्यान निकालकर तन-मन से परमात्मा की सच्ची भक्ति में लगना चाहिये और परमात्मा का सच्चा दरवेश बनने के लिये परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहना चाहिये। परमात्मा का दरवेश ज़िन्दगी के हर तरह के कष्टों को परमात्मा की रज़ा मानकर धैर्य के साथ परमात्मा की बन्दगी में लगा रहता है। वह ज़िन्दगी के विरोधी हालात से घबराकर ख़ुदा की बन्दगी करना नहीं छोड़ देता। जिस हालत में वह ख़ुदा रखता है, ख़ुदा का सच्चा दरवेश उसी हालत में ख़ुशी-ख़ुशी उसकी बन्दगी में मग्न रहता है।

[61]

फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु॥
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु॥

शब्दार्थ: मैडे=मेरे। वेसु=पहरावा। गुनही=गुनाहों से।

भावार्थ: बाबा फ़रीद नम्रतापूर्वक कहते हैं कि मेरा काला पहनावा देखकर लोग मुझे दरवेश कहने लगे हैं, पर मैं तो गुनाहों से भरा हुआ हूँ।

दरवेश नम्रता के पुँज होते हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'कहु नानक हम नीच करंमा॥ सरणि परे की राखहु सरमा॥'[20] सूरदास जी भी कहते हैं:

पतितन में इक नायक कहिये, नीचन में सरदारो।
कोटि पापी इक पासँग मेरे, अजामिल कौन बिचारो॥[21]

[62]

तती तोइ न पलवै जे जलि टुबी देइ॥
फरीदा जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ॥

शब्दार्थ: तती=जली हुई। तोइ=तूई, शाखा। पलवै=पलती, प्रफुल्लित होती। डोहागणि=मन्दे भाग्य वाली, दुहागिन।

भावार्थ: बाबा फ़रीद एक मिसाल देकर समझाते हैं कि जिस तरह सूखी शाखा दोबारा हरी नहीं होती, चाहे उसको जितने मर्ज़ी पानी में रखा जाये, उसी तरह परमात्मा रूपी पति से बिछुड़ी हुई आत्मा रूपी दुहागिन को चाहे जितने मर्ज़ी सांसारिक सुखों के पानी में रखा जाये, वह जुदाई में सिसकती रहती है और उसके अन्दर कभी भी सच्ची ख़ुशी पैदा नहीं हो सकती। बाबा फ़रीद एक और प्रसंग में लिखते हैं:

काली कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥[22]

आत्मा रूपी कोयल से पूछा गया कि तू काली क्यों हो गई है? वह उत्तर देती है कि मैं अपने प्रीतम के वियोग में जलकर काली हो गई हूँ। बाबा फ़रीद समझाना चाहते हैं कि परमात्मा से बिछुड़ी आत्मा हमेशा उसके वियोग में दु:खी रहती है। जब तक उसका दोबारा परमात्मा रूपी प्रीतम से मिलाप नहीं होता, वह कभी भी सच्चे अर्थों में सुखी नहीं हो सकती।

[63]

जां कुआरी ता चाउ वीवाही तां मामले॥
फरीदा एहो पछोताउ वति कुआरी न थीऐ॥

शब्दार्थ: वीवाही=जब विवाह हुआ। मामले=झंझट, जंजाल। वति=फिर, दुबारा; न थीऐ=नहीं हो सकती।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद 62 वें श्लोक वाला भाव दूसरे ढंग से प्रकट कर रहे हैं। आप कहते हैं कि कुँवारी लड़की को शादी का शौक़ होता है, पर शादी के बाद जब उसे परेशानियाँ और झंझट सहने पड़ते हैं तो शादीशुदा जीवन उसके लिये सिरदर्द बन जाता है। वह दु:खी होकर सोचती है कि इससे तो मैं कुँवारी ही बेहतर थी, पर अब वह दोबारा कुँवारी नहीं बन सकती।

बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि परमात्मा से इश्क़ की शुरुआत बहुत आकर्षक होती है, परन्तु इश्क़ का मार्ग बहुत कठिन है। इश्क़ में अनेक परीक्षाओं में से गुज़रना पड़ता है। जब विरह की चोटें खानी पड़ती हैं तो प्रेमिका तड़पती है, पर वह किसी सूरत में भी इश्क़ के मार्ग से पीछे नहीं हटती। प्रीतम की जुदाई की आग में वह पल-पल जलती है, पर प्रीतम के प्यार को छोड़ सकना उसके लिये किसी तरह भी मुमकिन नहीं होता।

बाबा फ़रीद ने अनेक श्लोकों में विरह की पीड़ा का वर्णन किया है। एक श्लोक में आपने विरह को प्रीतम से मिलाने वाला सबसे बलवान साधन कहा है। यहाँ भी यही इशारा कर रहे हैं कि प्रेमिका के लिये प्रीतम की पल-भर की जुदाई सह सकना असम्भव होता है, परन्तु बिना विरह की प्रबल पीड़ा के वह कभी भी प्रीतम से मिलाप नहीं कर सकती। मीराबाई कहती हैं:

जो मैं ऐसा जानती रे, कि प्रीत किये दु:ख होय।
नगर ढिढोरा पीटती रे, प्रीत करे मत कोय॥[23]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

मू लालन सिउ प्रीति बनी॥
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिंच तनी॥[24]

आप कहते हैं कि ऐ मेरे प्रीतम, तू इस प्यार की डोर को इतना कस दे कि यह न ही कभी टूटे और न ही छूटे।

बाबा फ़रीद भी यही भाव प्रकट कर रहे हैं कि जो स्त्री एक बार विवाह कर लेती है, फिर कभी भी उस प्यार को छोड़कर कुँवारी नहीं बनना चाहती।

[64]

कलर केरी छपड़ी आइ उलथे हंझ॥
चिंजू बोड़न्हि ना पीवहि उडण संदी डंझ॥

शब्दार्थ: कलर केरी=कल्लर की। आइ उलथे=आकर उतरे हैं। हंझ=हंस। चिंजू बोड़न्हि ना पीवहि=वे न चोंच डुबोते हैं, न ही पानी पीते हैं। डंझ=लालसा, इच्छा।

भावार्थ: इस श्लोक में कामिल दरवेश की हंस से तुलना की गई है। हंस मानसरोवर से आते हैं। परमात्मा के सच्चे भक्त, दरवेश या सन्त भी सतलोक से इस मृत्युलोक में उतरते हैं। मायावी संसार कल्लर के छप्पर या पोखर के

समान है। हंस मोती चुगता है, कंकर नहीं। परमात्मा के भक्त संसार रूपी पोखर के किनारे रहते हैं, पर इसकी मलिनता में लिप्त नहीं होते। वे कुल मालिक की ओर से सौंपा हुआ कार्य पूरा करके हंस के समान निर्मल अवस्था में वापस अपने निज-घर की ओर उड़ान भरने के लिये उतावले रहते हैं। वे दुनिया में रहते हैं, पर दुनिया के बनकर नहीं। उनका ध्यान हमेशा कुल मालिक के चरण-कमलों में रहता है।

[65]

हंसु उडरि कोध्रै पइआ लोकु विडारणि जाइ॥
गहिला लोकु न जाणदा हंसु न कोध्रा खाइ॥

शब्दार्थ: उडरि=उड़कर। कोध्रै=कोधरे के खेत में। पइआ=जा कर बैठ गया। विडारणि=उड़ाने के लिये। गहिला=पागल। कोध्रा=कोधरा, एक प्रकार का मोटा अनाज।

भावार्थ: पिछले श्लोक में संसार को 'कलर केरी छपड़ी' कहा गया है, इस श्लोक संसार को कोधरे का खेत कह रहे हैं। आप संकेत करते हैं कि लोग डरते हैं कि सन्त-महात्मा या कामिल-फ़क़ीर हमारी धन-सम्पत्ति न सँभाल लें। नासमझ दुनिया यह नहीं जानती कि पूर्ण सन्त हंस के समान नाम के मोती चुगते हैं, माया का कोधरा नहीं खाते।

[66]

चलि चलि गईआं पंखीआं जिन्ही वसाए तल॥
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल॥

शब्दार्थ: चलि चलि गईआं पंखीआं=पक्षियों की पंक्तियाँ अपनी-अपनी बारी उड़ान भर गईं। वसाए तल=जिन्होंने तालाबों पर रौनक लगा रखी थी। सरु भरिआ=भरा हुआ तालाब। चलसी=सूख जायेगा। थके=कुम्हला गये। इकल=अकेले।

भावार्थ: संसार सरोवर के समान है और जीव इसके किनारे बैठे पक्षियों के समान हैं। जिन जीव रूपी पक्षियों की पंक्तियों के कारण यह संसार रूपी सरोवर सुन्दर और सुहावना लगता है, वे बारी-बारी यहाँ से उड़ते चले जा रहे हैं। एक दिन यह सरोवर भी सूख जायेगा और इसमें उगे हुए फूल भी मुरझा जायेंगे। बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि न सिर्फ़ संसार में रह रहे जीव और इसके वस्तु-पदार्थ ही नाशवान हैं, बल्कि यह संसार स्वयं भी नाशवान है।

[67]

फरीदा इट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि॥
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि॥

शब्दार्थ: इट सिराणे=सिर के नीचे ईंट होगी। इकतु पासि=एक ओर।

भावार्थ: पिछले श्लोक में जीव और संसार की नश्वरता के बारे में बताया गया है। इस श्लोक में उसी भाव को आगे बढ़ाते हुए बाबा फ़रीद कहते हैं कि मौत के बाद जीव का क़ब्र में निवास हो जायेगा। तकिये के स्थान पर सिर के नीचे ईंट होगी, कीड़े मांस खा जायेंगे और कई युग करवट लिये बिना बीत जायेंगे।

बाबा फ़रीद चेतावनी दे रहे हैं कि इनसान, जीवन भर शरीर का हार-शृंगार और इसके सुख के लिये तरह-तरह के सामान तैयार करता रहता है, पर अन्त समय कोई वस्तु इसके साथ नहीं जाती और बड़े नाज़ों से पाला हुआ यह शरीर भी क़ब्र में समा जाता है।

[68]

फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टुटी नागर लजु॥
अजराईलु फरेसता कै घरि नाठी अजु॥

शब्दार्थ: भंनी घड़ी=शरीर रूपी बर्तन टूट जायेगा। सवंनवी=सुन्दर वंन (रंग) वाली। नागर=सुन्दर। लजु=साँसों की रस्सी। कै घरि=किस के घर में। नाठी=मेहमान, अतिथि।

भावार्थ: इस श्लोक में भी छियासठवें और सड़सठवें श्लोक वाले भाव को ही आगे बढ़ाया गया है। बाबा फ़रीद मौत का दृश्य खींच रहे हैं। जब मौत का फ़रिश्ता अज़राईल मेहमान बनकर घर आयेगा तो वह शरीर रूपी सुन्दर बर्तन को तोड़कर इसके ठीकरे (टुकड़े) कर देगा। साँसों की सुन्दर रस्सी टूट जायेगी और शरीर बिलकुल नाकारा हो जायेगा।

[69]

फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टूटी नागर लजु॥
जो सजण भुइ भारु थे से किउ आवहि अजु॥

भावार्थ: इस श्लोक में भी पिछले दो श्लोकों में प्रकट भाव को ही आगे बढ़ाया गया है। जब मौत का फ़रिश्ता शरीर रूपी सुन्दर बर्तन को तोड़ देगा और साँसों की सुन्दर रस्सी (लजु) टूट जायेगी तो चुस्ती और फुर्ती से चलनेवाला जीव निष्प्राण होकर धरती पर गिर पड़ेगा। हमेशा साथ रहनेवाले साथियों के साथ दोबारा मिलाप नहीं हो सकेगा।

[70]

फरीदा बे निवाजा कुतिआ एह न भली रीति॥
कबही चलि न आइआ पंजे वखत मसीति॥

शब्दार्थ: बे निवाजा=नमाज़ (भजन-बन्दगी) से ख़ाली।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद ख़ुदा की रहमत से ख़ाली इनसान को 'बे निवाजा कुतिआ' कहते हैं। आप बड़े अफ़सोस के साथ कहते हैं कि जो इनसान पाँच वक़्त की नमाज़ भी अदा नहीं कर सकता, भाव जिसका कुल मालिक की इबादत की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं, वह बहुत बदक़िस्मत है। वह इनसान कहलाने का हक़दार नहीं। उसका जीवन पशुओं के समान है। इनसान को इनसान बनाने वाला वास्तविक गुण ख़ुदा की बन्दगी है।

[71]

उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि॥
जो सिरु सांई ना निवै सो सिरु कपि उतारि॥

शब्दार्थ: उजू साजि=नमाज़ से पहले हाथ, मुँह और पाँव धोकर। निवाज=नमाज़। कपि=काटकर।

भावार्थ: मुसलमान भाई सुबह हाथ-मुँह धोकर नमाज़ अदा करते हैं। पिछले श्लोक में प्रकट भाव को आगे बढ़ाते हुए बाबा फ़रीद नसीहत करते हैं कि तू

सुबह हाथ-मुँह धोकर कुल मालिक की बन्दगी कर। जो शीश (सिरु) उसकी याद में नहीं झुकता वह शीश काट देने के क़ाबिल है।

[72]

जो सिरु साई ना निवै सो सिरु कीजै कांइ॥
कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ॥

शब्दार्थ: कीजै कांइ=उसका क्या करें? कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ=उसे हाँडी के नीचे ईंधन की जगह जला दें।

भावार्थ: इस श्लोक को शाब्दिक अर्थों में लेने की बजाय इसमें छिपे गूढ़ भाव को समझने का यत्न करना चाहिये। पिछले दो श्लोकों में प्रकट भाव को आगे बढ़ाते हुए बाबा फ़रीद कहते हैं कि जो सिर कुल मालिक की बन्दगी में नहीं झुकता वह ईंधन की तरह जला देने के लायक़ है।

सभी सन्तों-महात्माओं और कामिल फ़क़ीरों ने रूहानी अभ्यास करने पर ज़ोर दिया है। मुर्शिद के क़दमों में पहुँचकर उनसे इबादत का तरीक़ा सीख लेना ही काफ़ी नहीं है, उस पर अमल करना भी ज़रूरी है। बाबा फ़रीद ने इसीलिये इन तीन श्लोकों (70, 71 और 72) में बन्दगी न करनेवालों के लिये बड़े सख़्त लफ़्ज़ों का इस्तेमाल किया है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

नैण न देखहि साध सि नैण बिहालिआ॥
करन न सुनही नादु करन मुंदि घालिआ॥
रसना जपै न नामु तिलु तिलु करि कटीऐ॥
हरिहां जब बिसरै गोबिद राइ दिनो दिनु घटीऐ॥[25]

यानी जो आँखें सन्तों के दर्शन नहीं करती, वे आँखें व्यर्थ है। जो कान शब्द या नाम को नहीं सुनते, उनको बन्द कर देना चाहिये; जो जीभ नाम का सिमरन नहीं करती, तिल-तिल करके काट देनी चाहिये; परमात्मा को भूलने में नुक़सान ही नुक़सान है।

[73]

फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि॥
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि॥

शब्दार्थ: तैडे=तेरे। जिन्ही तू जणिओहि=जिन्होंने तुझे जन्म दिया था। लदि गए=चले गए। तूं अजै न पतीणोहि=तुझे अभी भी यकीन नहीं हुआ।

भावार्थ: इस श्लोक में मौत की अटलता का भाव दृढ़ करवाते हुए बाबा फ़रीद कहते हैं कि ऐ इनसान, तेरे माता-पिता, जिन्होंने तुझे जन्म दिया था, कहाँ हैं? वे यहाँ से हमेशा के लिये चले गए हैं। क्या उनकी मौत देखकर भी तुझे विश्वास नहीं हुआ कि यहाँ कोई हमेशा नहीं रह सकता। अगर यहाँ कोई हमेशा रह सकता, तो हमारे पूर्वज यहाँ से क्यों जाते? अगर वे यहाँ नहीं रह सके, तो हम कैसे रह सकते हैं?

[74]

फरीदा मनु मैदानु करि टोए टिबे लाहि॥
अगै मूलि न आवसी दोजक संदी भाहि॥

शब्दार्थ: मनु मैदानु करि=मन को मैदान की तरह समतल कर ले। टोए टिबे लाहि=ऊँची-नीची जगह दूर कर। न आवसी=नहीं आयेगी। दोजक संदी भाहि=नरकों की आग।

भावार्थ: बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं कि तू मन में से विषयों-विकारों, लोभ, मोह, अहंकार, ख़ुदी आदि के टीले और खाइयाँ दूर कर दे। तू अहंकार को त्यागकर सच्ची नम्रता को अपना ले और अपने आपको कुल मालिक की बन्दगी में लगा दे। अगर ऐसा करेगा तो नरकों की आग से बच जायेगा।

[75]

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि॥
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि॥

शब्दार्थ: खालकु=जन्म देनेवाला, परमात्मा। माहि=में।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि सारे संसार का एक ही ख़ालिक है और वह हरएक के अन्दर मौजूद है। इसलिये किसी को बुरा या

छोटा नहीं कहा जा सकता है। सब इनसान एक क़ादिर की क़ुदरत हैं, सबके अन्दर एक ही ख़ुदा का नूर है, इसलिये सब एक जैसे प्यार और इज़्ज़त के लायक़ हैं। डॉ. नज़ीर अहमद ने इस श्लोक के प्रसंग में सूफ़ी दरवेश ख़्वाजा ग़ुलाम फ़रीद के कलाम से यह हवाला दिया है: हर सूरत विच दीदार डिठम। सभ यार अग़यार को यार डिठम।[26] 'अग़यार' ग़ैर का बहुवचन है। आप कह रहे हैं कि अपने-पराये, दोस्त-दुश्मन सब उस एक प्रीतम का ही रूप हैं।

[76]

फरीदा जि दिहि नाला कपिआ जे गलु कपहि चुख॥
पवनि न इती मामले सहां न इती दुख॥

शब्दार्थ: जि दिहि=जिस दिन। नाला कपिआ=नाड़ू काटा गया। चुख=थोड़ा-सा। इती=इतने। मामले=झगड़े, झंझट।

भावार्थ: आप कहते हैं कि मेरे जन्म के समय जब मेरा नाड़ू काटा गया, अगर उस समय मेरा गला दबा दिया जाता तो न मुझे इतने कष्टों में से गुज़रना पड़ता और न ही इतने दु:ख सहन करने पड़ते। आप दूसरे कई श्लोकों में यह भाव प्रकट कर आये हैं कि जीवात्मा के सब दु:खों का मूल कारण प्रभु से उसकी जुदाई है। आप यहाँ भी यही भाव प्रकट कर रहे हैं कि प्रभु रूपी माता से जुदा होने की बजाय यदि मेरा वजूद ही ख़त्म हो जाता तो अच्छा था। आप काव्यमय ढंग से यह भाव दृढ़ करवा रहे हैं कि प्रभु से जुदाई आत्मा के लिये सबसे बड़ा सन्ताप है और प्रीतम से जुदाई का जीवन मौत से भी बदतर है।

[77]

चबण चलण रतंन से सुणीअर बहि गए॥
हेड़े मुती धाह से जानी चलि गए॥

शब्दार्थ: चबण=दांत। चलण=टांगें। रतंन=आँखें, नयन। सुणीअर=कान। हेड़े मुती धाह=शरीर रोता है। से=वे। जानी=दोस्त, साथी।

भावार्थ: बुढ़ापे में दांत, पैर, आँखें, कान आदि सब अंग काम करना बन्द कर देते हैं। शरीर रोता है कि हाय! मेरे प्यारे साथी मेरा साथ छोड़ गये हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि जब शरीर के अंग ही शरीर के नहीं रहते और शरीर अपना नहीं रहता तो संसार में और कौन सी चीज़ अपनी बन सकती है?

[78]

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥

शब्दार्थ: न हढाइ=न कर।

भावार्थ: ऐ फ़रीद, तू बुरा करनेवाले का भी भला कर और क्रोध से बच कर रह। इस तरह तू शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रोगों से बचा रहेगा और तेरा सबके मालिक यानी उस परमात्मा से भी मिलाप हो जायेगा। आपने सातवें श्लोक में भी यही भाव प्रकट किया है:

फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि॥
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि॥

[79]

फरीदा पंख पराहुणी दुनी सुहावा बागु॥
नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु॥

शब्दार्थ: पंख=पक्षियों की पंक्ति। नउबति=नगारा। सुबह सिउ=प्रात: से, जल्दी। साजु=सामान, तैयारी।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ने छियासठवें श्लोक में फ़रमाया है कि संसार रूपी सरोवर के किनारे पर बैठी पक्षी रूपी जीवात्माएँ यहाँ से पलायन करती जा रही हैं। एक दिन यह सरोवर भी सूख जायेगा और इसमें खिले हुए फूल भी मुरझा जायेंगे।

यहाँ आप इशारा कर रहे हैं कि दुनिया एक बाग़ की तरह है। यहाँ जीव रूपी पक्षी रात-भर विश्राम करने के लिये ठहरते हैं और सुबह होते ही यहाँ से उड़ जाते हैं। जिस तरह पक्षी बाग़ के सुन्दर मेवों को देखकर बाग़ को ही अपना घर बनाकर नहीं बैठ जाते, उसी तरह जीवात्मा को भी यह समझ लेना चाहिये कि जब मौत का नगारा बजेगा, उसे यहाँ से कूच करना पड़ेगा। इसलिये यहाँ से चलने का सामान जल्दी से जल्दी तैयार कर लेना चाहिये। चलते समय साथ ले जानेवाले सामान से भाव ख़ुदा की बन्दगी द्वारा इकट्ठा

किया जानेवाला आक़बत का तोशा है। साईं बुल्लेशाह अपनी काफ़ी 'कर कत्तण वल्ल ध्यान कुड़े' में इशारा करते हैं:

दीवा आपणे पास जगावीं, कत्त कत्त सूत भड़ोली पावीं।
अक्खीं विच्चों रात लंघावीं, औखी करके जान कुड़े।[27]

यानी तू ख़ुदा की प्यारी सखियों-सहेलियों के साथ मिलकर ख़ुदा की बन्दगी या नाम की कमाई का सूत कात ले। तू हर हालत में जीवन रहते हुए यह काम कर ले क्योंकि आख़िरी वक़्त इसे ही तेरे साथ जाना है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

संत जनहु मिलि भाईहो सचा नामु समालि॥
तोसा बंधहु जीअ का ऐथै ओथै नालि॥[28]

[80]

फरीदा राति कथूरी वंडीऐ सुतिआ मिलै न भाउ॥
जिंन्हा नैण नींद्रावले तिंन्हा मिलणु कुआउ॥

शब्दार्थ: कथूरी=कस्तूरी। भाउ=हिस्सा। जिंन्हा नैण नींद्रावले=जिनकी आँखें नींद से भारी हैं। तिंन्हा मिलणु कुआउ=उनको प्राप्ति कैसे हो?

भावार्थ: आप कहते हैं कि रात को कुल मालिक की दरगाह से अभ्यासी जीवों पर नाम का अमृत बरसता है। जो साधक सुचेत होकर रात के एकान्त में अपनी लिव अन्दर नाम से जोड़ते हैं, उनके अन्दर ख़ुदा की भक्ति की कस्तूरी फूटती है। जो लोग रात ग़फ़लत में सोकर बिता देते हैं, उन्हें इस कस्तूरी में से हिस्सा कैसे मिल सकता है?

[81]

फरीदा मै जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि॥
ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि॥

शब्दार्थ: मुझ कू=मुझे। सबाइऐ जगि=सारे जगत में।

भावार्थ: 'ऊचे चड़ि कै देखिआ'— पर्वत के ऊपर खड़े व्यक्ति को हर घर से उठ रहा धुआँ साफ़ नज़र आता है। आप फ़रमाते हैं कि जब तक मैं

साधारण स्तर पर था तो मैं अपने जीवन के दुःखों के बारे में सोचता था, जब मैं ऊँचे रूहानी मण्डलों पर पहुँचा तो मुझे पता चला कि सारा संसार ही दुःखों की आग में जल रहा है। कबीर साहिब ने भी कहा है, 'चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय। दुइ पट भीतर आइकै, साबित गया न कोय॥'[29] सारा संसार ही आशा-तृष्णा तथा कर्म और फल की चक्की में पिस रहा है। सारा संसार बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु का सन्ताप भोग रहा है।

[82]

फरीदा भूमि रंगावली मंझि विसूला बाग॥
जो जन पीरि निवाजिआ तिंन्हा अंच न लाग॥

शब्दार्थ: भूमि=धरती, दुनिया। रंगावली=रंग-बिरंगी। मंझि=इसमें। विसूला=विषमय, ज़हरीला। जो जन पीरि निवाजिआ=जिसको पीर ने अपनी पनाह (शरण) में ले लिया है। अंच=आग, तपन।

भावार्थ: यह श्लोक गुरु अर्जुन देव जी का है। इससे पहले श्लोक में बाबा फ़रीद ने कहा है कि सारा संसार दुःखों की आग में जल रहा है। कबीर साहिब भी कहते हैं, 'यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि। भीतर रहा जो जारि मुआ, साधू उबरे भागि॥'[30] गुरु साहिब भी यही बात समझाते हैं कि यह संसार बाहर से देखने में रंग-बिरंगा और सुन्दर लगता है, पर इसके अन्दर क़दम-क़दम पर ज़हर के पौधे उगे हुए हैं। संसार में जगह-जगह माया की प्रचण्ड अग्नि है। पर जो लोग मुर्शिद की शरण में चले जाते हैं, मुर्शिद उन्हें अन्दर नाम रूपी अमृत से जुड़ने की युक्ति सिखा देता है, इसलिये उन पर बाहर की ज़हरीली आग का असर नहीं होता। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं:

एकु बगीचा पेड घन करिआ॥ अंम्रित नामु तहा महि फलिआ॥
ऐसा करहु बीचारु गिआनी॥ जा ते पाईऐ पदु निरबानी॥
आसि पासि बिखूआ के कुंटा बीचि अंम्रितु है भाई रे॥
सिंचनहारे एकै माली॥ खबरि करतु है पात पत डाली॥
सगल बनसपति आणि जड़ाई॥ सगली फूली निफल न काई॥
अंम्रित फलु नामु जिनि गुर ते पाइआ॥ नानक दास तरी तिनि माइआ॥[31]

यानी संसार में जगह-जगह ज़हर के कुएँ हैं, पर जीव के अन्दर नाम रूपी अमृत का सरोवर है। जो जीवात्मा सतगुरु से अन्दर नाम रूपी अमृत पीने की युक्ति सीख लेती है, वह सहज ही माया की ज़हरीली आग को पार कर लेती है।

सभी सन्त और कामिल फ़क़ीर कहते हैं कि हम दुनिया के मोह में फँसे प्राणी इतने निर्बल हैं कि अपनी ताक़त और कोशिशों से माया की आग को शान्त नहीं कर सकते और न ही माया के ज़हर को ख़त्म कर सकते हैं। लेकिन जब हम कामिल मुर्शिद की पनाह लेकर नाम का अभ्यास करते हैं तो माया की आग या ज़हर हम पर असर नहीं कर सकती। गुरु अर्जुन देव एक अन्य शब्द में कहते हैं:

ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई॥
चउगिरद हमारै राम कार दुखु लगै न भाई॥
सतिगुरु पूरा भेटिआ जिनि बणत बणाई॥
राम नामु अउखधु दीआ एका लिव लाई॥[32]

यानी अगर हम परमपिता परमात्मा की शरण ले लें, तो माया की आग का तो सवाल ही नहीं उठता, उसकी गर्म हवा भी हमें नहीं लग सकेगी। सतगुरु हमारे चारों ओर प्रभु के नाम की कार (रेखा) खींच देंगे तो हम पर दुःखों का कोई असर नहीं होगा। गुरु अमरदास जी की वाणी है:

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ॥
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ॥
जा तिसु भाणा ता जंमिआ परवारि भला भाइआ॥
लिव छुड़की लगी त्रिसना माइआ अमरु वरताइआ॥
एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ॥
कहै नानकु गुर परसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ॥[33]

आप इशारा करते हैं कि जिस तरह माता के पेट में जठराग्नि होती है, उसी तरह बाहरी संसार में माया की अग्नि प्रचण्ड है। यह माया का ही खेल है कि संसार में जन्म लेते समय ही जीव की परमात्मा से लिव टूट जाती है और वह परमात्मा रूपी सच को भूलकर माया रूपी कूड़ में खचित हो जाता

है। पर जो भाग्यशाली जीव सतगुरु के उपदेशानुसार अपनी लिव अन्दर प्रभु के नाम से जोड़ लेते हैं, वे माया की आग से भी बचे रहते हैं और परमात्मा से मिलाप भी कर लेते हैं।

[83]

फरीदा उमर सुहावड़ी संगि सुवंनड़ी देह॥
विरले केई पाईअनि जिंन्हा पिआरे नेह॥

शब्दार्थ: सुहावड़ी=सुखपूर्ण, सुखमय। संगि=(उम्र के) साथ। सुवंनड़ी=सुन्दर। पाईअनि=पाये जाते हैं, मिलते हैं। नेह=प्यार।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु अर्जुन साहिब कहते हैं कि जिन विरले भाग्यशाली जीवों की लिव अन्तर में लग जाती है और जिनका उस प्रीतम से प्यार हो जाता है, उनका जीवन सुखमय और देह सुन्दर हो जाती है।

[84]

कंधी वहण न ढाहि तउ भी लेखा देवणा॥
जिधरि रब रजाइ वहणु तिदाऊ गंउ करे॥

शब्दार्थ: कंधी=नदी का किनारा। रब रजाइ=परमात्मा की रज़ा के मुताबिक़। तिदाऊ=उसी तरफ़। गंउ=रास्ता बनाये।

भावार्थ: किनारा नदी के बहाव से कहता है कि तू मुझे मत गिरा, तुझे भी लेखा देना पड़ेगा। नदी कहती है कि मेरे वश में कुछ नहीं है, जिस ओर ख़ुदा की रज़ा है, उधर ही मेरा पानी बह रहा है।

जीव दुःखों के बहाव से घबराकर विनती करता है कि दुःख दूर हो जायें। वह यह समझने की कोशिश नहीं करता कि दुःखों की बाढ़ भी मालिक की अपनी रज़ा से आती है। मनुष्य की भलाई रज़ा में राज़ी रहने में है।

[85]

फरीदा डुखा सेती दिहु गइआ सूलां सेती राति॥
खड़ा पुकारे पातणी बेड़ा कपर वाति॥

शब्दार्थ: डुखा सेती=दुःखों में। दिहु=दिन। सूलां सेती राति=रात चिन्ता की सूलों में बीती। पातणी=मल्लाह, मुर्शिद। कपर=लहरें, भँवर। वाति=मुँह में।

भावार्थ: मनुष्य को न दिन में चैन है, न रात में। उसके दिन और रात दुःखों में बीत रहे हैं। मुर्शिद रूपी मल्लाह सावधान करते हैं कि हे भले मानस, तेरा जीवन रूपी बेड़ा बुरी तरह भवसागर की लहरों में घिरा हुआ है, इसके बचाव का कोई उपाय कर।

[86]

लंमी लंमी नदी वहै कंधी केरै हेति॥
बेड़े नो कपरु किआ करे जे पातण रहै सुचेति॥

शब्दार्थ: लंमी लंमी नदी वहै=बहुत लम्बी-चौड़ी नदी बह रही है। कंधी केरै हेति=किनारों को गिराने के लिये।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि यह ठीक है कि भवसागर बहुत गहरा और विकराल है तथा मनुष्य का जीवन रूपी बेड़ा बुरी तरह इसमें घिरा हुआ है, पर यदि जीवात्मा को कामिल मुर्शिद रूपी मल्लाह मिल जाये तो भवसागर की भयंकर लहरें उसके बेड़े का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

बिखु बोहिथा लादिआ दीआ समुंद मंझारि॥
कंधी दिसि न आवई ना उरवारु न पारु॥
वंझी हाथि न खेवटू जलु सागरु असरालु॥
बाबा जगु फाथा महा जालि॥
गुर परसादी उबरे सचा नामु समालि॥[34]

जीवात्मा के कर्मों की ज़हर से लदी हुई बेड़ी अथाह भवसागर में भटक रही है। न उसके साथ कोई मल्लाह है और न ही इसके पास कोई बाँस या चप्पू है। पर यदि मुर्शिद रूपी मल्लाह मिल जाये तो जीवात्मा नाम के साथ लिव जोड़कर सहज ही इस अथाह और विकराल भवसागर से पार चली जाती है।

[87]

फरीदा गलीं सु सजण वीह इकु ढूंढेदी न लहां॥
धुखां जिउ मांलीह कारणि तिंन्हा मा पिरी॥

शब्दार्थ: गलीं=बातों से ख़ुश करनेवाले। इकु=असल सज्जन। न लहां=नहीं मिलता। धुखां जिउ मांलीह=मैं मलीह की तरह अन्दर ही अन्दर सुलग रही हूँ। मा पिरी=मेरा प्रिय सज्जन।

भावार्थ: पिछले श्लोक में बताया गया है कि यदि सच्चा मुर्शिद मिल जाये तो भवसागर के तूफ़ान, जीवात्मा की बेड़ी का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। इस श्लोक में बाबा फ़रीद इशारा कर रहे हैं कि बातों से घर पूरा करनेवाले मुर्शिद या साधु तो अनेक हैं, पर प्रभु की सच्ची भक्ति की युक्ति बताने वाला, आख़िरी वक़्त साथ देनेवाला और भवसागर से पार ले जानेवाला कोई कामिल मुर्शिद नहीं मिल रहा। नतीजा यह है कि ऐसे सच्चे मुर्शिद की तलाश में जीवात्मा मलीह भाव गोबर के चूरे की तरह सुलग रही है। न उसकी आशा पूरी हो रही है और न ही दुःख दूर हो रहा है।

[88]

फरीदा इहु तनु भउकणा नित नित दुखीऐ कउणु॥
कंनी बुजे दे रहां किती वगै पउणु॥

शब्दार्थ: भउकणा=जिसे भौंकने की आदत हो। दुखीऐ कउणु=कौन दुःखी होता रहे। दे रहां=देता हूँ। किती=कितनी भी, जितनी मर्ज़ी। पउणु=पवन, हवा।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि यह मन रोज़ इन्द्रियों के भोगों की नई-नई इच्छाएँ पेश करता है। इसकी वृत्ति उस कुत्ते जैसी है जिसकी भूख कभी शान्त नहीं होती। आप कहते हैं कि मन आशा, तृष्णा की जितनी मर्ज़ी तेज़ आँधी लाये, मैं अपने कानों को बन्द कर लूँगा और मन की एक नहीं सुनूँगा।

सूफ़ी साहित्य में नफ़्स को अक्सर ऐसा कुत्ता कहा जाता है जिसकी विकारों के टुकड़े खाने की भूख कभी शान्त नहीं होती। बाबा फ़रीद का भाव है कि मन की माँगों का कोई अन्त नहीं। आग में जितना ज़्यादा ईंधन डालो आग उतनी ज़्यादा भड़कती है। मन की जितनी ख़्वाहिशें पूरी करो, यह उतनी

और पैदा करता है। विषयों-विकारों की अग्नि को सब्र-सन्तोष और नाम के अमृत से ही शान्त किया जा सकता है।

[89]

फरीदा रब खजूरी पकीआं माखिअ नई वहंन्हि॥
जो जो वंञै डीहड़ा सो उमर हथ पवंनि॥

शब्दार्थ: माखिअ नई वहंन्हि=शहद की बहती हुई नदी। डीहड़ा=दिन। हथ पवंनि=हाथ पड़ रहे हैं।

भावार्थ: पूर्ण सन्तों ने परमात्मा को सत्य-रूप, ज्ञान-रूप और आनन्द-रूप माना है। यहाँ आप परमात्मा के आनन्द-रूप होने का भाव प्रकट कर रहे हैं। परमात्मा पकी हुई खजूरों और शहद की नदी की तरह मीठा, प्यारा, रस-रूप और आनन्द-रूप है। बाबा फ़रीद ने 27वें श्लोक में कहा है कि शक्कर, चीनी, मिश्री, गुड़, शहद, दूध आदि कोई भी वस्तु परमात्मा के प्रेम की मिठास का मुक़ाबला नहीं कर सकती। यहाँ आप परमात्मा की तुलना पकी और रसीली खजूरों और शहद की नदी से कर रहे हैं। इन दोनों श्लोकों द्वारा बाबा फ़रीद यह समझाना चाहते हैं कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के स्वाद भी परमेश्वर से मिलाप के परम आनन्द का मुक़ाबला नहीं कर सकते। ऐसे आनन्द-रूप परमात्मा की प्राप्ति में देरी नहीं करनी चाहिये क्योंकि जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे हैं, जीवन की तरफ़ मृत्यु का हाथ बढ़ता जा रहा है, यानी दिन-ब-दिन उम्र घटती जा रही है और मृत्यु नज़दीक आ रही है।

[90]

फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग॥
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग॥

शब्दार्थ: पिंजरु थीआ=शरीर सूखकर पिंजर (हड्डियों का ढाँचा) हो गया। खूंडहि=नोच रहे हैं। काग=कौआ।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि काल रूपी कौओं ने शरीर को नोच-नोच कर पिंजर बना दिया है, पर इनसान का दुर्भाग्य देखो कि अभी तक उसे परमात्मा का दीदार नसीब नहीं हुआ।

[91]

कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु॥
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस॥

शब्दार्थ: कागा=कौओं ने। करंग=पिंजर। मति छुहउ=न छेड़ना।

भावार्थ: आप पिछले श्लोक वाले भाव को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि काल रूपी कौए ने शरीर को नोच कर कंकाल बना दिया है। पर प्रेमिका के हृदय में अपने प्रीतम के दीदार की इच्छा ज्यों की त्यों क़ायम है। वह कौए से विनती करती है कि मेरी दोनों आँखों को मत छेड़ना क्योंकि मुझे प्रीतम के दीदार की आशा है। बाबा फ़रीद के कहने का भाव है कि परमात्मा रूपी प्रीतम के दीदार और मिलाप में उम्मीद से कहीं ज़्यादा समय लग सकता है, लेकिन सच्चे आशिक़ के हृदय में मिलाप की आशा और उमंग सदा क़ायम रहनी चाहिये।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए डॉ. नज़ीर अहमद ने बादशाह अकबर के समय के सूफ़ी कवि रस ख़ां के इस शेयर का हवाला दिया है:

कागा रे तुम ही भले चुन चुन खाईयो मास।
दो नैनां मत खाईयो मोहि पिया मिलन की आस।[35]

[92]

कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि॥
जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि॥

शब्दार्थ: बसै=अगर तेरे वश में है। तिदू=उसमें से।

भावार्थ: पिछले दो श्लोकों में प्रकट भाव को आगे बढ़ाते हुए बाबा फ़रीद कहते हैं कि ऐ काग, मेरे शरीर रूपी पिंजरे को न नोच। हो सके तो शरीर से उड़ जा। इस शरीर में मेरा प्यारा प्रीतम निवास करता है, तू इस शरीर का मांस खाकर इसे निढाल मत कर।

आत्मा रूपी प्रेमिका डरती है कि प्रभु रूपी प्रीतम से मिलाप होने से पहले ही जीवन का अन्त न हो जाये।

[93]

फरीदा गोर निमाणी सडु करे निघरिआ घरि आउ॥
सरपर मैथै आवणा मरणहु न डरिआहु॥

शब्दार्थ: निमाणी=बेचारी। सडु करे=आवाज़ें देती है। निघरिआ=बे-घर जीव। सरपर=ज़रूर। मैथै=मेरे पास।

भावार्थ: क़ब्र इनसान को आवाज़ लगाकर कहती है कि यह दुनिया तेरा वास्तविक घर नहीं। यदि यह तुम्हारा वास्तविक घर हो तो मौत के बाद तुझे यहाँ से अलविदा क्यों कही जाये? तू अन्त समय अवश्य मेरे पास आयेगा। तू मुझसे न डर।

इनसान मौत से डरता है, पर मौत अटल है। ज़िन्दगी का अन्त ही मौत है। एक दिन सबने मिट्टी या आग के सपुर्द हो जाना है। बाबा फ़रीद यहाँ मौत की अटलता का भाव दृढ़ करवा रहे हैं।

[94]

एनी लोइणी देखदिआ केती चलि गई॥
फरीदा लोकां आपो आपणी मै आपणी पई॥

शब्दार्थ: एनी लोइणी=इन आँखों से। केती=कितनी, बहुत-सी।

भावार्थ: हमारे देखते-देखते कितने ही लोग संसार से कूच कर गये हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि लोगों को अपने सांसारिक कार्यों की फ़िक्र है, पर मुझे अपने रूहानी मक़सद को हासिल करने की चिन्ता सता रही है।

[95]

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥

शब्दार्थ: आपु=अपने आपको। मै=मुझे।

भावार्थ: इस श्लोक में बहुत सूक्ष्म रूहानी भेद प्रकट किया गया है। बाबा फ़रीद कहते हैं कि अपने आपको सँवारने से अपनी असली 'मैं' का पता

लगता है। जब अपनी वास्तविक 'मैं' का पता चलता है, तो परमात्मा से मिलाप हो जाता है और सबकुछ अपना बन जाता है। आपका भाव है कि इनसान की हस्ती का सार उसकी आत्मा है। वर्तमान अवस्था में इन्द्रियों (शरीर) तथा मन और आत्मा की गाँठ बँधी हुई है। जब रूहानी अभ्यास द्वारा मन और आत्मा को आँखों के पीछे एकाग्र और स्थिर कर लेते हैं तो मन और आत्मा शरीर से अलग हो जाते हैं। जब रूहानी चढ़ाई द्वारा मन को अन्दर दूसरे रूहानी मण्डल में लीन कर देते हैं तो मन और आत्मा की गाँठ खुल जाती है। उस अवस्था में शरीर और मन से अलग हुई आत्मा अपने विशुद्ध रूहानी स्वरूप को प्राप्त करके परमात्मा में समा जाती है। जब वह परमात्मा में समाकर परमात्मा का रूप हो जाती है, तो जो कुछ परमात्मा का है वह सब इसका भी हो जाता है। इसको परमार्थी भाषा में अपने आपकी पहचान या आत्मा की पहचान द्वारा परमात्मा की पहचान का नाम दिया गया है।

[96]

कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु॥
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु॥

शब्दार्थ: कंधी उतै रुखड़ा=नदी के किनारे लगा हुआ पौधा या वृक्ष। किचरकु बंनै धीरु=कितनी देर धैर्य धारण कर सकता है। नीरु=पानी।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद मनुष्य जन्म की नश्वरता बयान कर रहे हैं। आप उदाहरण देते हैं कि दरिया के किनारे उगा वृक्ष ज़्यादा देर तक क़ायम नहीं रह सकता। पानी के तेज़ बहाव के कारण एक दिन वृक्ष दरिया में गिर जाता है। आप एक और उदाहरण द्वारा यह समझा रहे हैं कि कच्चे घड़े में पानी ज़्यादा देर तक नहीं रहता। घड़ा जल्दी ही टूट जाता है और उस घड़े मे पड़ा सारा पानी बह जाता है। आप इन उदाहरणों द्वारा यह समझाने का यत्न कर रहे हैं कि मनुष्य का जीवन दरिया के किनारे उगे वृक्ष के समान है तथा स्वाँसों की पूँजी कच्चे घड़े में रखे पानी के समान है, जिसका कोई भरोसा नहीं।

[97]

फरीदा महल निसखन रहि गए वासा आइआ तलि॥
गोरां से निमाणीआ बहसनि रूहां मलि॥
आखीं सेखा बंदगी चलणु अजु कि कलि॥

शब्दार्थ: निसखन=ख़ाली, सुनसान। वासा आइआ तलि=धरती के नीचे निवास हो गया। गोरां=क़ब्रें। बहसनि=बैठ जायेंगी। मलि=कब्ज़ा करके।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कह रहे हैं कि एक दिन महलों में रहनेवाले लोग क़ब्रों में जा बसेंगे। महल ख़ाली रह जायेंगे। प्यारे, देर-सवेर हर किसी को दुनिया को छोड़कर जाना पड़ेगा, इसलिये जल्दी से जल्दी ख़ुदा की इबादत कर ले।

[98]

फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा॥
अगै दोजकु तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा॥
इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा॥
अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा॥

शब्दार्थ: एवै=इस तरह। दोजकु=नरक। काहाहा=हाहाकार। ओगाहा=गवाह।

भावार्थ: जिस प्रकार नदी की तेज़ लहरें किनारों को ढाहती रहती है, उसी प्रकार मौत तेज़ी से दौड़ी चली आ रही है। मरने के बाद जीव को अपने पापों के कारण दोज़ख़ में जाना पड़ता है, जहाँ यातनाएँ सह रहे जीवों की हाहाकार मची हुई है। कुछ लोग इस सच को समझ गये हैं, परन्तु कुछ लोग अज्ञानता में फँसे हुए हैं। यह बात जितनी जल्दी समझ ली जाये बेहतर है कि किये हुए अमलों का फल ज़रूर भोगना पड़ता है और दुनिया में किये हुए कर्म ही दरगाह में गवाही देते हैं और इनके फल से बच सकना असम्भव है।

[99]

फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥

शब्दार्थ: कंन्है=किनारे पर। केल=कलोल, खेलना। हंझ=हंस जैसा सफ़ेद बगुला। अचिंते=अचानक। विसरीआं=भूल गया। जो मनि चिति न चेते=जिन बातों का चित्त में ख़याल भी नहीं था। गाली=बातें।

भावार्थ: जीव रूपी बगुला संसार रूपी नदी के किनारे बैठा अनेक प्रकार के खेल खेलता है। खेलों में मस्त बगुले पर अचानक परमात्मा द्वारा भेजे गए मौत के बाज़ झपट पड़ते हैं। बगुले (मनुष्य) को सब खेल भूल जाते हैं। परमात्मा वह कर देता है, जिसका उसने कभी सपना भी नहीं लिया होता।

बाबा फ़रीद सावधान कर रहे हैं कि मौत पता नहीं किस समय, किस जगह और किस हालत में आ जानी है। इनसान ऐशो-इशरत और रंग-तमाशों में खोकर मौत को और संसार में आने के अपने असली मक़सद को भूल जाता है। जब मौत के बाज़ झपटते हैं तो क्षण-भर में सारा खेल बिगड़ जाता है। मौत का समय निश्चित है, पर किसी को उस समय का कोई ज्ञान नहीं, इसलिये प्रभु-भक्ति का कार्य कभी पीछे नहीं डालना चाहिये।

[100]

साढे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अंनि॥
आइओ बंदा दुनी विचि वति आसूणी बंन्हि॥
मलकल मउत जां आवसी सभ दरवाजे भंनि॥
तिन्हा पिआरिआ भाईआं अगै दिता बंन्हि॥
वेखहु बंदा चलिआ चहु जणिआ दै कंन्हि॥
फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥

शब्दार्थ: साढे त्रै मण=मोटा ताज़ा। देहुरी=शरीर, देह। चलै=चलता है। पाणी अंनि=अन्न पानी के आसरे। वति=फिर। आसूणी=छोटी-सी आशा। बंन्हि=बाँध कर। मलकल मउत=मौत का फ़रिश्ता, यमदूत। कंन्हि=कन्धे पर।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि इनसान का साढ़े तीन मन का हृष्ट-पुष्ट शरीर संसार में अन्न-पानी के सहारे दौड़ता फिरता है। इनसान संसार में सुन्दर इच्छाएँ पल्ले बाँधकर फिर रहा है। अचानक मौत का फ़रिश्ता आ धमकता है। वह शरीर के सारे दरवाज़े तोड़ देता है। (शरीर के नौ दरवाज़े हैं- दो आँखें, दो कान, दो नासिका, मुँह, नीचे इन्द्रियों के दो मल-मूत्र के स्थान। आत्मा पहले हाथों और पाँवों में से सिमटती है, फिर धड़ में से और अन्त में आँखों में से शरीर को छोड़कर ऊपर की ओर चली जाती है। जिस-जिस हिस्से में से आत्मा सिमटती जाती है, वह-वह द्वार टूटता जाता है।) जिन सम्बन्धियों पर यह प्यार में जान न्योछावर करने के लिये तैयार रहता था, वे इसे अर्थी पर डालकर श्मशान-भूमि या क़ब्रिस्तान ले जाते हैं। जो मनुष्य जीवन में चुस्ती-फुर्ती की मूरत था, उसे चार मनुष्यों के कन्धों पर श्मशान-भूमि ले जाया जाता है। वह चलते समय कुछ भी साथ नहीं ले जा सकता, केवल किये हुए कर्म और भक्ति ही ख़ुदा की दरगाह में सहायक होते हैं।

[101]

फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखीआ जंगलि जिन्हा वासु॥
ककरु चुगनि थलि वसनि रब न छोडनि पासु॥

शब्दार्थ: हउ=मैं। बलिहारी=न्योछावर होना। ककरु=कंकर। थलि=धरती पर। वसनि=निवास। रब न छोडनि पासु=परमात्मा का पल्ला नहीं छोड़ते।

भावार्थ: यहाँ पक्षी का अर्थ साधु या दरवेश है। जंगल का अर्थ एकान्त से है। कंकर बीनने का अर्थ रूखी-सूखी रोटी पर गुज़ारा करना है। 'थलि वसनि' से स्पष्ट हो जाता है कि उन दरवेशों की बात हो रही है जो एकान्त में रहते हैं, धरती पर सोते हैं और रूखी-सूखी खाकर गुज़ारा करते हैं, पर हर हालत में ख़ुदा की बन्दगी में लगे रहते हैं। बाबा फ़रीद कहते हैं कि मैं ऐसे दरवेशों पर क़ुर्बान जाता हूँ जो सन्तोष, सादगी और एकान्तमय जीवन व्यतीत करते हुए अपना ध्यान हमेशा प्रभु की भक्ति में लीन रखते हैं।

[102]

फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि॥
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि॥

शब्दार्थ: रुति फिरी=मौसम (ऋतु) बदल गया। वणु कंबिआ=जंगल काँप उठा। रहणु=स्थिरता। किथाऊ नाहि=कहीं भी नहीं है।

भावार्थ: मौत की आँधी सदा चल रही है। संसार रूपी जंगल में इनसान, हैवान, पशु, पक्षी रूपी पत्ते हर पल गिर रहे हैं। संसार रूपी जंगल को अच्छी तरह देख लें, कहीं भी कोई ऐसा वृक्ष नहीं मिलेगा, जिसके पत्ते सदा क़ायम रहते हों। 'रहणु किथाऊ नाहि'– मौत हर जगह है, स्थिरता, टिकाव या स्थायी जीवन कहीं भी नहीं है। बाबा फ़रीद मौत की अटलता और सर्वव्यापकता का भाव दृढ़ करवा रहे हैं।

[103]

फरीदा पाड़ि पटोला धज करी कंबलड़ी पहिरेउ॥
जिन्ही वेसी सहु मिलै सेई वेस करेउ॥

शब्दार्थ: पटोला=रेशमी कपड़ा। धज करी=फाड़ दूँ। जिन्ही वेसी सहु मिलै=जिस पहरावे से प्यारा मिले।

भावार्थ: ख़ुदा का आशिक़ कहता है कि मैं रेशमी पहनावा छोड़कर फ़कीरों वाला कम्बल पहनने को तैयार हूँ। भाव, मैं वह लिबास पहनने के लिये, ऐसी ज़िन्दगी को अपनाने के लिये और उस राह पर चलने के लिये तैयार हूँ, जिस के द्वारा मेरा प्रभु रूपी प्रीतम से मिलाप हो सके।

[104]

काइ पटोला पाड़ती कंबलड़ी पहिरेइ॥
नानक घर ही बैठिआ सहु मिलै जे नीअति रासि करेइ॥

शब्दार्थ: काइ=किसलिये, क्यों। पहिरेइ=पहनती है। रासि=शुद्ध, साफ़।

भावार्थ: यह श्लोक गुरु अमरदास जी का है। आप बाबा फ़रीद द्वारा पिछले श्लोक में प्रकट वैराग्य की भावना के बारे में अपने विचार ज़ाहिर करते

हुए कहते हैं कि प्रभु रूपी पति की प्राप्ति के लिये न रेशमी वस्त्र फाड़ने की ज़रूरत है, न फ़क़ीरों जैसा कम्बल पहनकर घर-बार का त्याग करके जंगलों में भटकने की ज़रूरत है। असल ज़रूरत नीयत या वृत्ति बदलने की है, मन के रुझान को दुनिया की ओर से हटाकर परमार्थ की ओर मोड़ने की है। त्याग का सम्बन्ध मन, नीयत या वृत्ति से है। ज़रूरत वृत्ति को बदलने की है, ज़बरदस्ती के बाहरी त्याग की नहीं।

[105]

फरीदा गरबु जिन्हा वडिआईआ धनि जोबनि आगाह॥
खाली चले धणी सिउ टिबे जिउ मीहाहु॥

शब्दार्थ: गरबु=अहंकार। आगाह=अथाह। धणी=मालिक, परमात्मा। सिउ=से। मीहाहु=वर्षा से।

भावार्थ: यह श्लोक गुरु अर्जुन देव जी का है। आप कहते हैं कि जैसे वर्षा होने के बाद टीलों से पानी नीचे बह जाता है। उसी तरह जिनको अथाह धन, यौवन, सुन्दरता आदि सांसारिक बड़ाइयों का अहंकार है, वे प्यारे रब की रहमत और उसके विसाल से ख़ाली रह जाते हैं।

आप उपरोक्त दोनों श्लोकों के साथ यह भाव शामिल कर रहे हैं कि दुनियादार लोग हुस्न, जवानी, धन-दौलत तथा मान-बड़ाई में खोकर परमात्मा के प्रेम की सच्ची दौलत से ख़ाली रह जाते हैं।

[106]

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥

शब्दार्थ: ऐथै=यहाँ, इस लोक में। घणेरिआ=बहुत अधिक। अगै=अगले लोक अर्थात् परलोक में। ठउर न ठाउ=जगह या ठिकाना नहीं।

भावार्थ: बाबा फ़रीद सावधान करते हैं कि जिन बदकिस्मत दुनियादारों ने दुनिया के मोह में फँसकर कुल मालिक का नाम भुला दिया है, वे कुरूप और डरावने हैं। वे यहाँ भी अनगिनत दु:ख उठाते हैं और उन्हें रब की दरगाह में भी ठिकाना नहीं मिलता। बाबा फ़रीद समझा रहे हैं कि लोक और परलोक

दोनों में सफलता और असल बड़ाई का साधन परमात्मा का नाम है। बाबा फ़रीद दूसरे प्रसंग में कहते हैं:

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥[36]

डॉ. नज़ीर अहमद ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए क़ुरान शरीफ़ की इस आयत का हवाला दिया है: याद रखो कि ख़ुदा की याद से मन को चैन मिलता है।[37]

[107]

फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि॥
जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि॥

शब्दार्थ: पिछल राति=पिछली रात, प्रात:काल, अमृत वेला। तै=तू।

भावार्थ: इस श्लोक में बाबा फ़रीद दुनियादार को ख़बरदार करते हैं कि ऐ भले मानस, अगर तू सुबह अमृत वेले जागकर प्रभु की भक्ति या नाम की कमाई नहीं करता तो तू कहने को तो ज़िन्दा है, पर असल में मुर्दे के समान है। अगर तूने प्रभु को भुला दिया है तो इसका यह अर्थ नहीं कि प्रभु ने भी तुझे भुलाया हुआ है। वह पल-पल तेरे हर कर्म को देख रहा है।

[108]

फरीदा कंतु रंगावला वडा वेमुहताजु॥
अलह सेती रतिआ एहु सचावां साजु॥

शब्दार्थ: कंतु=परमात्मा, मालिक। रंगावला=सुन्दर। वेमुहताजु=बेपरवाह। अलह सेती रतिआ=ख़ुदा के प्यार के रंग में रँग जाना। सचावां=सच्चा। साजु=पहरावा, श्रृंगार।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि प्रभु रूपी स्वामी अति सुन्दर और बेपरवाह है। वह अपनी मौज का मालिक है। वह किसी पर निर्भर नहीं है। अपने आपको उसके प्रेम के रंग में रँग लेना ही सच्चा और आत्मिक श्रृंगार है।

[109]

फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु॥
अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु॥

शब्दार्थ: विकारु=दोष, पाप। अलह भावै=जो ख़ुदा को भाये।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु अर्जुन देव जी प्रभु की रज़ा में राज़ी रहने का उपदेश देते हैं। आप कहते हैं कि हे दरवेश, तू दु:ख और सुख दोनों को ख़ुदा की रज़ा समझ और मन में से विकारों को निकाल दे। तू सुख-दु:ख दोनों को समान समझने वाली अवस्था पाकर ही ख़ुदा की दरगाह में परवान होगा।

[110]

फरीदा दुनी वजाई वजदी तूं भी वजहि नालि॥
सोई जीउ न वजदा जिसु अलहु करदा सार॥

शब्दार्थ: दुनी=दुनिया, दुनिया के लोग। वजाई वजदी=जिस तरह बजाया जाता है, बजती है। सार=सँभाल।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं कि जिस तरह माया बजाती है, उसी तरह संसार के लोग बज रहे हैं, भाव सारा संसार माया के अधीन होकर परमात्मा से दूर चला जा रहा है। केवल वह जीव ही माया के प्रभाव से बचता है, जिसे वह ख़ुदा ख़ुद बचाता है।

[111]

फरीदा दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि॥
मिसल फकीरां गाखड़ी सु पाईऐ पूर करंमि॥

शब्दार्थ: रता=रँगा हुआ। दुनी न कितै कंमि=दुनिया किसी काम की नहीं हैं। मिसल फकीरां=फ़क़ीरों जैसी रहनी। गाखड़ी=कठिन। पूर करंमि=पूरे भाग्य से।

भावार्थ: गुरु अर्जुन देव जी पिछले श्लोक में यह भाव प्रकट कर चुके हैं कि सारा संसार एक ही रौ में बहता चला जा रहा है। प्रभु की कृपा से ही कोई विरला जीव जीवन के वास्तविक उद्देश्य की पहचान करके उसे पूरा करने का यत्न करता है। इस श्लोक में गुरु साहिब पिछले श्लोक वाले भाव को आगे

बढ़ाते हुए कहते हैं कि दुनियादारों का दिल इस निकम्मी दुनिया के निकम्मे पदार्थों के मोह के रंग में रँगा हुआ है। मन को प्रभु के रंग में रँगकर सच्चे दरवेश जैसी सच्ची रहनी अपनाना कठिन है। यह बड़ाई बड़े ऊँचे भाग्य और मालिक की अपार दया-मेहर से मिलती है। डॉ. नज़ीर अहमद ने इस श्लोक की व्याख्या करते हुए सूफ़ी दरवेश शाह हुसैन के इस कथन का हवाला दिया है: पल्ले जिन्हां दे पई फ़क़ीरी, भाग तिन्हां दे चंगे।[38]

[112]

पहिलै पहरै फुलड़ा फलु भी पछा राति॥
जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति॥

शब्दार्थ: फुलड़ा=सुन्दर फूल। पछा राति=पिछली रात, प्रात:काल। जागंन्हि=जागते हैं। लहंनि=लेते हैं, प्राप्त करते हैं। साई=मालिक, परमात्मा। कंनो=से।

भावार्थ: जो साधक रात के पहले पहर अभ्यास करते हैं, उनके अभ्यास को सुन्दर फूल लगते हैं। जो अभ्यास को चौथे पहर प्रात:काल तक जारी रखते हैं, उनके अभ्यास के फूल, फल में बदल जाते हैं। बाबा फ़रीद ने 80 वें श्लोक में फ़रमाया है कि रात को ख़ुदा की रहमत रूपी कस्तूरी बरसती है। जो साधक सुचेत होकर उस समय ख़ुदा की बन्दगी करते हैं वे उस रहमत से लाभ उठा लेते हैं। जो साधक अचेत होकर सोये रहते हैं, वे उस रहमत से ख़ाली रह जाते हैं। आपने 107 वें श्लोक में फ़रमाया है कि जो लोग रात के पिछले पहर सोये रहते है, वे शारीरिक तौर पर तो ज़िन्दा हैं, पर आत्मिक रूप में मुर्दा हैं। आप यहाँ समझा रहे हैं कि ख़ुदा की बन्दगी जब भी की जाये, लाभदायक है, पर रात के पिछले पहर या अमृत वेले की बन्दगी ख़ास तौर से लाभदायक होती है। जो लोग उस समय अपनी लिव अन्दर नाम से जोड़ते हैं, कुल मालिक उन्हें अपनी रहमत से मालामाल कर देता है। इस प्रसंग में डॉ. नज़ीर अहमद ने डॉ. इक़बाल का यह शेयर दिया है:

अफ़लाक से आते हैं, नालों के जवाब आख़िर।
उठते हैं हिजाब आख़िर, करते हैं ख़िताब आख़िर।[39]

'अफ़लाक' फ़लक का बहुवचन है। 'अफ़लाक से' का अर्थ है आसमानों से। 'नालों' का अर्थ है रोने की ऊँची आवाज़ें। 'हिजाब' का अर्थ है परदे।

'ख़िताब' का अर्थ है सम्बोधन करना। यानी जो सारी रात ख़ुदा की याद में रोते हैं उनको अन्त में प्रभु की दरगाह से जवाब भी मिलता है। ख़ुदा सब परदे हटाकर उनसे बातें करता है।

[113]

दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि॥
इकि जागंदे ना लहन्हि इकन्हा सुतिआ देइ उठालि॥

शब्दार्थ: दाती=दातें, बख़्शिश। साहिब संदीआ=साहिब की। किआ चलै तिसु नालि=उस पर कोई ज़ोर नहीं चल सकता।

भावार्थ: गुरु नानक देव जी उपरोक्त श्लोक का भाव स्पष्ट करते हुए फ़रमाते हैं कि रात को जागकर अभ्यास ज़रूर करना चाहिये, पर हमें जो कुछ मिलता है, उस मालिक की रहमत से मिलता है। ख़ुदा अपनी मौज या रज़ा का मालिक है। हम अपनी करनी के बल पर उससे कुछ नहीं ले सकते। हम करनी भी तभी कर सकते हैं, जब उसकी रहमत हो। वह मालिक बेहतर जानता है कि किस जीव को कब रहमत से मालामाल करना है। हो सकता है कि कुछ लोग जागने के बावजूद ख़ाली रह जायें और दूसरों को ख़ुदा ख़ुद जगाकर मालामाल कर दे। ख़ुदा जो भी करता है उसी में जीव की भलाई होती है। ख़ुदा की बन्दगी और ख़ुदा की प्राप्ति पूरी तरह ख़ुदा की मौज, रज़ा या बख़्शिश पर निर्भर है। आपका भाव है कि अपनी तरफ़ से ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश करते हुए भी नम्रता और भरोसे का दामन नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि परमार्थ में सफलता का आदि, मध्य और अन्त ख़ुदा की रज़ा पर निर्भर है।

[114]

ढूढेदीए सुहाग कू तउ तनि काई कोर॥
जिन्हा नाउ सुहागणी तिन्हा झाक न होर॥

शब्दार्थ: कू=को। तउ तनि=तेरे तन में, तुझमें। कोर=कसर, कमी, कमज़ोरी। काई=कोई। झाक=उम्मीद, टेक, सहारा।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ख़बरदार करते हैं कि अपने सुहाग की तलाश में लगी हुई ऐ युवती! अगर तेरा अभी तक अपने सुहाग से मिलाप नहीं हुआ तो

तू समझ ले कि तेरी प्रीति में कोई कमी है तो यह कि तू बाहर से उस प्रीतम की प्रेमिका होने का ढोंग कर रही है, पर तेरे अन्दर असल में कोई और ही आशा या चाहत भरी हुई है। सच्ची सुहागिन वही है, जिसके अन्दर सपने में भी सिवाय प्रीतम के दूसरी कोई चाहत या इच्छा नहीं है। इसलाम और सूफ़ीमत में एक ख़ुदा के प्रेम के सिवाय किसी दूसरे के प्रेम को कुफ़्र, अधर्म या पाप कहा गया है। दूसरे सब सन्तों-महात्माओं ने भी मन को संसार रूपी दूसरे के प्यार में से निकालकर उस एक के प्यार में लीन करने का उपदेश दिया है।

[115]

सबर मंझ कमाण ए सबरु का नीहणो॥
सबर संदा बाणु खालकु खता न करी॥

शब्दार्थ: मंझ=मन में। नीहणो=धनुष की डोरी। संदा=का। खालकु=सृजनहार। खता न करी=ख़ाली नहीं जाने देता।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ने 115वें, 116वें और 117वें श्लोक में सन्तोष और सब्र की उपमा की है। सब्र और सन्तोष को सच्चे दरवेश के जीवन का अटूट अंग मानते हुए कहते हैं कि ऐ साधक, ऐ प्रेमी, तू सन्तोष का धनुष धारण कर और इस पर सन्तोष का ही चिल्ला चढ़ा क्योंकि सन्तोष के तीर को वह मालिक निशाने से चूकने नहीं देता।

[116]

सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेन्हि॥
होनि नजीकि खुदाइ दै भेतु न किसै देनि॥

शब्दार्थ: साबरी=सन्तोष। जालेन्हि=जलाते हैं। नजीकि=नज़दीक।

भावार्थ: बाबा फ़रीद कहते हैं कि प्रभु के सच्चे भक्त हमेशा सब्र और शुक्र की भावना के साथ प्रभु की भक्ति करते हैं। वे कभी अपनी भक्ति का दिखावा नहीं करते। उन्हें प्रभु की चाहे कितनी भी नज़दीकी क्यों न मिल जाये, वे कभी अपनी रूहानी अवस्था का भेद ज़ाहिर नहीं करते। जिसके पास हीरा होता है, वह उसे छिपाकर रखता है, उसकी नुमाइश नहीं करता। जितनी ज़्यादा ख़ुदा की रहमत हज़्म की जाये, उतनी ज़्यादा वह और रहमत करता है।

[117]

सबरु एहु सुआउ जे तूं बंदा दिड़ु करहि॥
वधि थीवहि दरीआउ टुटि न थीवहि वाहड़ा॥

शब्दार्थ: सुआउ=स्वार्थ, अपना लाभ। दिड़ु=दृढ़, पक्का। वधि=बढ़कर। थीवहि=बन जायेगा। टुटि=टूट कर। वाहड़ा=छोटा-सा नाला।

भावार्थ: ऐ अभ्यासी, अगर तू सन्तोष का पल्ला मज़बूती से पकड़ ले तो तुझे यह फ़ायदा होगा कि तेरी भक्ति, जो इस समय एक छोटे-से नाले के समान है, फैलकर सागर का रूप धारण कर लेगी।

[118]

फरीदा दरवेसी गाखड़ी चोपड़ी परीति॥
इकनि किनै चालीऐ दरवेसावी रीति॥

शब्दार्थ: गाखड़ी=कठिन। चोपड़ी=दिखावे की। इकनि किनै चालीऐ=इस प्रकार की रहनी किसी विरले ने अपनाई है। दरवेसावी रीति=दरवेशों की रहनी।

भावार्थ: सच्ची दरवेशी कठिन है। दिखावे की और झूठे प्रेम की दरवेशी से कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। सच्चे दिल से ख़ुदा से इश्क़ करनेवाली सच्ची दरवेशी कोई विरला जीव ही अपना सकता है।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए डॉ. नज़ीर अहमद लिखते हैं कि बाबा फ़रीद के जमाने में ही नहीं सूफ़ीमत के प्रसिद्ध अम्माम ग़ज़ाली (450-505 हिजरी) के समय में भी ऐसे नकली सूफ़ियों की भरमार थी जिनके मन की अवस्था उनके बाहरी भेष के बिलकुल विपरीत थी। अम्माम ग़ज़ाली ने ऐसे तथाकथित सूफ़ियों की सख़्त नुक्ताचीनी की है।[40]

[119]

तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि॥
पैरी थकां सिरि जुलां जे मूं पिरी मिलंन्हि॥

शब्दार्थ: पैरी थकां=पाँवों से चलते हुए थक जाऊँ तो। सिरि जुलां=सिर के बल चलना। मूं=मुझे। पिरी=प्यारा।

भावार्थ: बाबा फ़रीद ने श्लोक नं: 103 में कहा है कि प्रीतम के मिलाप के लिये मैं रेशमी पहरावा छोड़कर फ़क़ीरों या भिखारियों वाला पहरावा धारण करने के लिये तैयार हूँ। यहाँ आप कह रहे हैं कि अगर मेरा प्रीतम इस तरह मिल सकता हो तो मैं अपना शरीर तंदूर की तरह तपाने और हड्डियों को ईंधन की तरह जलाने के लिये तैयार हूँ और यदि मैं प्यारे की तलाश में पैरों से चलते-चलते थक जाऊँ तो सिर के बल चलना शुरू कर दूँगा।

[120]

तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि॥
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि॥

शब्दार्थ: किआ फेड़िआ=क्या बिगाड़ा है। निहालि=देख।

भावार्थ: गुरु अमरदास जी ने श्लोक नं: 104 में फ़रमाया है कि प्रभु से मिलाप करने के लिये पहरावा बदलने की नहीं, वृत्ति बदलने की ज़रूरत है। इस श्लोक में गुरु रामदास जी बाबा फ़रीद के पिछले श्लोक का असल भाव समझाते हैं कि सच्चा प्रेमी प्रीतम की प्राप्ति के लिये हर क़ुर्बानी देने के लिये तैयार रहता है, पर प्रभु रूपी प्रीतम अन्दर बैठा है और उसको पाने के लिये शरीर को हठ-कर्मों द्वारा कष्ट देने की नहीं, ध्यान को बाहर से अन्दर की ओर मोड़ने की ज़रूरत है।

[121]

हउ ढूढेदी सजणा सजणु मैडे नालि॥
नानक अलखु न लखीऐ गुरमुखि देइ दिखालि॥

शब्दार्थ: हउ=मैं। मैडे नालि=मेरे साथ, मेरे अन्दर।

भावार्थ: श्लोक नं: 103, 104, 119 और 120 में प्रकट भाव इस श्लोक में पूर्ण हो जाता है। इस श्लोक में गुरु रामदास जी कहते हैं कि जिस प्रीतम को जीवात्मा बाहर जगह-जगह ढूँढ रही है, वह इसके अपने अन्दर है। अन्दर होने के बावजूद उसे देखा या पहचाना नहीं जा सकता। पर जब जीवात्मा किसी कामिल दरवेश की बख़्शी हुई युक्ति पर चलती है तो उसे अन्दर ही प्रीतम का दीदार हो जाता है।

[122]

हंसा देखि तरंदिआ बगा आइआ चाउ॥
डुबि मुए बग बपुड़े सिरु तलि उपरि पाउ॥

शब्दार्थ: बगा=बगुलों को भी। बपुड़े=बेचारे। सिरु तलि उपरि पाउ=उनके सिर नीचे और पैर ऊपर हो गए।

भावार्थ: हंस यानी गुरुमुखों को भवसागर से पार जाते देखकर बगुले यानी मनमुखों के मन में भी चाह पैदा हुई कि हम भी भवसागर से पार चले जायें। उन्होंने अपने आप पार जाने की कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि वे सिर के बल डूब गए। आपका भाव है कि बिना कामिल मुर्शिद की मदद के कोई भी कभी अपने आप भवसागर से पार नहीं जा सकता।

[123]

मै जाणिआ वड हंसु है तां मै कीता संगु॥
जे जाणा बगु बपुड़ा जनमि न भेड़ी अंगु॥

शब्दार्थ: वड हंसु=बड़ा हंस, परम सन्त। संगु=साथ। जनमि=उम्र भर, कभी भी। न भेड़ी अंगु=उसके साथ अंग का स्पर्श न करना।

भावार्थ: मैंने यह समझकर उसका साथ किया था कि यह कोई परम सन्त या कामिल दरवेश है। यदि मुझे यह पता होता कि वह तो बगुला-भक्त यानी दम्भी सन्त है तो मैं कभी भूलकर भी उसके नज़दीक न जाता। बाबा फ़रीद समझाना चाहते हैं कि मुर्शिद का होना काफ़ी नहीं, मुर्शिद का कामिल होना भी ज़रूरी है। अधूरे मुर्शिद की भूले-भटके भी संगति नहीं करनी चाहिये। गुरु नानक देव जी कहते हैं, 'काचे गुर ते मुकति न हूआ॥'[41] गुरु अमरदास जी कहते हैं:

गुरू जिना का अंधुला सिख भी अंधे करम करेनि॥
ओइ भाणै चलनि आपणै नित झूठो झूठु बोलेनि॥
कुडु कुसतु कमावदे पर निंदा सदा करेनि॥
ओइ आपि डुबे पर निंदका सगले कुल डोबेनि॥[42]

यानी अधूरा गुरु ख़ुद संसार रूपी भवसागर से पार नहीं हो सकता और उसके शिष्य भी ग़लत रास्ते पर चलकर भवसागर में डूब जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी की वाणी है:

सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ॥
तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ॥[43]

आप इशारा कर रहे हैं कि सिर्फ़ ऐसा पूर्ण पुरुष ही कामिल मुर्शिद है जो अपनी आत्मा ख़ुदा में जज़्ब कर चुका हो। सिर्फ़ ऐसे कामिल मुर्शिद की हिदायत के मुताबिक़ ख़ुदा की बन्दगी करनेवाले साधक ही भवसागर को पार करके कुल मालिक से विसाल कर सकते हैं।

[124]

किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि धरे॥
जे तिसु भावै नानका कागहु हंसु करे॥

शब्दार्थ: नदरि=दया-मेहर।

भावार्थ: इस श्लोक में गुरु नानक साहिब समझा रहे हैं कि अपनी ओर से हर जीव हंस (सच्चा गुरुमुख, सच्चा दरवेश या सच्चा भक्त) बनना चाहता है, पर यह उस कुल मालिक के हाथ में है कि किस जीव को कब मनमुख से गुरुमुख बनाना है। जो भी परमार्थी बड़ाई मिलती है, प्रभु की रज़ा और रहमत से मिलती है।

[125]

सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास॥
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस॥

शब्दार्थ: सरवर=संसार रूपी सरोवर। पंखी=पक्षी, जीवात्माएँ। हेकड़ो=अकेला। फाहीवाल=फँसानेवाले, फ़न्दा डालने वाले। लहरी गडु थिआ=लहरों में फँस गया।

भावार्थ: संसार रूपी सरोवर में अकेला निर्बल जीव बुरी तरह काल, मन, माया आदि अनेक विरोधी शक्तियों द्वारा घिरा हुआ है। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आशा-तृष्णा आदि की विकराल लहरों में बुरी तरह

फँसा हुआ है। इस निराशा भरी हालत में जीव अगर आशा कर सकता है तो सिर्फ़ उस रहमानुल-रहीम ख़ुदा की रहमत से। आपका भाव है कि बिना रब की दया-मेहर के निर्बल जीव का ख़ुद विकराल भवसागर को पार कर सकना नामुमकिन है।

[126]

कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु॥
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु॥

शब्दार्थ: मणीआ मंतु=बड़ा मन्त्र। कवणु सु वेसो=वह कौन-सा भेष या पहरावा है। हउ करी=मैं धारण करूँ।

भावार्थ: इस श्लोक में प्रेमिका प्रश्न करती है कि वह कौन-सी भाषा, कौन-से गुण, कौन-सा श्रेष्ठ मन्त्र और कौन-सा भेष है, जिसको धारण करने से मेरा प्रभु रूपी कन्त मेरे वश में आ जाये?

[127]

निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु॥
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु॥

शब्दार्थ: खवणु=सहनशीलता। जिहबा=जिह्वा, मीठी बोली।

भावार्थ: उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देते हुए बाबा फ़रीद कहते हैं कि हे बहनों, वह भाषा नम्रता है, वह गुण सहनशीलता और वह अमूल्य मन्त्र मीठी ज़बान अथवा वाणी की मिठास है और इन तीनों से बना हुआ पहरावा ही वह भेष है जिसे पहनने से परमात्मा रूपी प्रीतम प्रसन्न होता है।

उपरोक्त दोनों श्लोकों में प्रयोग किये गए शब्द 'वेस' से स्पष्ट होता है कि आपने कोई ख़ास पहरावा, भेष, शरीअत या कर्मकाण्ड धारण करने का नहीं, मन में नम्रता, सहनशीलता और मिठास पैदा करने का उपदेश दिया है। शरीअत या कर्मकाण्ड का असल उद्देश्य जीव को परमार्थी गुणों के निर्माण में सहायता देना है। शरीअत को इन गुणों के विकास का साधन बनायें तो शरीअत मुबारक़ है, पर शरीअत को ही सच्चा परमार्थ समझकर बैठ जायें तो

वह मंज़िल पर पहुँचने का ज़रिया बनने की बजाय रास्ते की रुकावट बन जाती है।

उपरोक्त दोनों श्लोकों को आगे के तीन श्लोकों के साथ मिलाकर पढ़ने से पता लगता है कि बाबा फ़रीद जीव को अपनी दृष्टि और रहनी को उस ढंग से ढालने का उपदेश देते है जिससे वह प्रभु का सच्चा भक्त बन सके।

[128]

मति होदी होइ इआणा॥ ताण होदे होइ निताणा॥
अणहोदे आपु वंडाए॥ को ऐसा भगतु सदाए॥

शब्दार्थ: मति=बुद्धि, ज्ञान। ताण=ज़ोर, शक्ति। अणहोदे=जब देने के लिये कुछ भी पास न हो।

भावार्थ: उपरोक्त श्लोक में परमात्मा के भक्त को नम्रता, सहनशीलता और मिठास के गुण धारण करने की प्रेरणा दी गई है। इस श्लोक में आप उसे और गुणों को धारण करने का उपदेश देते हैं। 'को ऐसा भगतु सदाए'— ख़ुदा का सच्चा भक्त वही कहला सकता है जो पूर्ण ज्ञानी होने के बावजूद बालकों की तरह भोला-भाला रहता है, अपार रूहानी शक्ति का मालिक होते हुए भी कभी उस शक्ति का दिखावा नहीं करता और ग़रीबी तथा लाचारी में भी हमेशा दाता ही बना रहता है, भिखारी नहीं बनता।

[129]

इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे॥

शब्दार्थ: न गालाइ=न बोल। धणी=मालिक, साईं, स्वामी। हिआउ=हृदय, दिल। कैही=किसी का भी। ठाहि=ढाह, तोड़। माणक=मोती।

भावार्थ: बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं कि हमेशा याद रख कि वह सच्चा मालिक सबके अन्दर है, किसी से भी कड़वे और रूखे वचन न बोल, किसी का दिल न दुखा। सब लोग और सबके दिल मोतियों और हीरों की तरह अनमोल हैं।

[130]

सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा॥
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥

शब्दार्थ: ठाहणु=गिराना, दुखाना। मूलि=बिलकुल। मचांगवा=अच्छा नहीं। तउ=तुझे। सिक=चाह, तड़प।

भावार्थ: आप पिछले श्लोक के भाव को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि सभी जीवों के मन मोतियों के समान क़ीमती हैं, इसलिये किसी का भी दिल नहीं दुखाना चाहिये। अगर तेरे हृदय में उस प्रीतम से मिलने की तड़प है तो कभी किसी का दिल न दुखा।

उपरोक्त दोनों श्लोकों में आई ये बातें विशेष ध्यान के योग्य हैं:

1. 'जे तउ पिरीआ दी सिक'— अगर तू प्रभु से मिलने की इच्छा रखता है तो याद रख कि 'सभना मै सचा धणी'— वह सच्चा ख़ुदावंद किसी एक मज़हब या धर्म को माननेवाले के अन्दर ही नहीं, हरएक के अन्दर है। वह सिर्फ़ इनसान के अन्दर ही नहीं बल्कि पशुओं, पक्षियों और सारी वनस्पति के अन्दर भी समाया हुआ है।
2. 'माणक सभ अमोलवे' और 'सभना मन माणिक'— सबके मन, सबके हृदय मोतियों की तरह क़ीमती ही नहीं, बल्कि अनमोल हैं। किसी ख़ास धर्म के नहीं, संसार के सभी धर्मों के सब लोग हमारे प्यार के हक़दार हैं, क्योंकि उनके अन्दर वह सच्चा परमात्मा रहता है, जिससे मिलाप की हमारे अन्दर तड़प है।

बाबा फ़रीद मनुष्य और मनुष्य के बीच भ्रातृ-भाव (brotherhood of man) का असल आधार रब के प्रति पितृ-भाव (fatherhood of God) को मानते हैं। जब तक कोई जीव निजी रूहानी अभ्यास द्वारा परमात्मा को पिता-रूप में प्रत्यक्ष नहीं देख लेता, वह संसार के दूसरे जीवों को अपने बहन-भाई नहीं समझ सकता। भ्रातृ-भाव, पितृ-भाव का स्वाभाविक अंग है, पर बिना पितृ-भाव के भ्रातृ-भाव असम्भव है।

जब कोई व्यक्ति अपने अन्दर उस परमात्मा का प्रकाश देख लेता है तो उसको हर इनसान के अन्दर उस एक कर्ता का नूर समाया हुआ नजर आता है। उस हालत में वह न किसी को बुरा समझ सकता है, न बुरा कह सकता है और न ही किसी के साथ बुरा व्यवहार कर सकता है। परमात्मा के सच्चे आशिक़ क़ुदरती तौर पर मानवता के सच्चे प्रेमी, सेवक और हमदर्द बन जाते हैं।

कामिल फ़क़ीर हज़रत मग़रबी कहते हैं कि किसी के दिल को दुखाने से प्रभु कभी ख़ुश नहीं होता, चाहे कोई हज़ारों पूजा, इबादत और तौबा करे, हज़ारों रोज़े रखे और हरएक रोज़े में हज़ार-हज़ार नमाज़ पढ़े और हज़ारों रातें जाग कर उसकी याद में गुज़ार दे। यह सबकुछ ख़ुदा को मंज़ूर नहीं अगर वह एक दिल को भी दुखाता है।*

ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं कि शराब पीना, क़ुरान शरीफ़ को जलाना, काअबे को आग लगाना घोर पाप हैं। पर इनसान का दिल दुखाना ऐसा गुनाहे-अज़ीम है, जिसके लिये कभी माफ़ी नहीं मिलती।†

इश्क़े-ख़ुदा तथा ख़िदमते-ख़ुदा संसार के सब कामिल दरवेशों, सन्तों-महात्माओं और वली-पैग़म्बरों के उपदेश का दो हर्फ़ी सार है। 'फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि॥'[46] सब पूर्ण सन्त-महात्मा इनसान को ख़ुदा की ख़लकत से प्यार करने और ख़लकत की सेवा को ख़ुदा की सेवा समझने का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं कि ख़लकत में ख़ालिक का ही नूर समाया हुआ है इसलिये तुम ख़ालिक द्वारा पैदा की ख़लकत की सेवा को ख़ालिक की ही सेवा समझो।

---

* हज़ार ज़ोहदो-इबादत हज़ार हस्तग़फ़ार,
हज़ार रोज़ा-ओ हर रोज़ा रा नमाज़ हज़ार।
हज़ार ताअते-शबहा हज़ार बेदारी,
क़बूल नीस्त अगर ख़ातिरे ब्याज़ारी।[44]

† मै ख़ुरो मसहफ़ बसज़ो आतश अन्दर काबा ज़न।
हर चिह ख़्वाही कुन वलेकन मरदुम आज़ारी मुकन।[45]

[1]

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥
तिन धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तूं॥
जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥[47]

शब्दार्थ: दिलहु मुहबति जिंन्ह=जिन्हें दिल से मुहब्बत है। सचिआ=सच्चे आशिक़। कांढे=कहे जाते हैं। कचिआ=कच्ची प्रीति वाले। रते=रँगे हुए। दरि दरवेस से=वे परमात्मा के द्वार के सच्चे दरवेश हैं। जणेदी=जन्म देनेवाली। माउ=माँ। परवदगार=पालन करने वाला। मूं=मैं। पनह=शरण। बखसंदगी=बख़्शनेवाला ख़ुदा। फरीदै=फ़रीद को।

भावार्थ: जो सच्चे दिल से ख़ुदा के इश्क़ के रंग में रँगे हुए हैं, वही सच्चे आशिक़, भक्त या दरवेश हैं। जो बाहर से दरवेशी का दावा करते हैं, पर अन्दर से दुनियादार हैं, वे कच्चे आशिक़ कहलाते हैं।

जिनके अन्दर ख़ुदा के दीदार के अलावा कोई दूसरी इच्छा नहीं, वे ही सच्चे आशिक़ हैं। जिन्होंने ख़ुदा का नाम भुला दिया है, वे धरती पर बोझ हैं।

जिनको ख़ुदा ख़ुद अपने साथ मिला लेता है, वही उसके दर के सच्चे दरवेश हैं। वह माता जिसने उनको जन्म दिया है, धन्य है और उनका संसार में आना भी धन्य है।

हे प्रभु, तू सबका पालनहार है, तू अगम, अपार, अनन्त, अथाह है। तू सदा स्थिर रहनेवाला सच है। जो तुझे पहचान लेते हैं, मैं उनके पैर चूमता हूँ।

ऐ ख़ुदा, मैं तेरी पनाह (शरण) में आ गया हूँ। तू बख़्शिन्द है, गुनहगारों को बख़्शनेवाला है, ऐ रब मुझे भी बख़्श दे। मैं तेरे दर का भिखारी हूँ। तू दया-मेहर करके मुझे अपनी बन्दगी की भीख दे दे।

[2]

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥
आजु मिलावा सेख फरीद॥
टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥
जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईऐ॥
झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ॥
बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ॥
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥
छैल लंघंदे पारि गोरी मनु धीरिआ॥
कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ॥
सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ॥
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ॥
कतिक कूंजां चेति डउ सावणि बिजुलीआं॥
सीआले सोहंदीआं पिर गलि बाहड़ीआं॥
चले चलणहार विचारा लेइ मनो॥
गंढेदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो॥
जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किंनि गए॥
जालण गोरां नालि उलामे जीअ सहे॥[48]

शब्दार्थ: होसी=हो जायेगा। गोर=क़ब्र। आजु=आज, इस जन्म में, टाकिम=रोककर रख। कूंजड़ीआ=इन्द्रियाँ। मनहु मचिंदड़ीआ=मन को चंचल करनेवाली। जे जाणा=जब यह पता है। घुमि=मुड़कर। वञाईऐ=ख़्वार न करे। वाट=रास्ता। मुरीदा=मुरीद। जोलीऐ=चलना चाहिये। छैल=बांके जवान, सन्तजन। गोरी मनु धीरिआ=सुन्दर स्त्री का मन धैर्य धारण करता है। कंचन वंने पासे=कंचन का अर्थ है सोना, जो धन-दौलत की ओर लगे रहे। कलवति चीरिआ=आरे से चीरे गए। आसणि=स्थान। बैसि गइआ=बैठकर चले गए। चेति=चैत्र के महीने में। डउ=जंगल की आग। सावणि=सावन के महीने में। सोहंदीआं=सुन्दर लगती है। पिर गलि बाहड़ीआं=पति के गले लिपटी बांहे। छिअ माह=छः महीने। हिकु खिनो=एक पल। खेवट=मल्लाह। किंनि=कितने। जालण गोरां नालि=क़ब्रों में दुःख सहते हैं।

भावार्थ: आप प्रेरित करते हैं कि मेरे प्यारो, मनुष्य-जन्म का फ़ायदा उठाओ और अपनी लिव प्रभु से जोड़ लो। शरीर ने क़ब्र में समाकर मिट्टी का ढेर बन जाना है। इससे पहले अपना कार्य पूरा कर लो।

प्रभु से मिलना मुश्किल नहीं। तुम आज और अभी उससे मिलाप कर सकते हो, अगर मन को विषयों-विकारों के द्वारा चंचल करनेवाली इन्द्रियों को वश में कर लो। आपका भाव है कि आत्मा और परमात्मा के मिलाप में असल रुकावट मन और इन्द्रियों की है। गुरु नानक देव जी कहते हैं, 'मनि जीतै जगु जीतु॥'[49]

जब हम अच्छी तरह जानते हैं कि मौत यकीनी है और मौत के बाद फिर मनुष्य जन्म प्राप्त होने का कोई भरोसा नहीं तो हमें चाहिये कि इस नाशवान संसार के मोह में फँसकर कुमार्ग पर न चलें।

हमें नाशवान पदार्थों के मोह और झूठ के मार्ग को त्याग देना चाहिये। प्रभु रूपी रत्न से लिव लगाकर सत्य को अपनाने की कोशिश करनी चाहिये। यही सच्चा धर्म है, जिसका हरएक को पालन करना चाहिये। इस धर्म का पालन करने की युक्ति मुर्शिद बताता है, मुर्शिद द्वारा बताये गए मार्ग पर चलकर सत्य की मंज़िल को पाने की कोशिश करनी चाहिये।

बाबा फ़रीद उपरोक्त पंक्तियों में कह चुके हैं कि जो वाट या मार्ग मुर्शिद बताता है, मुरीदों को उस पर चलना चाहिये। अब आप फ़रमा रहे हैं कि जो अलबेले और साहसी साधक मुर्शिद पर भरोसा रखकर उसके बताये हुए मार्ग पर चलना शुरू कर देते हैं, वे सहज ही भवसागर से पार हो जाते हैं। उनको देखकर कई निर्बल और कमज़ोर दिल आत्माओं (गोरी) को भी हौसला हो जाता है और वे भी मुर्शिद के बताये हुए मार्ग पर चलकर परमार्थ में सफलता हासिल कर लेती हैं। इसके विपरीत जिनका ध्यान सोने (कंचन) की तरफ़ यानी संसार की ऐशो-इशरत, धन-दौलत और मान-बड़ाई में खचित रहता हैं, उन्हें मौत के बाद आरे से चीरा जाता है भाव उनको नरकों के दुःख सहने पड़ते हैं।

'जगि न कोई थिरु रहिआ'— संसार में न कोई सदा रहा है, न रह ही सकता है। हमसे पहले अनेक लोग यहाँ से जा चुके हैं और हमें भी एक दिन चले जाना है। जिस आसन पर हम बैठे हैं, उस पर कितने ही लोग बैठ चुके हैं।

संसार समय के चक्र से बँधा आगे चलता जा रहा है। कार्तिक के महीने में कूंजें दिखाई देती हैं, चैत्र में जंगलों में आग भड़क उठती है*, सावन के महीने में बिजली चमकती है और शरद ऋतु में स्त्री अपने पति का संग ढूँढती है। जिस तरह परिवर्तन का सिलसिला चलता जा रहा है, उसी तरह जीवन और मौत का चक्र चल रहा है। जो आये हैं, उन्हें सदा नहीं रहना है। जो बना है टूटेगा, जो आया है एक दिन चला जायेगा। आश्चर्य तो इस बात का है कि वस्तु के बनने में तो बहुत समय लगता है, पर पल-भर में उसका नाश हो जाता है।

धरती आकाश से पूछती है कि अपनी बड़ाई की डींग मारने वाले और दूसरों को पार ले जाने का दावा करनेवाले खेवट (मल्लाह) कहाँ गये? आकाश उत्तर देता है कि वे क़ब्रों में समा गये हैं और उनकी आत्माएँ संसार में किये हुए कर्मों के फल भोग रही हैं।

[3]

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ॥ बावलि होई सो सहु लोरउ॥
तै सहि मन महि कीआ रोसु॥ मुझु अवगन सह नाही दोसु॥
तै साहिब की मै सार न जानी॥ जोबनु खोइ पाछै पछुतानी॥
काली कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥
पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए॥ जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए॥
विधण खूही मुंध इकेली॥ ना को साथी ना को बेली॥
करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥
वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥
उसु ऊपरि है मारगु मेरा॥ सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा॥[51]

शब्दार्थ: तपि तपि=दु:खी होकर, जलती हुई। लुहि लुहि=तड़पती हुई। हाथ मरोरउ=हाथ मलती हूँ, पछताती हूँ। बावलि होई=बावरी हुई। लोरउ=ढूँढ रही हूँ।

* डॉ. नज़ीर अहमद ने 'चेति डउ' का यह अर्थ किया है कि चैत्र के महीने में जंगल में फूलों की इतनी भरमार होती है कि फूल आग की तरह दहकते प्रतीत होते हैं।[50]

सहि=पति के। हउ=मैं। जाली=जली हुई। पिरहि बिहून=प्रीतम से बिछुड़ी हुई। कतहि=कैसे। विधण खूही=वीरान, डरावना कुआँ। मुंध=स्त्री। बेली=साथी, मित्र, सहायक। वाट=सफ़र। खरी उडीणी=बहुत कठिन, परेशानी भरा। खंनिअहु तिखी= खण्डे की धार से तेज़ है। बहुतु पिईणी=बहुत तेज़ धार वाली। सम्हारि=सँभाल। सवेरा=प्रात:काल, जल्दी।

भावार्थ: जीवात्मा रूपी स्त्री कहती है कि मैं अपने प्रीतम के विरह में जलती, तड़पती, बावरी हुई, उसकी तलाश कर रही हूँ। वह कहती है कि हे मेरे प्रिय, तू मुझसे नाराज़ हो गया है। यह मेरे ही अवगुणों का नतीजा है, इसमें तेरा कोई दोष नहीं है। मेरे साहिब, मैं तेरी महिमा को न जान पाई और मैंने तेरी परवाह न की। मैंने अपने यौवन के उत्तम समय को झूठी दुनिया के झूठे मोह में व्यर्थ गँवा दिया। फलस्वरूप अब मुझे अपनी मूर्खता पर पछताना पड़ रहा है।

आत्मा रूपी कोयल से पूछा जाये कि तू काली क्यों है तो वह कहेगी कि मैं अपने प्रीतम के वियोग की तपन से काली हो गई हूँ। यह बात है भी सच। सचमुच ही अपने प्रीतम से बिछुड़ी हुई किसी स्त्री को चैन कैसे आ सकता है? वह सुखी कैसे हो सकती है? वह प्रीतम उस पर दया करके, उसे अपने साथ मिला ले तब ही उसे अपने प्रीतम के मिलाप का सुख प्राप्त हो सकता है। जीवात्मा रूपी स्त्री संसार रूपी डरावने कुएँ में गिरी हुई है। उसका कोई सहायक, साथी, हमदर्द नहीं है, जो उसे इस कुएँ में से निकाल सके। जब प्रभु ने कृपा करके उसे साधु की संगति बख़्श दी तो वह क्या देखती है कि वह प्रभु उसका मित्र बन गया है।

प्रीतम के देश जाने का रास्ता लम्बा और कठिन है। यह तलवार की धार से भी तीखा और बारीक है। जीवात्मा को जीवन के अन्त में इस कठिन रास्ते पर से गुज़र कर जाना पड़ेगा। बाबा फ़रीद जीवात्मा से कहते हैं कि ऐसे बेहद मुश्किल रास्ते को तय करने के लिये जल्दी से जल्दी सफ़र शुरू कर देना चाहिये।

[4]

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला॥
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला॥
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला॥
इक आपीन्है पतली सह केरे बोला॥
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला॥
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाइसी॥
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी॥[52]

शब्दार्थ: बेड़ा बंधि न सकिओ=बेड़ा तैयार न किया। बंधन की वेला=जब तैयार करने का समय था। भरि सरवरु जब ऊछलै=जब समुद्र में तूफ़ान आ गया। तब तरणु दुहेला=फिर बेड़े का पार जाना कठिन हो जायेगा। हथु न लाइ कसुंभड़ै=माया रूप कसुंभड़े को हाथ न लगाना। जल जासी ढोला=प्यारे, तेरे हाथ जल जायेंगे। आपीन्है=वह। पतली=दोष वाली। सह केरे बोला=उसका पति उसके साथ कैसे बात करे। दुधा थणी न आवई=जिस प्रकार दोहा हुआ दूध दोबारा थनों में नहीं जा सकता, इसी तरह मनुष्य जन्म दोबारा नहीं मिलेगा। सहु अलाइसी=वह पति आवाज़ देगा, बुलायेगा। हंसु=जीवात्मा। डुंमणा=दुचित्ती में। अहि तनु ढेरी थीसी=यह शरीर मिट्टी का ढेर बन जायेगा।

भावार्थ: इस शब्द के भावार्थ इस पंक्ति से शुरू करने चाहिये, 'हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला।' आप उपदेश देते हैं कि ऐ प्यारी जीवात्मा, तू माया रूपी कसुंभड़े में खचित मत हो, इससे तेरे हाथ जल जायेंगे। कसुंभड़े के फूल देखने में सुन्दर लगते हैं, पर वे जल्दी ही मुरझा जाते हैं। उनका रंग कच्चा होता है और कंसुभड़े के बारीक काँटे हाथों में चुभ जाते हैं, जिनसे बहुत देर तक हाथों में जलन होती रहती है, जिसे आप 'जलि जासी ढोला' कह रहे हैं।

बाबा फ़रीद समझा रहे हैं कि ऐ प्यारी जीवात्मा, तू माया रूपी कसुंभड़े पर मोहित होने की बजाय प्रभु की भक्ति और नाम का बेड़ा बाँध ले। जब बुढ़ापे और मौत की बाढ़ आ जायेगी तो उस समय बेड़ा बाँधना असम्भव हो जायेगा। अगर बेड़ा बाँधकर समय पर पार नहीं जायेगी तो उस प्रीतम से कैसे मिल सकेगी?

बाबा फ़रीद जीवात्मा रूपी स्त्री को सावधान करते हैं कि अगर तू माया की उपाधियों के कारण पतली, कमज़ोर, गुणहीन रहेगी तो तेरा पति से मिलाप नहीं हो सकेगा और तेरा यौवन और जीवन व्यर्थ चला जायेगा। गुरु नानक साहिब की वाणी है:

सीगार मिठ रस भोग भोजन सभु झूठु कितै न लेखए॥
मै मत जोबनि गरबि गाली दुधा थणी न आवए॥[53]

भाव है कि यौवन और हार-शृंगार का अहंकार तथा माया के सभी भोग झूठे हैं। जब तक आत्मा का परमात्मा से मिलाप नहीं होता वह सच्ची सुहागिन नहीं कहला सकती और इस कार्य के लिये मिला मनुष्य जन्म का सुनहरी अवसर बार-बार नसीब नहीं होता।

बाबा फ़रीद उपदेश देते हैं कि हे प्यारी जीवात्मा, अन्त में प्रभु रूपी दूल्हा आत्मा रूपी दुल्हन को बुलावा भेज देगा। अगर तू माया में फँसी रही, नाम की कमाई द्वारा आक़बत का तोशा तैयार न किया तो अन्त समय आत्मा रूपी हंस दुविधा में पड़ जायेगा। आत्मा संसार से जाना नहीं चाहेगी, पर यहाँ रह भी नहीं सकेगी। उस समय यह पछतायेगी कि मैंने समय पर माया से मुँह मोड़कर प्रभु के प्रेम और नाम की कमाई द्वारा प्रभु रूपी पति से मिलाप क्यों न कर लिया। उस समय इस पश्चाताप का कोई लाभ नहीं होगा। बाबा फ़रीद ख़बरदार कर रहे हैं कि अन्त समय साथ जानेवाली एकमात्र चीज़ ख़ुदा का इश्क़ और ख़ुदा की बन्दगी है। जो लोग समय पर ये दौलत इकट्ठी नहीं करते, उनको अन्त समय पछताना पड़ता है।

काव्य-कला

काव्य-कला

यद्यपि इस पुस्तक का उद्देश्य बाबा फ़रीद के कलाम का साहित्यिक अध्ययन नहीं है, फिर भी बाबा फ़रीद की वाणी का साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन करने वाले पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ आपके कलाम के साहित्यिक पहलुओं के बारे में भी संक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

आवेशमय कलाम

बाबा फ़रीद जैसे कामिल दरवेश कलाम लिखते नहीं हैं, कलाम उनके अन्तर से सहज रूप से प्रस्फुटित होता है। गुरु नानक साहिब कहते हैं, 'जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो॥'[1] आप कहते हैं, 'हउ आपहु बोल न जाणदा मै कहिआ सभु हुकमाउ जीउ॥'[2] पूर्ण सन्त या वली अल्लाह आवेश की अवस्था में जिस वाणी का सहज रूप में उच्चारण करते हैं, उनके सेवक प्रेमपूर्वक वह वाणी लिख लेते हैं। इस वाणी में बनावट या सायास काव्य-लेखन की प्रवृत्ति नहीं होती, बल्कि यह स्वतः स्फूर्त तथा सहज अनुभवों से जन्म लेती है। सूफ़ी दरवेश इसे 'वही का नाज़ल होना' कहते हैं।

संसार के सभी पूर्ण सन्तों की तरह बाबा फ़रीद का कलाम भी आवेशमय है। आपकी लिव अन्तर में उस दयालु प्रभु से जुड़ी हुई थी, इसलिये आपकी वाणी अन्तर में प्राप्त प्रेरणा और आदेश पर आधारित है। वाणी के सृजन के पीछे आपका मुख्य उद्देश्य लोगों की भलाई था। इसलिये आपने अपनी वाणी में स्थान-स्थान पर लोगों को अज्ञानता के अन्धकार से निकलकर निर्मल ज्ञान के प्रकाश में आने का सन्देश दिया।

आज हम सन्तों-महात्माओं के कलाम को कला की दृष्टि से परखने के आदी हो गये हैं, लेकिन बाबा फ़रीद जैसे सन्तों-महात्माओं द्वारा रचित वाणी का वास्तविक उद्देश्य कला का दिखावा करना नहीं होता। सन्त-महात्मा कठोर

परिश्रम के बाद ऊँची रूहानी अवस्था प्राप्त करते हैं। वे निस्वार्थ उपकार के भाव से अपने रूहानी अनुभव अपने कलाम के माध्यम से बयान कर देते हैं, ताकि दूसरे लोग भी इनसे लाभ उठा सकें। बाबा फ़रीद जैसे महापुरुष अपनी वाणी में उन मुश्किलों और रुकावटों का हाल बयान करते हैं, जिनका उन्हें अपनी रूहानी साधना के दौरान सामना करना पड़ा। साथ ही आप उन युक्तियों और साधनों की ओर भी इशारा करते हैं, जिनकी सहायता से वह राह की रुकावटों को पार करके मंज़िल तक पहुँचने में कामयाब हुए।

साहित्यकार अपनी रचनाओं का बार-बार संशोधन करते हैं। कामिल दरवेश जिस वाणी का उच्चारण करते हैं, वह स्वाभाविक रूप से पूर्ण होती है। पंजाबी के प्रसिद्ध कवि प्रो. पूर्ण सिंह, जो स्वयं रूहानी मार्ग के यात्री थे, कहते हैं कि पूर्व में केवल साध-वचनों को ही सच्ची कविता या ऊँचा साहित्य माना जाता है। बाक़ी जो कुछ है, सिर्फ़ वाक्य-रचना है।* आपका भाव है कि सन्तों-महात्माओं के वचन सहज ज्ञान पर आधारित होते हैं और उनका हर वचन दैवी वाणी का दर्जा रखता है। सन्तों के वचन उनके दिव्य और अनुपम सन्देश को लोगों तक पहुँचाने का साधन होते हैं। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'वाणी उचरहि साध जन अमिउ चलहि झरणे॥'[4] आप इशारा कर रहे हैं कि सन्तों की वाणी में झरने जैसा स्वाभाविक प्रवाह होता है। यह वाणी अमृत का अथाह भण्डार होती है। प्राचीन ग्रन्थों में साहित्य के लिये सत्यं, शिवं, सुन्दरं का जो आदर्श क़ायम किया गया है, सन्तों-महात्माओं की वाणी उस आदर्श पर खरी उतरती है। भाव यह है कि बाबा फ़रीद जैसे पूर्ण सन्तों की वाणी जितनी ज्ञानदायक होती है, उतनी ही आनन्दायक और कल्याणकारी भी।

उपदेशात्मक कलाम

बाबा फ़रीद के कलाम के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यह कलाम आवेशमय होने के साथ-साथ उपदेशात्मक भी है। आप जन-साधारण को एक निश्चित सन्देश देना चाहते हैं। आपके कलाम में अनेक चेतावनियाँ और नसीहतें शामिल हैं। आपका कलाम पाठकों को प्रेरणा देकर उन्हें एक ख़ास दिशा की

* विस्तार के लिये देखें, ख़ुले लेख, 'कविता', लाहौर बुक शाप, लुधियाना, 1971।[3]

ओर ले जाना चाहता है। आपका कलाम जीव की वर्तमान दशा का भी उल्लेख करता है, जिस जगत और वातावरण में वह रह रहा है, उसकी असलियत को भी उजागर करता है तथा उस साधन और मार्ग पर भी प्रकाश डालता है, जिस द्वारा जीव अपने जीवन के मुख्य उपदेश की प्राप्ति में सफल हो सकता है। बाबा फ़रीद के कलाम में से लिये गए निम्नलिखित प्रसंगों से साफ़ प्रकट होता है कि आपका कलाम उपदेशात्मक तथा प्रेरणात्मक है:

1. बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥
   इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥[5]
2. बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ॥
   जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥[6]
3. फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख॥
   आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु॥[7]
4. फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि॥
   आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि॥[8]
5. फरीदा थीउ पवाही दभु॥ जे सांई लोड़हि सभु॥
   इकु छिजहि बिआ लताड़ीअहि॥
   तां साई दै दरि वाड़ीअहि॥[9]
6. फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि॥
   वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि॥[10]
7. रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ॥
   फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ॥[11]
8. फरीदा सोई सरवरु ढूढि लहु जिथहु लभी वथु॥
   छपड़ि ढूढै किआ होवै चिकड़ि डुबै हथु॥[12]
9. फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि॥
   मतु सरमिंदा थीवही सांई दै दरबारि॥[13]
10. फरीदा बे निवाजा कुतिआ एह न भली रीति॥
    कबही चलि न आइआ पंजे वखत मसीति॥[14]

11. फरीदा मनु मैदानु करि टोए टिबे लाहि॥
अगै मूलि न आवसी दोजक संदी भाहि॥[15]

12. फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥[16]

13. फरीदा महल निसखण रहि गए वासा आइआ तलि॥
गोरां से निमाणीआ बहसनि रूहां मलि॥
आखीं सेखा बंदगी चलणु अजु कि कलि॥[17]

14. निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु॥
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु॥[18]

15. इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे॥[19]

विषय

दूसरे सन्तों-महात्माओं की तरह बाबा फ़रीद ने भी लौकिक विषयों पर लिखने की बजाय पारलौकिक यानी परमार्थी विषयों को चुना। लौकिक साहित्य में व्यक्ति की विशेष देश और काल से सम्बन्धित विशेष पारिवारिक, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि समस्याओं का उल्लेख और इन समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाता है। जबकि परमार्थी साहित्य में संसार की वास्तविकता, मनुष्य-जन्म के उद्देश्य, आत्मा और परमात्मा के आपसी रिश्ते तथा उस साधन और मार्ग के बारे में बताया जाता है, जिस पर चलकर प्रत्येक जीव चाहे वह किसी भी समय और स्थान में क्यों न हो, परमात्मा से मिलाप करके पूर्ण और शाश्वत आनन्द प्राप्त कर सकता है। इस तरह सन्तों-महात्माओं के कलाम के विषय सामयिक और बदलने वाले नहीं, बल्कि सदीवी और कभी न बदलने वाले होते हैं।

बाबा फ़रीद ने अपने कलाम में मुख्य तौर पर ख़ुदा, उसकी मुहब्बत या भक्ति; मनुष्य जन्म के मूल उद्देश्य; संसार की नश्वरता; मौत की अटलता, व्यापकता और भयानकता; कर्म और फल के नियम, ख़ुदा; मुर्शिद और नाम के प्रेम आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। इसके साथ ही आपने अपने कलाम में बुढ़ापे के दुःखों, विरह की पीड़ा, ख़ुदा की रहमत, परमेश्वर की शरण, सच्चे

दरवेश के गुण आदि बहुत-से विषयों का भी विवेचन किया है। आप इनसान को संसार की वास्तविकता समझाने का प्रयत्न करते हैं और ऐसी जीवन-युक्ति अपनाने की प्रेरणा देते हैं, जिससे वह सच्चा प्रभु-भक्त बन कर उससे मिलाप करने में कामयाब हो जाये।

भाषा

जैसे निर्गुणधारा के सन्तों ने संस्कृत के स्थान पर साध-भाषा को अपनाया, उसी तरह बाबा फ़रीद ने अरबी, फ़ारसी के स्थान पर साध-भाषा मिश्रित पंजाबी को अपना सन्देश लोगों तक पहुँचाने का माध्यम बनाया और वह भी निर्गुणवादी सन्तों से बहुत पहले। इस दृष्टि से आप एक महान पथ-प्रदर्शक हैं। आम लोगों को उनकी अपनी भाषा में परमार्थी उपदेश देनेवाले महापुरुषों में आपको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। भाषा की दृष्टि से आपका यह शब्द देखते हैं:

दिलहु मुहबति जिन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥
तिनु धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तू॥
जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥[20]

इस शब्द में दिल, मुहब्बत, इश्क़, ख़ुदाई, रंग, दीदार, दर, दरवेश, पनह, परवरदिगार, बख़्शंदगी, शेख़, ख़ैर आदि शब्द फ़ारसी भाषा से हैं, तो अपार, अगम, बेअन्त शब्द संस्कृत से हैं। पर ये सब शब्द इस तरह पंजाबी भाषा में घुल-मिल गए हैं कि इस भाषा का ही स्वाभाविक अंग प्रतीत होते हैं। बाबा फ़रीद द्वारा प्रयोग की गई भाषा की यह सबसे बड़ी विशेषता है।

एक तरफ़ बाबा फ़रीद ने मलक, मलकुल-मौत, सुलतान, उज़ू ,फ़रिश्ता, अक़्ल, लतीफ़, शेख़, मशायख़, हयाती, दरवेश, दरगाह, दर, बन्दगी, दोज़ख़,

सुबह, मसीत, रज़ा, सब्र आदि इस्लामी पृष्ठभूमि वाले फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर चार पहर, आसन, युग, मन, मुख, नाउ (नाम), कंचन, करवत, काग, हंस, गुण, मन्त्र (मन्त), पंथ, चित्त आदि अनेक ऐसे शब्द इस्तेमाल किये जिनका सम्बन्ध भारत की धार्मिक पृष्ठभूमि से है। इनमें मन, चित्त, सच, धर्म, युग (जुग), मन्त्र, पंथ, नाउ, गुर, किरपा, साध-संग, आसन आदि शब्द विशेष तौर पर ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि ये सब संकल्पवाचक और पारिभाषिक श्रेणी से सम्बन्धित हैं। इससे पता चलता है कि बाबा फ़रीद एक ऐसी सांझी भाषा का निर्माण कर रहे थे जो हिन्दुओं और मुसलमानों को एक सांझा रूहानी उपदेश भी दे सके और दोनों के अतीत, वर्तमान तथा लोक-अवचेतन से भी पूरी तरह जुड़ी हुई हो।

बाबा फ़रीद ने सुहागिन, दुहागिन, ससुराल, मायका, साहे, गंढचितावा (पीडी पाईं गंढि), वहुटी (दुल्हन) आदि अनेक ऐसे शब्द तथा वाक्यांश इस्तेमाल किये, जो भारतीय लोक संस्कृति का अटूट अंग बन चुके थे। इसके साथ ही आपने फ़रिश्ता को फरेसता, वक़्त को वखत, मसजिद को मसीत, नमाज़ को निवाज, हयात को हयाती, पुलेसिरात को पुरसलात, वुज़ू को उज़ू तद्भव रूप में इस्तेमाल किया ताकि लोगों को ये शब्द समझने और अपनाने में कठिनाई महसूस न हो। भाषा पर विचार की दृष्टि से आपका निम्नलिखित शब्द लेते हैं:

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ॥ बावलि होइ सो सहु लोरउ॥
तै सहि मन महि कीआ रोसु॥ मुझु अवगन सह नाही दोसु॥
तै साहिब की मै सार न जानी॥ जोबनु खोइ पाछै पछुतानी॥
काली कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥
पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए॥ जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए॥
विधण खूही मुंध इकेली॥ ना को साथी ना को बेली॥
करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥
वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥
उसु ऊपरि है मारगु मेरा॥ सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा॥[21]

उपरोक्त शब्द में हाथ मरोरउ, सो सहु लोरउ, कीआ रोसु, नाही दोसु, सार न जानी, पाछै पछुतानी, कित गुन काली, प्रीतम के हउ बिरहै जाली, पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए, जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए आदि सब वर्णन खड़ी

बोली या हिन्दी के बहुत क़रीब हैं। ये नामदेव, कबीर, गुरु रविदास, गुरु नानक, गुरु तेग़ बहादुर आदि निर्गुणधारा के सन्तों द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा से इस हद तक मिलते हैं कि यदि शब्द के अन्त में इनमें से किसी भी सन्त का नाम दे दिया जाये तो यह पहचान सकना मुश्किल होगा कि शब्द उस सन्त का है या बाबा फ़रीद का। उपरोक्त शब्द में इस्तेमाल किये गए शब्द बावलि, सहु, मन, रोसु, दोसु, गुण, प्रीतम, सुखु, क्रिपालु, प्रभू, किरपा, साधसंगि, मारगु, पंथु, सवेरा विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। साहिब और अलहु को छोड़कर सारी शब्दावली भारतीय स्रोतों से है और उच्चारण पूरी तरह निर्गुणवादी सन्तों द्वारा अपनाई गई भाषा के अनुरूप है। न बाबा फ़रीद के विचारों में किसी प्रकार की कट्टरता और तंगदिली दिखाई देती है और न ही भाषा और वर्णन।

सर्वसांझा कलाम

बाबा फ़रीद का कलाम किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय को नहीं, बल्कि पूरी मानवता को सरल माध्यम द्वारा प्रभु के प्रेम और मानवता के प्रेम का मनोरम सन्देश देता है। बाबा फ़रीद ने कबीर, रविदास और गुरु नानक आदि सन्तों से लगभग तीन सौ साल पहले अपनी बात इस ढंग से और ऐसी भाषा में कही, जो उत्तरी भारत के एक विस्तृत भाग में आसानी से समझी जा सकती थी और जिसने बाद में आनेवाले सूफ़ियों और निर्गुणवादी सन्तों के लिये रास्ता तैयार किया। इससे पहले केवल संस्कृत और अरबी, फ़ारसी आदि सनातनी भाषाओं को रूहानी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति के लिये इस्तेमाल किया जाता था। बाबा फ़रीद ने भाषा का ऐसा सुन्दर प्रयोग किया जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि पंजाबी भाषा संसार के सर्वोत्तम रूहानी उपदेश को भली-भाँति प्रकट करने का सामर्थ्य रखती है।

शब्दों का प्रयोग और निर्माण

बाबा फ़रीद शब्दों का प्रयोग ही नहीं करते, शब्दों का निर्माण भी करते हैं। आपकी काव्य-कला में उस सुन्दर और प्रवीण शब्द टकसाल के दर्शन होते है, जिसमें शब्दों को नये रूपों और अर्थों में घड़ा जाता है। 'फरीदा अखी देखि पतीणीआं सुणि सुणि रीणे कंन॥'[22] में 'पतीणे' और 'रीणे' का बिलकुल नये अर्थों में प्रयोग किया गया है। अक्ख से 'अक्खीं' बहुवचन बनाया गया है। यह

युक्ति गल्ल से 'गालीं', रात से 'रातीं' आदि शब्दों के निर्माण में भी प्रयोग की गई दिखाई देती है। आप कहते हैं, 'फरीदा कालीं जिनी न राविआ धउली रावै कोइ॥'[23] यहाँ कालीं और धउली बहुवचन हैं और इनका सही उच्चारण कालीं और धउलीं है। आपका भाव है कि यदि काले बाल होते हुए प्रभु की भक्ति न की जाये, तो सफ़ेद बाल हो जाने पर भक्ति करना कठिन है। यहाँ पर काली को कालीं और धउली को धउलीं बनाया गया है और फिर इन शब्दों को जवानी और बुढ़ापे की अवस्था का सूचक बना दिया गया है।

बाबा फ़रीद लिखते हैं, 'फरीदा सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं॥'[24] यहाँ 'पलिआ' शब्द को बालों के सफ़ेद होने के अर्थ में इस्तेमाल किया गया है। आप कहते हैं, 'साख पकंदी आईआ होर करेंदी वंन॥'[25] यहाँ 'पकंदी' शब्द को शाख़ के पकने के अर्थ में प्रयोग किया गया है। यह बिलकुल नया प्रयोग है। आप एक अन्य प्रसंग में कहते हैं, 'फरीदा जे मै होदा वारिआ मिता आइड़िआं॥'[26] वारिआ का साधारण अर्थ होता है क़ुर्बान होना, परन्तु यहाँ इसे 'क़ुर्बान न होने' के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

बाबा फ़रीद एक प्रसंग में कहते हैं, 'फरीदा जो सजण भुइ भारु थे से किउ आवहि अजु॥'[27] यहाँ पर ज़मीन पर चलने वाले व्यक्ति को 'भुइ भारु थे' कहकर बयान किया गया है, जो कि बिलकुल नया प्रयोग है। एक अन्य प्रसंग में आप कहते हैं, 'फरीदा भनीं घड़ी संवनवी टूटी नागर लजु॥'[28] यहाँ पर 'वन' को 'वनवी' और फिर 'संवनवी' यानी सुन्दर रंग वाली बना दिया गया है। यह शब्द की अनुपम घड़त है और पंजाबी भाषा के स्वभाव के पूरी तरह अनुकूल भी है। शब्द-रचना के ऐसे बहुत-से प्रमाण आपकी वाणी में मिलते हैं। आपका एक श्लोक है:

चबण चलण रतंन से सुणीअर बहि गए॥
हेड़े मुती धाह से जानी चलि गए॥[29]

यहाँ चबण, चलण, रतंन और सुणीअर शब्द दाँतों, टाँगों, आँखों और कानों के लिये प्रयोग किये गए हैं और इन्हें शरीर के 'जानी' भाव दोस्त कहा गया है। सम्पूर्ण पंजाबी साहित्य में भाषा के इस प्रकार के प्रयोग की दूसरी मिसाल दुर्लभ है।

आपने 'कूजे' को 'कूजड़ा', कंबली को 'कंबलड़ी', थोड़े को 'थोड़ड़े', कम को 'कमड़े', खाक को 'खाकू', वात को 'वातड़ी', आया को 'आयड़िआ', मित्रों को 'मित्तां', कोयलों को 'कोयलिआं' में बदल दिया है। इससे वर्णन में कोमलता और सौन्दर्य भर गया है। आपने 'भव्योम', 'थियोम', 'थियोस', 'होसी', 'खासी', 'आवसी' आदि शुद्ध मुल्तानी क्रियाओं का भी प्रयोग किया है। यह स्थानीय भाषा के प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है। परन्तु इससे उस समय की भाषा में सम्मलित अपभ्रंश अंशों का पता चलता है और वर्णन में कोमलता का समावेश हो जाता है।

मुहावरों का प्रयोग

बाबा फ़रीद ने अपने कलाम में प्रचलित मुहावरों का प्रयोग भी किया है और नये मुहावरों का निर्माण भी। आपके कलाम में मुहावरों का प्रयोग इतना सहज है कि पता ही नहीं चलता कि साधारण शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है या मुहावरों का। इसी तरह आपके कलाम में अनेक ऐसे कथन समाये हुए हैं, जिनका मुहावरों की तरह इस्तेमाल होना शुरू हो गया है।

1. जे जाणा लड़ु छिजणा पीडी पाईं गंढि॥[30]
2. फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख॥
   आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु॥[31]
3. रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ॥[32]
4. कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु॥
   फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु॥[33]
5. जां कुआरी ता चाउ वीवाही तां मामले॥[34]

शब्द-चित्र और भाव-चित्र

बाबा फ़रीद की वाणी रंग-बिरंगे चित्रों की एक विशाल और अद्भुत चित्रशाला है, जिसमें दृश्य-चित्र, नाद-चित्र, गंध-चित्र, स्पर्श-चित्र, रस-चित्र और भाव-चित्र सभी शामिल हैं। आपका एक श्लोक है:

कंधि कुहाड़ा सिरि घड़ा वणि कै सरु लोहारु॥
फरीदा हउ लोड़ी सहु आपणा तू लोड़हि अंगिआर॥[35]

लोहार के कन्धे पर कुल्हाड़ी है, सिर पर घड़ा है और वह जंगल में चला जा रहा है। पहली पंक्ति में एक पूर्ण दृश्य उभर कर आँखों के सामने आ जाता है। श्लोक की दूसरी पंक्ति में बाबा फ़रीद वर्णन को बिलकुल नया रंग प्रदान कर देते हैं। आप स्वाँसों की पूँजी को कोयले बना रहे दुनियादार का प्रभु की भक्ति में लगे हुए सच्चे भक्त से मुक़ाबला करते हैं, जिससे ध्यान आपके उपदेश की ओर चला जाता है। दोनों चित्र मिलकर एक गहरे भाव और सिद्धान्त का सृजन करते हैं। आप एक अन्य श्लोक में कहते हैं:

फरीदा अखी देखि पतीणीआं सुणि सुणि रीणे कंन॥
साख पकंदी आईआ होर करेंदी वंन॥[36]

आप एक वृद्ध की तस्वीर पेश करते हैं, जिसके कान सुनते नहीं और आँखें देखती नहीं। आप उसकी तुलना उस सूखी हुई टहनी से करते हैं, जिसकी रस भरी हरियाली ख़त्म हो चुकी है। चित्र में एक दृश्य भी है, लेकिन एक गहरी संवेदना भी छिपी हुई है। आपका एक श्लोक है:

तती तोइ न पलवै जे जलि टुबी देइ॥
फरीदा जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ॥[37]

आप उस कोमल कोंपल की तस्वीर खींचते हैं, जो तपिश से झुलस गई है और दोबारा हरी नहीं हो रही। इस वर्णन को आप प्रीतम की जुदाई की तपिश से झुलसी हुई और पल-पल क्षीण हो रही दुहागिन के साथ जोड़ देते हैं। इससे पहली पंक्ति में पेश किया गया इन्द्रिय दृश्य तुरन्त एक भावमय दृश्य में बदल जाता है। यह आपकी वाणी का विशेष गुण है। आप एक श्लोक की पहली पंक्ति में कहते हैं:

फरीदा कंनि मुसला सूफु गलि दिलि काती गुड़ु वाति॥

यहाँ पर तथाकथित दरवेश का दृश्य पेश किया गया है जिसने कन्धे पर मुसल्ला रखा है, गले में ऊन का चोला डाला हुआ है, मुँह से मीठी-मीठी बातें करता है, परन्तु उसके दिल में कपट की कैंची है। आप इसी श्लोक की दूसरी पंक्ति में कहते हैं, 'बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति॥'[38] यह पंक्ति तथाकथित दरवेश की बाहरी अवस्था को उसके मन की अवस्था से जोड़ देती है।

आप एक अन्य श्लोक की पहली पंक्ति में कहते हैं, 'फरीदा सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं॥' इससे उस व्यक्ति का दृश्य सामने आता है जिसके सिर, दाढ़ी और मूछों के बाल सफ़ेद हो चुके हैं। इस श्लोक की दूसरी पंक्ति, 'रे मन गहिले बावले माणहि किआ रलीआं॥'[39] द्वारा इसे भावमय दृश्य बना देते हैं। आपका एक श्लोक है:

नाती धोती संबही सुती आइ नचिंदु॥
फरीदा रही सु बेड़ी हिंङु दी गई कथूरी गंधु॥[40]

एक नवयुवती नहा-धो कर और हार-शृंगार करके निश्चिन्त होकर सेज पर लेट जाती है। वह सोचती है कि मेरे गुणों के कारण मेरा पति स्वयं ही मुझे गले लगा लेगा। लेकिन उसकी सुन्दरता, यौवन और हार-शृंगार रूपी कस्तूरी जैसी सुगन्ध, अहंकार रूपी हींग जैसी दुर्गन्ध में बदल जाती है, जिसके कारण वह पति के मिलाप से वंचित रह जाती है। इस श्लोक में बाहर से वर्णन एक सुन्दरी का है, पर भावों के स्तर पर प्रेम से रहित उस जीवात्मा का ज़िक्र हो रहा है, जो शुभ कर्मों के अहंकार के कारण प्रभु रूपी पति के मिलाप से वंचित रह जाती है। कस्तूरी और हींग द्वारा सृजित गंध-चित्र दो भावनात्मक अवस्थाओं के सूचक बन जाते हैं। एक अन्य श्लोक में आप कहते हैं:

अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ॥
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ॥[41]

इस श्लोक में भी यही कलात्मक युक्ति कार्यशील दिखाई देती है। देखने में कार्य शारीरिक स्तर पर चल रहा है, लेकिन वास्तव में दो शारीरिक अवस्थाएँ, दो भावनात्मक अवस्थाओं की सूचक बन जाती हैं और इनसे दुहागिन (मनमुख) और सुहागिन (गुरुमुख) की विशेषताएँ साकार हो जाती हैं। इस तरह शारीरिक कार्य भावनात्मक बन जाता है, भाव संकल्पों में ढल जाते हैं और संकल्प सहज रूप से सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं। यह सारा कार्य अति सहज और स्वाभाविक रूप में होता है। बाबा फ़रीद लिखते हैं:

फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥

बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥[42]

आप पहली दो पंक्तियों में दरिया के किनारे खेलों में मस्त एक बगुले का चित्र पेश करते हैं। इसके साथ ही उस बगुले पर झपटने वाले बाज़ का दृश्य सामने आ जाता है। चौथी पंक्ति 'जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥' द्वारा पूर्ण दृश्य को दुनिया के रंग-तमाशों में मस्त उस दुनियादार के साथ जोड़ दिया गया है, जिसे मौत के फ़रिश्ते अचानक अपना आहार बना लेते हैं। कई छोटे-छोटे चित्र मिलकर एक विशाल चित्र का सृजन करते हैं। ये सब चित्र गतिशील हैं। ये चल-चित्र और कथा-चित्र भी हैं, साथ ही ये भावों तथा सिद्धान्तों का भी सृजन करते हैं। बाबा फ़रीद का श्लोक है:

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह॥
जे सउ वर्हिआ जीवणा भी तनु होसी खेह॥[43]

पहली पंक्ति एक चित्र का निर्माण करती है और दूसरी उसे भावमय और दर्शनमय रंग प्रदान करती है। आपका श्लोक है:

जां कुआरी ता चाउ वीवाही तां मामले॥
फरीदा एहो पछोताउ वति कुआरी न थीऐ॥[44]

इस श्लोक में 'वीवाही' और 'कुआरी' शब्द युवती की बाहरी अवस्था के सूचक प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में ये दो अलग-अलग भावनात्मक अवस्थाओं के सूचक हैं। स्पष्ट है कि बाबा फ़रीद के काव्य में शब्द चित्रों को भाव चित्रों में और भाव चित्रों को शक्तिशाली सिद्धान्तों में बदलने की अपार शक्ति है, जो आपको संसार के महान सन्त-साहित्यकारों की पंक्ति में खड़ा कर देती है।

अलंकार, चिन्ह और दृष्टान्त

रंग-बिरंगे मूल्यवान नगीनों की तरह जड़े हुए चिन्ह, अलंकार, रूपक और दृष्टान्त बाबा फ़रीद के कलाम को चार चाँद लगा देते हैं। आपका श्लोक है:

फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु॥
चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु॥[45]

इसमें गली, कीचड़, घर, कंबली आदि चिन्ह इस्तेमाल किये गए हैं। इसी तरह ऊपर दिये गए श्लोक 'दरीआवै कंन्है बगुला' में दरिया, बगुला, केल, बाज आदि कई चिन्ह इस्तेमाल किये गए है। 'फरीदा जे जाणा तिल थोड़डे' में थोड़डे तिल और 'शौह नढड़ा' चिन्ह हैं। इसी तरह बाबा फ़रीद ने सहुरे, पेके, सुहागिन, दुहागिन, जिंद-वहुटी, मरण-वर, शक्कर, विस, विस-गंदला, नाठीअड़े (मेहमान), खटोला, वाण, लेफ, हंस, कोधरा, कल्लर, छप्परी, रात, कथूरी, सूलां, बेड़ा, पातणी, कप्पर, बुज्जे, काग, कंधी, रुखड़ा, कच्चा भांडा (बर्तन), नीर, पंछी, कंकर, हंस, बगुला, कूंजड़ीआं, कस्तूरी, हींग, छैल, बेड़ा आदि अनेक चिन्ह प्रयोग किये, जो आपके कलाम की दार्शनिक और कलात्मक शक्ति में वृद्धि करते हैं।

सहुरे-पेके, सुहागिन-दुहागिन के जो चिन्ह बाबा फ़रीद ने प्रयोग किये, वे सभी सूफ़ी दरवेशों और निर्गुणवादी सन्तों के लिये उदाहरण बन गए। आत्मा और परमात्मा के रिश्ते को पत्नी और पति के रिश्ते द्वारा प्रकट करके आपने सूफ़ीमत के इश्क़े-हक़ीक़ी के संकल्प को दुनियावी इश्क़ की सहायता से प्रस्तुत करके बाद में सदियों तक प्रचलित रहनेवाली काव्य परम्परा का निर्माण किया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आपने विदेशी सूफ़ियों की तरह जाम, सुराही, प्याला, शराब, मयख़ाना, साक़ी, जुल्फ़ आदि चिन्ह प्रयोग करने की जगह विशुद्ध भारतीय जीवन और लोक-अवचेतन से जुड़े चिन्हों का प्रयोग किया।

आपकी वाणी के कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं, 'सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास॥'[46], 'विधण खूही मुंध इकेली ना की साथी ना को बेली॥'[47], 'कार्ल कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥'[48], 'जिंदु वहुटी मरणु वरु लै जासी परणाइ॥'[49], 'फरीदा जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ॥'[50] 'अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाई॥'[51], 'जोबन जांदे न डरां जे स प्रीति न जाइ॥'[52], 'जे जाणा सहु नंढड़ा तां थोड़ा माणु करी॥'[53], 'इक आपीन पतली सह केरे बोला॥'[54], 'मुझु अवगन सह नाही दोसु॥'[55], 'धन कूकेंदी गो में तै सह ना मिलीआसु॥'[56], 'हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी॥'[57] 'केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥'[58]

इन सभी प्रसंगों में आपने प्रतीकात्मक शैली में जीवात्मा की अलग-अलग संकटमय अवस्थाओं को बहुत ख़ूबसूरती के साथ चित्रित किया है।

बाबा फ़रीद ने भक्त या दरवेश के लिये सुहागिन और हंस तथा मनमुख या दुनियादार के लिये दुहागिन और बगुला चिन्ह प्रयोग किये जो बाद में निर्गुणवादी सन्तों द्वारा भी प्रयुक्त किये गए। आपने संसार को 'कलर केरी छप्परी' और 'कोधरे का खेत' कहकर बयान किया तथा इसके मायावी भोगों और पदार्थों की 'कसुम्भड़े' के फूलों और चीनी में लिपटी हुई ज़हर की गंदलों से तुलना की। आपका श्लोक है:

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित॥
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित॥[59]

आप शैतान के जाल में फँसे जीव की दुःखदायक अवस्था का दर्दनाक चित्र खींचते हैं। सन्त-महात्मा जीव को बार-बार सावधान करते हैं, लेकिन उसके मन पर उनके उपदेश का रत्ती भर असर नहीं होता और वह अन्धाधुन्ध इन्द्रियों के भोगों और विषयों-विकारों में खोया रहता है। वह बेचारा अपनी तरफ़ से इन भोगों को शक्कर समझ कर भोगता है, पर इनका असर ज़हरीला निकलता है। आप कहते हैं, 'देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु॥ सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु॥'[60] यहाँ 'सकर' और 'विसु' इन्द्रियों के भोगों के बाहरी स्वरूप और उनकी आन्तरिक असलियत के चिन्ह बन जाते हैं। आपके श्लोक हैं:

1. फरीदा जा लबु ता नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु॥
   किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु॥[61]
2. फरीदा वेखु कपाहै जि थीआ जि सिरि थीआ तिलाह॥
   कमादै अरु कागदै कुंने कोइलिआह॥
   मंदे अमल करेदिआ एह सजाइ तिनाह॥[62]

उपरोक्त प्रसंगों में आप पहले दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं कि जैसे टूटी हुई झोंपड़ी तेज़ बारिश को सहन नहीं कर सकती, उसी तरह लोभ, प्रेम का नाश कर देता है। दूसरे दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं कि जिस तरह तिल, कपास और गन्ने पेरे जाते हैं, जिस तरह काग़ज़ बनाने के लिये लकड़ी की लुगदी या गूदा बनाया

जाता है और जिस तरह बर्तन को आग पर तपाया जाता है, उसी तरह बुरे कर्म करनेवालों को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती है। आपने अनेक श्लोकों में दृष्टान्त द्वारा अपनी बात समझाने की युक्ति अपनाई है।

श्लोकः गागर में सागर

बाबा फ़रीद का सन्देश उन लोगों के लिये था जिनमें से अधिकाँश को न पाठशाला जाने का मौक़ा मिला था और जो न ही साहित्यिक परम्पराओं के ज्ञाता थे। आपने ऐसे लोगों तक अपना कलाम पहुँचाने के लिये श्लोक रूपी हल्का-फुल्का काव्य-रूप चुना। आपके बहुत-से श्लोक दो पंक्तियों वाले हैं और बड़े से बड़ा श्लोक आठ पंक्तियों का है। दो श्लोक तीन-तीन पंक्तियों के भी हैं। दो-तीन पंक्तियों के श्लोक में एक पूरा भाव बयान कर देना, आपके कलाम की बहुत बड़ी ख़ूबी है। महान से महान और गम्भीर से गम्भीर विचार को भी कुछेक पंक्तियों और कुछेक शब्दों में बयान करना आप बख़ूबी जानते हैं। आपके श्लोक आसानी से समझ आ जानेवाले और सरलता से याद हो जानेवाले हैं। जिस तरह संस्कृत के महान कवियों ने सूत्रों की रचना की, उसी तरह बाबा फ़रीद ने श्लोक के ऐसे रूप का प्रयोग किया है, जो एक सूत्र या फ़ार्मूले का दर्जा रखता है, जैसे:

1. निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु॥
   ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु॥[63]
2. मति होदी होइ इआणा॥ ताण होदे होइ निताणा॥
   अणहोदे आपु वंडाए॥ को ऐसा भगतु सदाए॥[64]

बाबा फ़रीद ने अपने निजी अनुभव के आधार पर परमार्थ के हीरों और लालों जैसे अनमोल विचारों को श्लोक के सरल परन्तु भावपूर्ण काव्य-रूप में सफलतापूर्वक बयान किया। विद्वानों ने आपके कई श्लोकों में क़ुरान शरीफ़ की आयतों वाला रंग भी पाया है।

आपका श्लोक है, 'जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु॥ कजल रेख ना सहदिआ से पंखी सुइ बहिठू॥'[65] आपने दो पक्तियों में उस सुन्दर स्त्री के जीवन की पूरी कथा बयान कर दी है, जिसकी सुन्दरता सबका मन मोह लेती थी और जिसकी आँखें काजल की धार भी सहन नहीं करती थी। मौत के

पश्चात उसकी यह हालत हो गई कि उसकी खोपड़ी पक्षियों का घोंसला बन गई। यहाँ एक लम्बी गाथा को केवल दो पंक्तियों में कलमबद्ध कर दिया गया है। आपका श्लोक है:

साढे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अंनि॥
आइओ बंदा दुनी विचि वति आसूणी बंन्हि॥
मलकल मउत जां आवसी सभ दरवाजे भंनि॥
तिन्हा पिआरिआ भाईआं अगै दिता बंन्हि॥
वेखहु बंदा चलिआ चहु जणिआ दै कंन्हि॥
फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥[66]

आप श्लोक की इन छः पंक्तियों में एक लम्बी गाथा बयान कर रहे हैं। एक व्यक्ति अनेक प्रकार की आशाएँ लेकर संसार में जन्म लेता है। वह जीवन भर भाग-दौड़ में लगा रहता है। जीवन के अन्त में वह निष्प्राण और निष्क्रिय हो जाता है। वह दूसरों के कन्धों पर श्मशान भूमि में पहुँचता है और उसकी रूह किये हुए कर्मों का हिसाब देने के लिये दरगाह में पहुँच जाती है। लोक से परलोक तक की एक लम्बी गाथा बहुत सुन्दर और संक्षिप्त ढंग से एक श्लोक में बयान कर दी गई है। यह गाथा मनुष्य-जन्म की वास्तविकता को बहुत करुणामय और मार्मिक ढंग से प्रकट करती है। इसमें प्रकट किया गया भाव सर्वव्यापक और अटल है। इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति में कहा गया है 'फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥' इस पंक्ति में एक सन्देश भी है और एक चेतावनी भी। बाबा फ़रीद बहुत ख़ूबसूरत ढंग से इस वास्तविकता की ओर इशारा कर रहे हैं कि इनसान सारी उम्र मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये भाग-दौड़ में लगा रहता है और उनकी पूर्ति के लिये ऐसे कर्म कर लेता है, जिनका उसे कुल मालिक की दरगाह में हिसाब देना पड़ता है।

स्पष्ट है कि यह श्लोक मनुष्य जीवन की पूर्ण त्रासदी भी पेश करता है और इस त्रासदी से बचने के लिये एक आध्यात्मिक युक्ति की ओर भी इशारा करता है। बाबा फ़रीद द्वारा प्रकट की गई सारी बात बड़ी सरल प्रतीत होती है, लेकिन वास्तव में यह बहुत गम्भीर और भावपूर्ण है। आपका श्लोक है:

फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि॥
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि॥[67]

इस श्लोक में भी उपरोक्त श्लोक वाला ही रंग है। इसमें जंगल में वृक्षों के पत्तों के झड़ने की झाँकी द्वारा मौत की अटलता और सर्वव्यापकता का भाव दृढ़ करवाया गया है। कुछेक पंक्तियों के छोटे-से श्लोक को एक सर्वव्यापक और शाश्वत दर्शन की पेशकारी का सफल साधन बनाना, बाबा फ़रीद की कला का विशेष गुण है। आपका श्लोक है:

पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड॥
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड॥[68]

आप फ़रमाते हैं कि जिन राजाओं-महाराजाओं के सिर पर छत्र झूलते थे, जिनकी उपमा में बाजे बजाए जाते थे और वारें (उपमा के गीत) गाई जाती थीं, वे (मौत के बाद) क़ब्रों में समा गए और उनकी हालत यतीमों जैसी हो गई। श्लोक में एक लम्बी कथा बयान की गई है। कथा में आदि, मध्य और अन्त है, साथ ही कथा एक भाव का भी सृजन करती है।

बाबा फ़रीद अपने सहज आवेश के अमृत को श्लोक रूपी छोटी-छोटी प्यालियों में सँभाल लेते हैं। उनका वर्णन गहन भी है और रसयुक्त भी। आप प्रभु के बारे में कहते हैं, 'फरीदा रब खजूरी पकीआं माखिआ नई वहंनि॥'[69] शायद ही संसार के किसी और कवि ने परमात्मा को छः शब्दों की एक पंक्ति में पकी हुई खजूरें और शहद की नदी कहकर उसकी मिठास का वर्णन किया हो। एक अन्य श्लोक में आप कहते हैं, 'फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिउ मांझा दुधु॥ सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु॥'[70] यहाँ आपने परमात्मा को सर्वोत्तम सुख, सर्वोत्तम आनन्द और सर्वोत्तम स्वाद का अथाह स्रोत बनाकर पेश किया है। यह वर्णन विद्वानों और दार्शनिकों जैसा नहीं, बल्कि आम इनसान के अनुभव के स्तर का है। एक श्लोक में परमात्मा स्वयं इनसान को कहता है:

आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ॥[71]

सारी दुनिया परमात्मा से मिलाप करने के तरीक़े ढूँढ रही है। परमात्मा ख़ुद इनसान को वह युक्ति समझाता है। वह युक्ति क्या है? परमात्मा कहता है कि ऐ भले इनसान, पहले अपने आपको पहचान, फिर तू मुझे पहचान सकेगा; पहले

अपना बन, फिर तू मेरा बन सकेगा और जब अपना बनकर मेरा बन जायेगा और मुझे अपना बना लेगा, तो सारा संसार ही तेरा बन जायेगा।

इस सीधे और सरल वर्णन के पीछे यह गहरा परमार्थी भेद और महान सिद्धान्त छिपा हुआ है कि इनसान की हस्ती का सार शरीर या मन नहीं, आत्मा है। वर्तमान अवस्था में आत्मा शरीर और मन से बँधी हुई है। जब तक आत्मा शरीर और मन से बँधी हुई है, इसे अपनी असीम शक्ति का ही ज्ञान नहीं, फिर इसे परमात्मा का ज्ञान कैसे हो सकता है? आप भारतीय सन्तों द्वारा दिये गए जड़ और चेतन की गाँठ खोलने के महान संकल्प को पेश कर रहे हैं और मनुष्य को समझा रहे हैं कि पहले मन को शरीर और इन्द्रियों से अलग करो, फिर आत्मा को मन से अलग करो, तब आत्मा, परमात्मा से मिलाप कर सकेगी। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं, 'आपु पछाणि हरि पावै सोई॥'[72] 'अपने आप को पहचानो'[73] (सुकरात)। परमात्मा से आत्मा ने मिलना है, शरीर ने नहीं। जब तक आत्मा मन-इन्द्रियों के अधीन है, यह परमात्मा की दरगाह में दाख़िल नहीं हो सकती। बाबा फ़रीद कहते हैं:

फरीदा दर दरवेसी गाखड़ी चलां दुनीआ भति॥
बंन्हि उठाई पोटली किथै वंञा घति॥[74]

जब तक आत्मा के सिर पर कर्मों की भारी गठरी रखी हुई है और यह इन कर्मों के कारण शैतान, काल या धर्मराय की दासी है, यह मुक़ामे-हक़ में विराजमान कुल मालिक से मिलाप कैसे कर सकती है? बाबा फ़रीद इशारा करते हैं कि परमात्मा और आत्मा सजातीय हैं और दोनो में क़ुदरती आकर्षण है, पर जब तक आत्मा शरीर, इन्द्रियों और मन की स्थूलता और मलिनता को त्यागकर निर्मल नहीं होती, यह विशुद्ध आत्मा नहीं बन सकती। और जब तक यह निरोल आत्मा नहीं बनती, यह परमात्मा में कैसे समा सकती है? दो पंक्तियों का श्लोक भाषा और वर्णन में कितना सादा है, पर भाव को पेश करने में कितना गहरा और विशाल! इस श्लोक पर पुस्तक का एक अध्याय भी लिखा जा सकता है और एक अलग पुस्तक भी।

बाबा फ़रीद का श्लोक बालक जैसा भोला और निश्छल है, पर इसमें पर्वत जैसी ऊँचाई और समुद्र जैसी गहराई और विशालता है।

सार

- बाबा फ़रीद के कलाम को उनके सहज अनुभव का आधार प्राप्त है। इस कलाम में वर्षा और झरने जैसी स्वाभाविकता और निर्मलता है। यह कलाम कला रहित कला का उत्तम उदाहरण है। यह बनावट और सायास रचना के दोषों से पूर्णतया मुक्त है।
- बाबा फ़रीद के कलाम में बाबा फ़रीद की शख़्सियत जैसी सरलता है। यह कलाम फ़क़ीर की स्वाभाविक सादगी और गम्भीरता से परिपूर्ण है। यह कलाम जितना सरल है, उतना ही विशाल और गहरा भी।
- बाबा फ़रीद का कलाम उपदेशात्मक है। यह जीवन के अनेक गहरे भेदों को खोलता और समझाता है तथा इसमें अनेक सूक्ष्म रूहानी रम्ज़ें भरी पड़ी हैं।
- बाबा फ़रीद के कलाम में भाव और दर्शन, विचार और कला का सुन्दर मेल दिखाई देता है। इसमें भाव की सुन्दरता, भाषा की मिठास और वर्णन की रवानी आदि गुण एक साथ चलते हैं। इसमें चिन्हों, बिम्बों, अलंकारों और दृष्टान्तों को भावों की पेशकारी का शक्तिशाली माध्यम बनाया गया है।
- बाबा फ़रीद के कलाम में बच्चों जैसी मासूमियत है। आपके सादा श्लोक सहज ही हृदय में उतर जाते हैं। ये श्लोक ख़ुद-ब-ख़ुद ज़ुबान पर चढ़ जाते हैं और इनको एक बार पढ़कर या सुनकर भुला पाना अपने वश में नहीं होता। जो भी एक बार बाबा फ़रीद का कलाम पढ़ या सुन लेता है, वह बाबा फ़रीद का होकर रह जाता है और बाबा फ़रीद और उनका कलाम हमेशा के लिये उसका हो जाता है।
- बाबा फ़रीद कवियों के कवि तो हैं ही, साथ ही वह जन-साधारण के ऐसे लोकप्रिय कवि हैं, जो अपने रसीले शहद जैसे मीठे बोलों द्वारा जन-साधारण को सरल ढंग से उस महबूबे-हक़ीक़ी की प्राप्ति के रास्ते की ऐसी रम्ज़ें समझाते हैं, जो उनके मन को रोशन करती हैं, उनके सामने एक महान आदर्श रखती हैं, उन्हें सर्वश्रेष्ठ जीवन-युक्ति समझाती हैं और उन्हें रस-विभोर भी करती हैं।
- बाबा फ़रीद पंजाबी के पहले प्रमाणिक कवि हैं। बाबा फ़रीद पंजाबी के पहले महान सूफ़ी कवि हैं। बाबा फ़रीद पंजाबी की सूफ़ी काव्यधारा और निर्गुणवादी काव्यधारा को विचार और वर्णन दोनों पहलुओं से आपस में

जोड़ने वाली कड़ी हैं। बाबा फ़रीद ने बाद में आनेवाले सारे पंजाबी सूफ़ी और निर्गुणवादी कवियों के लिये भाषा और वर्णन की एक ऐसी नवीन परम्परा का निर्माण किया जो सदियों तक कवियों के लिये एक आदर्श बनी रही। बाबा फ़रीद का ऐतिहासिक महत्त्व और उनके कलाम की अद्‌भुत कलात्मक महानता, उनके सन्देश के अपार कल्याणकारी सामर्थ्य से जुड़कर उनके लिये वह ऊँचा स्थान सुनिश्चित करती है, जिसके गौरव को शब्दों में बयान कर सकना असम्भव है।